Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरोगा

Vol. 28 1989-90 No. 1-6

G. K. V. Lib
Hardwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

131597

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

...ार (12) १९८९

पुरोधा

Vol. 28
1989-90
No. 1-6

131597

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

There is one Truth but a million ways of distorting it in the attempt to express it.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, राजस्थान, मध्य प्रदेश, हरियाना
गुजरात, ओड़िसा, आंध्र प्रदेश, पंजाब और मैसूर सरकार द्वारा
सरकारी पुस्तकालयों, विद्यालयों और महाविद्यालयों आदि के लिये स्वीकृत

पुरोधा अक्तूबर १९८९ **वर्ष २८, अंक १, पूर्णांक २७५**

विषय-सूची

प्रार्थना और ध्यान	श्रीमां	२
विद्युदणु (सॉनेट)	श्रीअरविंद	३
दैनन्दिनी		४
बाजी प्रभु	श्रीअरविंद	७
'भारतीय संस्कृति के आधार' पर आधारित : राजा और प्रशासन		२०
'सान्ध्य-वार्ताएं' : सत्ता के विभिन्न भागों के बारे में		२१
'कुछ माताजी के बारे में' : कुछ अद्‌भुत बातें		२४
नया शिवाला		२५
'गैर्वाणी' : कः शूद्रः . . . ?	वन्दना	२७
एक प्रश्न		२९

आपका अग्निशिखा/पुरोधा का चंदा . . . में समाप्त हो रहा है। कृपया अग्निशिखा के १० और पुरोधा के १४ शीघ्र भेजें अन्यथा अगला अंक वी.पी.पी. से जायेगा। वी.पी.पी. लौट आने से हमें बहुत हानि होती है। अलग अनुस्मारक नहीं भेजा जायगा। कृपया चेक न भेजें। चाहें तो २२५ या २७५ एक साथ या किस्तों में देकर अग्निशिखा और पुरोधा के ५०० देकर आजीवन सदस्य बन सकते हैं।

	पुरोधा	*अग्निशिखा*	*दोनों मिलाकर*
आजीवन सदस्यता शुल्क	*२७५*	*२२५*	*५००*
वार्षिक शुल्क	*१४*	*१०*	*२४*

सम्पर्क-सूत्र—सम्पादक पुरोधा एवं अग्निशिखा, श्रीअरविन्द सोसायटी, पांडिचेरी—६०५००२

सम्पादक : रवीन्द्र, वन्दना
प्रकाशक : अनिरुद्ध सरकार, श्रीअरविन्द सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२
मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थना और ध्यान

२ नवम्बर १९१२

हे परमोच्च स्वामी, जो सभी वस्तुओं में जीवन, प्रकाश और प्रेम है, यद्यपि सिद्धांत रूप में मेरी सारी सत्ता तुझे समर्पित है फिर भी इस समर्पण को विस्तार में कार्यान्वित करना मुझे कठिन लगता है। मुझे यह जानने में कई सप्ताह लगे कि इस लिखित ध्यान का कारण और उसका औचित्य इस तथ्य में है कि उसके द्वारा मैं प्रतिदिन तुझे सम्बोधित कर पाऊं। इस तरह मैं प्रायः तेरे साथ जो वार्तालाप किया करती हूं उसके कुछ अंश को भौतिक रूप दे सकूंगी। मैं तेरे सामने, जहांतक हो सके अच्छी तरह अपनी स्वीकारोक्ति को रख सकूंगी, इसलिये नहीं कि मैं सोचती हूं कि मैं तुझसे कुछ कह सकती हूं—क्योंकि तू स्वयं ही तो सब कुछ है बल्कि इसलिये कि हमारे देखने और समझने का कृत्रिम और बाह्य तरीका—अगर यह कहा जा सके—तेरे लिये पराया है, तेरे स्वभाव से विपरीत है। फिर भी तेरी ओर मुड़कर, जब मैं इन चीजों पर विचार करते हुए जिस क्षण तेरे प्रकाश में अपने-आपको निमज्जित करती हूं, तो मैं थोड़ा-थोड़ा करके उन्हें उस तरह देखने लगूंगी जैसी कि वे सचमुच हैं—उस दिनतक, जब अपने-आपको तेरे तदात्म में एक न कर लूं, जब मेरे पास तुझसे कहने के लिये कुछ भी न बचे, क्योंकि तब मैं तू बन जाऊंगी। यही वह लक्ष्य है जहां मैं पहुंचना चाहती हूं; मेरे सारे प्रयास इसी विजय की ओर अधिकाधिक अभिमुख होंगे। मैं उस दिन के लिये अभीप्सा करती हूं जब मैं "मैं" न कह सकूंगी, मैं "तू" होऊंगी।

अभीतक दिन में कितनी बार मैं अपने कार्य तुझे अर्पित किये बिना ही क्रिया करती हूं। मैं उसके बारे में तुरंत एक वर्णनातीत बेचैनी से अवगत होती हूं जो मेरे शरीर की संवेदनशीलता में हृदय की पीड़ा द्वारा अनूदित होती है। तब मैं अपनी क्रिया को अपने लिये ही वस्तुगत बना लेती हूं और वह मुझे बेतुकी, बचकानी या निन्दनीय मालूम होती है। मैं उसके लिये खेद करती हूं, क्षण भर के लिये दुःखी होती हूं, जबतक कि मैं तेरे अंदर डुबकी लगाकर, वहां एक बच्चे के विश्वास के साथ अपने-आपको खोकर, अपने अंदर और अपने चारों ओर की भूल-भ्रांति को ठीक करने के लिये तेरी ओर से आनेवाली आवश्यक प्रेरणा और शक्ति के लिये प्रतीक्षा न करूं—दोनों चीजें एक हैं क्योंकि अब मुझे उस वैश्व ऐक्य की सतत और यथार्थ दृष्टि प्राप्त है जो सभी क्रियाओं के संपूर्ण अन्योन्याश्रय का निर्णय करता है।

—श्रीमां

————

शांत रहो और अपने-आपको विश्वास तथा स्थिरता के साथ अर्पित करो।

—श्रीमां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्युदणु

विद्युदणु जिस पर हुआ रूपाकारों और जगतियों का निर्माण,
बन गया जीवधारी, ईश्वर का एक अंश।
शाश्वत ऊर्जा से अलग हुआ एक अग्निकण,
यह है अनन्त का आवास अति लघु, तमसाच्छन्न,

इस लघु ज्वलन्त रथ में शिव करते आरोहण।
उस एक ने अनेक होने के लिये किया यह आविष्करण;
अपना एकत्व वह रखता अलक्ष्य रूपों में,
काल के लघु चिरन्तन देवालयों में प्रच्छन्न।

अणु और परमाणु अपने अदृश्य आयोजन में
विलक्षण एकत्वों के प्रासाद का बनते प्राकार,
स्फटिक और पादप, कीट और जन्तु और मानव,—
मानव जिसके आधार से विश्व-ऐक्य पर किया जा सकेगा अधिकार,

उसकी आत्मा के स्फुलिंग को अनंत की कालहीन
विराटता के दिव्य प्रकाशन में करते हुए विस्तीर्ण।

—श्रीअरविंद

अनु०—अमृता भारती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दैनन्दिनी

अक्तूबर

१. यदि तुम्हारे अंदर यह अवचेतना है तो तुम्हें अपने सभी कर्मों में सचेतन होना सीखना होगा जिससे कि प्राणिक क्रियाएं तुम्हें और धोखा न दे सकें या कोई आड़ न ले सकें। तुम्हें इन प्राणिक क्रियाओं को देखने, उनका सच्चा रूप जानने के लिये अपनी सत्ता के एक बिंदु को पूरी तरह से सच्चा बनाना होगा।

२. एक बार यदि तुम अपनी चैत्य सत्ता में उद्‌घाटित हो जाओ और उसे उद्‌घाटित रखो तो स्वयं तुम्हारे अंदर निरंतर एक प्रकार का बोध रहेगा जो तुम्हें पग-पग पर यथार्थ सत्य को दिखलायेगा और तुम्हें हर प्रकार के धोखे से सावधान करेगा। यदि तुम निरंतर अभीप्सा करते रहो और अपने अंदर निरंतर शांति को बढ़ते रहने और शक्ति को कार्य करते रहने दो तो यह उद्‌घाटन हो जायेगा।

३. सच तो यह है कि अंतरात्मा नहीं बल्कि प्राण, या यूं कहें कि प्राण के अंदर की कोई चीज कराहने और रोने, यथार्थ रूप में सब प्रकार के शोक-संतापों में सुख का अनुभव करती है।

४. हां, प्रत्येक व्यक्ति में अहंकार ही कठिनाई का कारण है।

५. अहं की क्रियाओं से एकदम से मुक्ति पाना संभव नहीं है। सतत सचेतनता और परित्याग द्वारा उन्हें प्रकृति में से बाहर निकालना होता है। केन्द्रीय अहं के चले जाने के बाद भी अभ्यस्त क्रियाएं लम्बे समयतक चिपकी रहती हैं।

६. भय को दूर करने का तरीका : निम्नतर प्राण (नाभि-केन्द्र के नीचे के भाग) में शक्ति और अचंचलता को उतार कर इसे दूर किया जा सकता है। फिर जब भय आये तो संकल्प-शक्ति का प्रयोग करके और समस्त शरीर पर अचंचलता का भाव स्थापित करके भी दूर किया जा सकता है। उसे किसी एक तरीके से या एक साथ दोनों तरीकों से दूर भगाया जा सकता है।

७. यह समझना भूल है कि भयभीत या दुःखी होने से तुम उन्नति कर सकते हो। भय हमेशा एक ऐसा संवेग होता है जिसका त्याग करना चाहिये क्योंकि जिस चीज से तुम डरते हो ठीक उसी चीज के तुम्हारे पास आने की संभावना बनी रहती है। भय के विषय को ही भय आकर्षित करता है। अप्रसन्नता शक्ति को दुर्बल बनाती है और मनुष्य को अप्रसन्नता के कारणों की ओर और भी अधिक खोल देती है।

८. तुम्हें भय और क्रोध को भी दूर फेंक देना चाहिये और माताजी पर दृढ़ विश्वास रखते हुए शांति से अपने मार्ग पर बढ़ते जाना चाहिये।

९. जीवन के क्लेशों को उसी रूप में न लो जैसे वे दीखते हैं; सचमुच वे अधिक महान् प्राप्ति के तरीके होते हैं।

१०. तुम्हें इन छोटी-मोटी चीजों के बारे में चिंता नहीं करनी चाहिये, और सबसे बढ़कर यह कि दुर्भाग्य पर विश्वास मत करो। इन छोटी-मोटी असफलताओं के पीछे हमेशा कोई कारण होता है, कुछ अधिक अनुभव के द्वारा उनसे बचा जा सकता है, और वह निश्चय ही आयेगा।

११. अहंकार उसके बारे में सोचता है जो उसके पास नहीं है और जिसे वह चाहता है। यही उसका निरंतर मुख्य काम है।
अंतरात्मा जानती है कि उसे क्या दिया जाता है और वह अनंत कृतज्ञता में निवास करती है।
जीवन की समस्त कटुता **हमेशा** केवल अहंकार से आती है जो पदच्युत होने से इंकार करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२. भगवान् के प्रति निवेदित किये गये कार्य के द्वारा ही चेतना सबसे अच्छी तरह विकसित होती है। आलस्य और अकर्मण्यता का अंत **तमस्** में होता है। वह निश्चेतना में पतन है। वह समस्त प्रगति और प्रकाश के विपरीत है।

अपने अहंकार को जीतना, केवल भगवान् की सेवा में निवास करना—यही सच्ची चेतना के प्राप्त करने का आदर्श और सबसे छोटा मार्ग है।

१३. काम हाथ में ले लो और श्रद्धा रखो; आवश्यकता के अनुपात में शक्ति आयेगी। तुम्हारी ग्रहणशीलता तुम्हारी श्रद्धा और तुम्हारे विश्वास पर निर्भर है।

प्रेम और आशीर्वाद।

१४. प्रगति करने के लिये तुम्हें सभी पुरानी रचनाओं को एक तरफ फेंक देना होगा, सभी पूर्वकल्पित विचारों को ढा देना होगा। पूर्वकल्पित विचार ही वे असंख्य अभ्यस्त मानसिक रचनाएं हैं जिनमें तुम रहते हो, वे अटल होते हैं इस लिये उनमें कोई नमनीयता नहीं होती और वे प्रगति नहीं कर सकते। इस सबको परे फेंक देना चाहिये। फिर नये विचारों का जन्म होता है, सक्रिय विचार का जो सर्जनशील होता है।

१५. मन की **नीरव-निश्चलता** का अभ्यास करो, यह समझने की शक्ति देती है।

१६. हमारा मन नीरव और अचंचल होना चाहिये लेकिन हमारा हृदय उत्कट अभीप्सा से भरपूर।

१७. स्थिर अचंचल रहो और अपने-आपको शांति और विश्वास के साथ अर्पित करो।

जो कुछ होता है हमेशा 'परम पुरुष' की इच्छा का परिणाम होता है।

मानव कर्म अवसर हो सकता है पर कारण कभी नहीं।

१८. जब तुम ध्यान में बैठो तो तुम्हें बालक की तरह निष्कपट और सरल होना चाहिये। तुम्हारा बाह्य मन बाधा न दे। तुम किसी चीज की आशा न करो। किसी चीज के लिये आग्रह न करो। एक बार यह स्थिति आ जाये तो बाकी सब तुम्हारी गहराइयों में स्थित अभीप्सा पर निर्भर है। और अगर तुम भगवान् को बुलाओ तो उनका उत्तर भी मिलेगा।

१९. तुम मानव प्रेम के द्वारा भगवान् से प्रेम करना नहीं सीख सकते क्योंकि वह प्रेम और ही प्रकार का है। पहले अपने-आपको सच्चे-निष्कपट भाव से भगवान् को देना सीखो उसके बाद प्रेम का आनंद आयेगा। अपने-आपको सचाई के साथ देने से तुम्हारी सब कठिनाइयां गायब हो जायेंगी।

२०. भगवान् के लिये सच्चा प्रेम है आत्म-दान; जो मांगरहित, निवेदन और समर्पण से भरपूर हो। वह कोई अधिकार नहीं जमाता, कोई शर्त नहीं रखता, कोई सौदेबाजी नहीं करता, ईर्ष्या, अहंकार या क्रोध की किसी उग्रता में रस नहीं लेता क्योंकि ये चीजें उसकी रचना में ही नहीं होतीं।

२१. बालक के विश्वास के साथ हमारा हृदय भगवान् से अनुनय-विनय करता है।

श्रद्धा और विश्वास रखो और प्रसन्न रहो।

२२. हमेशा स्थिर और शांत रहने के बारे में बहुत सावधान रहो और संपूर्ण समचित्तता को अधिकाधिक पूर्णता के साथ अपनी सत्ता में प्रतिष्ठित होने दो। अपने मन को बहुत अधिक सक्रिय होकर हो-हल्ले और विक्षोभ में न रहने दो, चीजों के ऊपरी आभास से ही परिणामोंतक न जा पहुंचो। जल्दबाजी न करो, एकाग्र होकर स्थिरता में ही निश्चय करो।

२३. जो लोग आध्यात्मिक जीवन प्राप्त करने की साधना करना चाहते हैं उनके लिये अत्यावश्यक कार्य है आत्म-संयम, आत्म-प्रभुत्व, संतुलन तथा निष्काम भाव को प्राप्त करना, सत्ता के आंतरिक सत्य और उसकी अभिव्यक्ति के नियमों को खोज निकालना।

अपने प्रति और अपने लक्ष्य के प्रति सच्चा होना, अव्यवस्थित आवेगों के द्वारा परिचालित न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होना, परिवर्तनशील बाह्य रूपों को ही सद्वस्तु न मान बैठना आदि वे गुण हैं जो अध्यात्म-पथ पर प्रगति करने की इच्छा रखनेवाले मनुष्य में अवश्य होने चाहियें।

२४. हर एक के लिये और सारी पृथ्वी के लिये ऐसी हर चीज उपयोगी हो सकती है जो भगवान् को पाने में सहायता करे।

२५. तुम्हें अपने दयनीय व्यक्तित्व के तंग बंधनों को तोड़कर निःस्वार्थ आनंद में ऊंची उड़ान भरनी चाहिये . . .

२६. जब तुम्हें कोई चीज उपलब्ध करनी हो तो तुम्हारे अंदर उस चीज से ठीक उल्टे विशेष लक्षण होंगे। उस कठिनाई या दोष का सामना होने पर तुम कहते हो : "आह ! मैं ऐसा हूं ! कैसी बुरी बात है !" परंतु तुम्हें वस्तु-स्थिति के सत्य को देख सकना चाहिये। तुम्हें अपने-आपसे कहना चाहिये : "मेरी कठिनाई मुझे स्पष्ट रूप से बताती है कि संसार में मुझे किस चीज का प्रतिनिधित्व करना है। इस कठिनाई के पूर्ण निषेध को, इसके एकदम दूसरे छोर को सिद्ध करना ही मेरा लक्ष्य है।"

२७. जिसमें भगवान् के लिये अभीप्सा है, उसके सामने जो कठिनाई हमेशा खड़ी रहती है, उसके लिये वह कठिनाई ही वह द्वार है जिससे वह निजी रूप में भगवान् को पायेगा : यह भगवान् को पाने के लिये उसका अपना मार्ग होगा।

२८. यह भी तथ्य है कि अगर किसी के आगे हजारों कठिनाइयां आती हैं तो उसे विस्मयकारी उपलब्धियां प्राप्त होंगी—बशर्ते कि धैर्य और सहन-शक्ति हो और वह अपने अंदर इन दोषों के विरुद्ध अभीप्सा की अग्नि जगाये रहे।

२९. और याद रखो : सामान्यतः भगवान् की कृपा भी तुम्हारी कठिनाइयों के अनुपात में होती है।

३०. भला बोलना अच्छा है। भला करना ज्यादा अच्छा है। अपनी क्रियाओं को कभी अपने शब्दों से नीचे न उतरने दो।

३१. वे सब जो सचमुच बलवान् और शक्तिशाली होते हैं, सदा बहुत स्थिर रहते हैं। केवल दुर्बल ही बेचैन होते हैं। सच्ची स्थिरता सदा सामर्थ्य का लक्षण है।

————

काई बहते पानी में नहीं उग सकती। वह केवल छोटे तालाबों के खड़े पानी में ही उगती है। जिसका हृदय भगवान् के लिये तरसता है उसके पास किसी दूसरी चीज के लिये समय नहीं होता। जो यश और मान की खोज में रहता है वही संप्रदाय या दल बनाता है।

*

काई शुद्ध पानी के विशाल तालाब में नहीं, बल्कि छोटी-छोटी मैली और विषाक्त तलैयों में उगती है। उसी प्रकार दलबंदी वहां नहीं बनती जहां प्रेरक हेतु पवित्र, विशाल और निःस्वार्थ है। बल्कि उसकी जड़ें वहां गहरी फैल जाती हैं जहां लोग स्वार्थपूर्ण, कपटी और धर्मांध हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाजी प्रभु

[प्रस्तुत कविता के बारे में कवि की टिप्पणी : ''यह कविता बाजी प्रभु देशपांडे के महावीरोचित आत्म-बलिदान की ऐतिहासिक घटना पर आधारित है जिन्होंने शिवाजी के पलायन को गुप्त रखने के लिये थोड़े-से सैनिकों को लेकर बारह हजार मुगलों के विरुद्ध रंगाना के दर्रे को दो घंटेतक रोके रखा। इस महान् मुख्य घटना के अतिरिक्त इस कविता में अन्य ऐतिहासिक यथार्थों के परिपालन का कोई प्रयत्न नहीं किया गया है।'']

दक्खिन के क्रूर चिलचिलाते मध्याह्न ने
दलित कर दिया था धरती को; धुंध में खोयी खड़ी थीं पहाड़ियां,
उमसभरे प्यासे मैदान तप्त दृष्टि से ताक रहे थे
बहुत काल से सूखे झरनों के झुलसे हुए पथों में
जल की कामना से। प्रकृति और मनुष्य एक समान,
कांसे के भड़कीले आसमान से रुद्ध,
भागना चाह रहे थे निदाघ की इस व्यापक स्तब्धता से।
न केवल किसी विरले चरवाहे पर या खेत जोतते
या पकी बालोंवाले धान्य की रात-दिन चौकसी करते
किसी धीर कृषक पर ही यह भार टूटा। यह तो लटक गया
मुगल घुड़सवारों पर जब वे चले
आक्रमण के लिये बल्लम तानकर, फौलादी उद्दाम तरंगें
उनके इर्द-गिर्द और पीछे, जब वे अकस्मात् हटते
या चक्कर लगाते, जहां पैदल दौड़ रहे और गोली दाग रहे थे,
फिर-फिर गोली दाग रहे और दौड़ रहे थे; ''क्योंकि अब अन्ततः
युद्ध समाप्त हुआ,'' उन्होंने समझ लिया, ''अब आख़िरकार
पहाड़ी तेंदुआ मारकर भगा दिया गया
ठीक उसकी मांदतक, विद्रोही जत्थे का मौततक
पीछा किया गया, और अन्ततः एक परिणाम प्राप्त कर लिया गया।''
इसलिये वे नहीं रुके दमघोंटू धूल के कारण,
जल्लाद गर्मी, युद्ध और घावों की प्यास,
और लड़खड़ाती कठोर थकान के कारण, बल्कि आगे बढ़े
धधकती आंखों से। इसके एकदम विपरीत शत्रुपक्ष के लोग,
हांफते और क्षुब्ध, प्यास से पीड़ित और त्रस्त
और दहकती धरती की चौंध से अंधे रायगढ़ की ओर
पीछे पलटे जा रहे थे, अपने रक्त से नम करते
अपनी माता को; उन्हें लग रहा था कि उनकी अपनी प्यारी शैलमालाएं
मानों एक दुःस्वप्नपूर्ण नरक हों विनाश और उष्णता का, और आसमान
एक मूक मुस्कराता साक्षी उनकी भीषण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यातना का,—इस समय ईश्वर और मनुष्य से परित्यक्त,
जो अपने देश और अपनी जाति के लिये लड़े थे,—
व्यर्थ ही, ऐसा लगता था। सुबह जब सूर्य
अभी क्षितिज-रेखा से नीचे था, शिवाजी झपटे
ऊंची पहाड़ी गढ़ी पर, मानों उन्हें आशा हो
कि जकड़ लेंगे इस समग्र विशाल भूमि को मुट्ठी में;
पर उत्तर और पूरब से मुगल उमड़ रहे थे,
असंख्य तलवारें और घोड़ों की टापें शैल-श्रेणियों को कंपाती हुई
और सैंकड़ों बंदूकों की धमक। ये उस वीर को
पीछे हटा ले गये। स्थिर, निश्चेष्ट
कठोर मुख-भंगिमा के साथ बलवान मराठे चुपचाप
लड़ाई को पीछे अपनी पहाड़ियों की तरफ खींच ले गये; केवल
उनका पश्चात्वर्ती दल कभी-कभी उच्च घोष कर उछल पड़ता
पीछा करनेवालों के कंठ पर, या किसी चढ़ाई पर
या कोई निभृत अनुकूल स्थान मुगलों की बाढ़ को रोक देता
मुहूर्त्त भर के लिये। जहां भी ये वीर लड़ते सदा अग्रणी
बाजी प्रभु देखा गया, आक्रमण की एक उद्दाम तरंग की तरह
या प्रवाह के विरुद्ध खड़ी एक चट्टान के समान।
अन्ततः ये पहुंच गये रायगढ़ की ओर जानेवाले
एक सिंहमुखी दर्रे पर। शैल-श्रेणियों ने सटकर
इस स्थान को संकीर्ण कर दिया था, और उनकी भयानक खड़ी चट्टानों ने
इस अधोमुखी ढलान को जोखिम से भर दिया था। शिवाजी रुक गये,
उनकी प्रज्वलित दृष्टि बड़ी तेजी से
पर्वत, दर्रे और घाटी के, चारों ओर दौड़ी और उतनी ही तेजी से
शक्तिमत्ता से उड़ान भरते गरुड़ के सदृश
पास के एक श्यामल युवक की ओर लौट आयी, कनिष्ठ
मालसूरे, जो अपनी चमकीली और ज्वलनशील आंखों से,
निःशब्द सवार रहा थरथराता, मानो पट्टे पर हो;
उसका खूंखार हृदय भूखा था पश्चात्वर्ती दल के लिये, जहां
तलवारों के हास के बीच चल रहा था मृत्यु का संगीत।
''जाओ, सूर्याजी,'' शिवाजी गरजे, उनकी दृष्टि
अन्तर्मुखी और स्थिर, ''और तेजी से पश्चात्वर्ती दल से
प्रभु को बुला लाओ।'' आदेश के साथ ही घूमकर
सूर्याजी के घोड़े के खुर शिला-प्रकीर्ण ढलान पर तेजी से दौड़
पैनी घाटी के विनाश में उतर गये। द्रुत,
पर एक राष्ट्र की नियति से बोझिल, उस कटक पर
वे पहुंचे, जहां निष्फल श्रम ने तोड़ दिये थे जिनके वज्र हृदय,
और जो कठोर खामोशी में लड़ और मर रहे थे,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस दक्खिनी पश्चात्वर्ती दल के पास, और प्रभु को
नायक का बुलावा दिया : "चलो, बाजी, चलो,
शिवाजी तुम्हें बुलाते हैं, बाजी।" और बाजी ने
एक शब्द बोले बिना ढीली कर दी अपनी लगाम
और तूफानी गति से उस ऊंचे भयानक दर्रे पर आ पहुंचा
और चुपचाप ठहर गया नायक के सामने। "बाजी, एकाधिक बार
युद्ध में तुम खड़े रहे, जीवित ढाल बन
मेरे और शत्रु के बीच, किंतु आज और अधिक,
ओ बाजी, किसी एक जीवन की नहीं,—रक्षा करो
अपने राष्ट्र की नियति की। तुम देख रहे हो यह दर्रा
संकीर्ण और क्रूर और चमकीला
किसी विशालकाय शेर के हलक की तरह, अपने चट्टानी दांतों को
आहार के लिये बाहर निकाले : और यद्यपि निचला ढलान
बहुत हल्के से उतरता है, फिर भी जड़ों और पत्थरों के कारण
यह बाधित है, और ऊपर का अधोमुखी ढलान
अपराजेय रूप से रोकता है आक्रमण; अत्यंत दुरारोह हैं
ये ढाल किसी के भी चढ़ने और गोली चलाने के लिये
सुविधा से। यहां सिंह-हृदय वीर अल्पसंख्यक ही,
एक बड़ी सेना को विलम्बित कर सकते हैं। बाजी, मैं एड़ लगाता हूं
रायगढ़ की ओर और दो संक्षिप्त घंटों में ही वापस आता हूं।
बताओ, कितनी सेना लेकर तुम्हारी लौह शक्ति रोक सकती है
इस घाटी मार्ग को मेरे आने तक। तुम देख ही रहे हो हमारा बल,
कैसे यह पिघल गया अफगान के बर्फ की तरह
रक्त का तालाब बन।" और जब वह मौन रहा
जिसे चुना गया था, एक लौह पुरुष बोला
सुदृढ़ भ्रूयुक्त, नायक के पीछे सवार,
तानाजी मालसूरे, एक जीवन्त तलवार :
"इस छोटे से प्रयोजन के लिये आवश्यकता नहीं थी
अपने कार्य से प्रभु को बुलाने की। बस,
मुझे पांच सौ सैनिक दें; मैं रोकता हूं यह घाटी-मार्ग
आपके लौटनेतक।" पर शिवाजी की भव्य, प्रशांत दृष्टि
बाजी प्रभु के चेहरे पर लगी रही। तब, क्रोध से नीले पड़े,
अपनी अग्निल कठोर आंखों में शिकन डालते मालसूरे ने कहा :
"तब वीर किस सोच-विचार में पड़ा है ? वीरों में वीर,
उसे जरूरत नहीं हमारी तरह मामूली तलवारों की,
अपने पीछे किसी सेना की, वह तो अकेला ही रोक रखेगा
समूचा राजस्थान और आगरा और काबुल
सूर्योदय से सूर्यास्ततक।" और बाजी ने उत्तर दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"तानाजी मालसूरे, रक्तमांस और स्नायुओं के
इस जीवित पंजर में और न तो चपल मन में
आसीन है मनुष्य की मनुष्यता। अन्तरस्थ ईश्वर ही
हम पर शासन करता है, जो ब्राह्मण और श्वान में
यदि वह चाहे तो एक समान ईशत्व प्रकट कर सकता है।
मनुष्यों से शक्ति-बल प्राप्त नहीं होता; बाजी
अथवा मालसूरे तो महज एक नाम है, एक चोला,
और आच्छादित करता है उस एकमेव को। हम तो नियोजित करते हैं
केवल भवानी की शक्ति, जो रक्तमांस की एक भुजा में भी
उतनी ही बलवान् है जितनी बिजली और तूफान में।
मुझे पचास तलवारें दें।" और मालसूरे :
"अच्छा, बाजी, मैं तुम्हारे लिये ऐसी चिता बनाऊंगा
जैसी मनुष्य ने कभी न बनायी हो, हमारे लौटने पर;
क्योंकि सारा दक्खिन प्रकाशमान हो चिल्लायेगा,
बाजी—प्रभु जल रहा है।" और एक स्मित से
प्रभु ने उत्तर दिया : "मुझे तुम नहीं जलाओगे।
क्योंकि अस्थिमांस के बने पांच फुटे या कुछ अधिक
इस आदमी के चिथड़ों से चाहे पवित्र अग्नि पुष्ट हो
या पहाड़ी शृगाल, यह दूसरों के सोच का विषय हो सकता है
बाजी प्रभु का नहीं।" और शिवाजी की
दीप्त दृष्टि में था महान् प्रशांत भाव,
"हम बिछुड़ते हैं, ओ मित्र, पर निश्चय ही फिर मिलेंगे,
जब अपने कर्त्तव्य-कर्म से मुक्त हो हम दोनों दौड़ेंगे
बच्चों के सदृश अपनी मां के आलिंगन में।" उन्होंने उतारी
अपने विशाल मस्तक से रत्नजटित
हीरक कलगी से मढ़ी वह राजसी पगड़ी और बाजी के सिर पर
वह चमचमाता चिह्न रख दिया, और गले लगाया
अपने मित्र को, और पश्चात्वर्ती दल से एकत्रित हुए
अपने उमड़ते सैन्य के साथ, आगे की पहाड़ियों की ओर
खड़खड़ाते बढ़ चले। मुग़ल हरावल के आनेतक
वहां केवल बच रहे बाजी और उनके मराठे वीर
उस खामोश दर्रे में पर्वत-श्रेणियों से निरीक्षमान ।
उस छोटे से दल ने, जो पकड़े था सहजभेद्य इस्पात के घेरे से
नियति के हर क्षण को, अभी थोड़ा ही विश्राम लिया था;
कि एक आती हुई तरंग-चूड़ा के सदृश
मुग़ल हराव़ल प्रकट हुआ, धीमा और थका हुआ,
फिर भी ऐसे दुर्बल अवरोध को तोड़ने के लिये अटल,
और ज़ोर लगाकर दौड़ पड़ा :—पर अधिक काम न आया;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्योंकि बंदूकों का केवल एक धमाका होता,
बार-बार सदा वही एक धमाका, जब वे पास आते,
और, एक रुद्ध लहर की तरह, मुहूर्त भर को
आक्रमणकारी रुक जाते और लहर की तरह ही ढेर हो जाते
टूटे हुए फुहारे के धारासार में अपसरित निःशेष
पीछे हटते हुए। पराजय की मुद्रा में, उस भयानक दर्रे ने
उस गांठदार कठिन चढ़ाई पर देखा
सिर्फ हताहतों का ढेर। लेकिन पीछे से
उत्तर का प्रमुख भयानक आक्रमण
एक काले और उमड़ते बहाव के रूप में आया
अवरोध की उपेक्षा करता,—एक मिश्रित जनमेदनी,
पठान और मुग़ल और राजपूत वंश,
युद्ध के प्रगल्भ कांस्य-कंठों से उच्चघोष करते
धुंआ और आग उगलते। गोलियां गरजीं
चट्टानों पर, पर अपने स्थानों पर अनाहत,
दरख़्त और चट्टान की आड़ में, खामोश कठोर
रक्षक प्रतीक्षा करते रहे, जबतक कि जड़ों और पत्थरों पर
आत्मविश्वास से भरी उद्घोष करती विजेताओं की वह बाढ़
टूटने, लड़खड़ाने और तब रुकने लगी,
उसके संकरे अग्रभाग में उलझन-घबराहट। तुरंत
बन्दूकें गरज उठीं, गोलियां चलने लगीं,
कुछ ही किंतु प्राणान्तक; और फिर बार-बार,
कुछ जल्दीबाजी में पीछे हटने लगे
और कुछ गुस्से में आगे बढ़ चले; और जब वे दुविधा में झूल रहे थे
कि भागें या आक्रमण करें, विस्फोट पर विस्फोट
मृत्यु की अदृश्य झड़ी करकापात कर रही थी
उस डांवाडोल सैन्य पर। सेनानायक गिर गये,
आगेवालों को गोलियां निशाना बना लेतीं,
चट्टानों और वृक्षों पर चित या पट या तिरछे पड़े थे वे
व्याधिग्रस्त लोगों की तरह, मौत के सन्नाटे ने निषेध बनकर
सारे अग्र सैन्य को दुर्दशाग्रस्त कर दिया।
और यह भयानक आक्रमण विफल हो गया। और तब पीछे हटे
सेनानायकों ने परामर्श किया, इसके बाद
धीमी और क्रमबद्ध पंक्तियों में पैदल आगे आये,
निःशब्द और सावधान,
उनकी चाल में लौह संकल्प। दूर हरावल में,
लम्बे कद और विशाल अवयवोंवाला, पंक्तिबद्ध दुर्जेय
पठान पैदल सैन्य; इसके बाद प्रयाण कर रही थी एक चुनिन्दा सैन्य शक्ति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद में नीचे, मज़बूत काठीवाले, राजपूत;
आगरा का शौर्य पीछे के दल का संचालन कर रहा था।
तब बाजी ने प्रथम मौन तोड़ा, "देखो, यह बाढ़!
वह तो मौत की फुहार मात्र थी जिसे हमने पहले निरस्त किया था।
शिवाजी के मनोनीत वीरो, भवानी के खड्गधारियो,
तुम्हारे लिये देवताओं ने आयोजन किया है। मरते तो हम हैं ही,
लेकिन हम मरें तूर्यनाद के साथ स्वर्ग की ओर
आरोहण करते हुए, अपने देश के स्वतंत्रता के अधिकार को
प्रवर्तित करते हुए।" उसके शब्दों के साथ ही, मुग़ल सैन्य ने
प्रवेश किया जोखिमभरे विशाल जबड़ेवाले दर्रे में,
सावधानी से पैर रखते हुए, पर यह सावधानी बहुत देर
काम नहीं आयी, क्योंकि जहां वह प्रवेश करता, वहीं ढेर हो जाता।
पश्चात्वर्ती दूसरे सैनिक भयानक चुप्पी में आगे बढ़ते रहे।
वे आगे आते और मर जाते; फिर भी पहले मृतकों पर
नये मृतक गिरते रहे सघन करते हुए। तो भी धीमे कदमों से
पंक्तियां आगे बढ़ती रहीं घोर संघर्ष और
शूरवीरों का निर्दय उत्सर्ग करती हुई।
जब कि ढलान पटे हुए थे और नियंत्रण में थे
फिर भी मराठों की गोलियों का वेग और
घातक सिलसिला बढ़ता ही गया; जीवितों की अपेक्षा
मुर्दों के क़ब्जे में था वह विजित ढलान,—
जीवित ही थे जो, अर्धजर्जर, हिचकिचा रहे थे। छोटा-सा
यह अन्तराल विशाल होकर अग्र गति का विरोध कर रहा था,
निरुत्साहित करते हुए उन दृढ़निश्चयी वीरों को; पहले जो निर्भीक थीं
वे आंखें अब निराश अनिश्चय के साथ
इंचों और गज़ों की दूरी में पड़ी मानव-लाशों के
भयावह समपरिमाण का आकलन कर रही थीं, और उन्हें आशा नहीं थी
कि अंतहीन हो उठे इस अविजित भूमिखंड के दरम्यान
कोई ज़िन्दा बचा रहेगा। पर दक्खिनी अवरोध से
बन्दूकें रुक नहीं रही थीं, बल्कि भड़का रही थीं
निरुद्ध अप्रतिकार को; गोलियां रुकी नहीं
न तो उन्होंने गणना की विनाश की। लगातार वे बरसती रहीं
मधुमक्खियों की तरह भिनभिनाती और डंसती रहीं बलवान् प्राणों को मृत कर
मानों हत्याकाण्ड एक धार्मिक उत्सव हो। तब
सेनानायकों ने योजना बनायी और मोरचे की तरफ तेज़ी से बढ़ा दिया
उस मध्यभाग को जो अबतक अक्षत था, जहां मृत्यु का क्रीड़ा-सहचर
राजस्थान अपने वीर पुत्रों के साथ खड़ा था।
वे फुर्तीले राजसी दुःसाहसी कदमों से आये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खतरनाक अग्नि-व्याप्त भूमि को लांघते,
उन्होंने न तो दनदनाती गोलियों का निरर्थक जवाब दिया
न वे निर्णय के लिये रुके, बल्कि हर पल बढ़ रहे मृतकों के ऊपर
छलांग मारते और लंबे डग भरते, उच्चघोष करते, खड्गहस्त,
आगे की तरफ दौड़े; अपने महान् अमर साहस के साथ
मर्त्य देहों में और निचले ढलान पर क़ब्ज़ा कर लिया।
लेकिन अब ऊपर के छोटे लेकिन सीधे खड़े ढलान ने
बाधित कर दिया उनका वेग, और जैसे ही वे पंजों के बल ऊपर चढ़े,
चुस्त और जोशीले, आगरा की गर्म लू के
अन्धड़ झोंके की तरह, पत्तरे की आग ने
गोलियों को डकार लिया। भयानक विध्वंस के साथ वे गिरते चले गये,
और, लुढ़कते हुए, उनके टकराव ने ढकेल दिया उन कुछ लोगों को भी
जो अब भी प्रयास कर रहे थे। आगे बढ़ना निषिद्ध था, पीछे हटना
अपयश और विनाश की धमकी से परिपूर्ण, मुहूर्त भर के लिये
बद्ध बलिपशु की तरह खड़े रहे राजपूत
हर क्षण घटते हुए। तब राठौड़ वंश का
एक उच्च-प्रतिष्ठित सामन्त वीर सामने आया
हतबुद्धि आक्रामकों के बीच से, अपनी तलवार के इशारे से
कुछ की टक्कर में हज़ारों को आगे आने के लिये ललकारता हुआ।
और गोलियां उसका बाल बांका न कर सकीं; वह डटा रहा
कुछ देर अपनी अभी न ख़त्म हुई
मियाद से रक्षित। और एक शक्तिशाली घोष
पीछे से उठा, और प्रचंड सैलाब के रूप में
राजपूत पिल पड़े ढलान पर
पंजों के बल चढ़ते हुए सिंहों की तरह। बहुत से हाथों को मिले
गिरते हुए मुरदे, पर उन मातमी अवरोधों को
पीछे धकेलता हुआ अग्रसैन्य
एक झटके से ऊपर चढ़ आया और समतल भूमि पर
खड़ा हो गया तलवारें लेकर; पर केवल कुछ क्षण ही,
क्योंकि भयानक और सीधा जयघोष दक्खिन का
पचास तलवारों के साथ उछला उन्हें पीछे धकेलता-हुआ,
बाजी प्रभु अग्रणी। तीन बार वे आये,
तीन बार हावी हुए और तीनों बार दक्खिनी हमले ने
उन्हें निरस्त कर दिया; तब अन्ततः उस राठौड़ अधिप ने
एक नियुक्त व्यक्ति की भांति, आगे बढ़ती मौत का संचालन किया,
इन्तज़ार नहीं किया अपने दुस्साहसिक निर्णय के प्रति आश्वस्त होने का,
और वह बाजी पर टूट पड़ा; पीछे का रेला
आगेवालों को और भी आगे धकेल ले गया। दायें और बायें से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मराठा बन्दूकें गरज उठीं
और आक्रमण को शिथिल कर दिया, जो अभी समाप्त हो जाता,
और दूसरे ही क्षण सन्नद्ध खड़ा हो जाता पिछले जत्थे के दबाव से
और इसका कोई अंत ही न था। इस प्रकार वह विनाशकारी दर्रा
गुत्थम-गुत्था हो रही लड़ाई के कोलाहल से पूर्ण हो गया।
तलवार से तलवार बज उठी, घोष होने लगा, बन्दूकों की गूंज
और गोलियों की सनसनाहट से आसमान भर गया,
और विनाशकारी संघर्ष ने उस तंग स्थान को पाट दिया।
इस दुस्साहसिक युद्ध में राजपूत और बलवान् मराठों को
सांस लेना मुश्किल था। पर दूर
आगरा की फौजें बंधी-सी खड़ी थीं, आश्वस्त,
अन्त की प्रतीक्षा करती। उनकी आशा के एकदम विपरीत
अन्त आया। क्योंकि जब सामने
उस विवादग्रस्त कगार पर राठौड़ खड़ा था
और लगातार रख रहा था नया बल पलड़े पर
प्रोत्साहन प्रदर्शित करता हुआ, बाजी उसकी तरफ आया
अपने उन्नत मस्तक और राजसी व्यक्तित्व से
अलग दिखाई देता : और, जैसे चलते जहाज के सामने
लहरें विभक्त हो जाती हैं, वैसे ही वह लड़ाई
उसके सामने विभक्त हो गयी, घात करते हुए वह निकट आता गया।
तलवार का परिहार कर, उठी हुई भुजा का परिहार कर
अचानक उसकी असिधार राठौड़ के कंठ पर थी, और नीचे
जैसे गिर पड़ता है एक सीधा खड़ा पहाड़ी पीपल, अपने हाथ
पूरे फैला, मरते वक्त, उसने मराठा भूमि को पकड़ लिया।
उच्च घोष हुआ जब वह मरा। आगरा की
चकित, व्यग्र फौजों ने देखा राजपूत युद्ध की
चरखी को पलटते, इतनी कठिन विजय
सहसा पूर्ण पराजय में बदल गयी थी,
अवितर्कित नहीं, बल्कि भयानक निरुत्साह के कारण,
सेना में था हार का निश्चय, चिड़चिड़ापन और युद्ध के प्रति नकार।
उनके हट जाने के बाद अतिप्रवण पठान सैन्य ने
युद्ध का भार संभाला। ''खत्म कर दो'' सेनानायक गरजे,
''खत्म कर दो इन हठीले पर्वतारोहियों को; क्योंकि अब
जी तोड़ मेहनत और कामयाबी से चूर-चूर
ये मुश्किल से ही लड़ाई में खड़े रह सकते हैं, थके, निढाल, निश्चेष्ट।
नष्ट-भ्रष्ट कर दो इस सीमांत को, ताकि हम आगे बढ़ें और अधिकृत कर लें
रायगढ़ और शिवाजी।'' इस दौरान, वे भी
चुप नहीं बैठे थे, वृक्षों और चट्टानों की आड़ में,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुकूल अवसर की ताक में, हर शिलाफलक पर ठहरते,
हर झाड़ी और बाहर निकली हर उदग्र भूमि को पकड़ते,
दक्खिन के थोड़े से प्रचंड बाहुबली, दर्रे की धुंधली दीवारों पर चढ़े हुए,
अदृश्य घात लगाये थे।
पठान बड़ी तेजी से दौड़ते हुए आगे आये,
पर जहां घात-टुकड़ी घात लगाये थी उस चट्टानी मोड़ से
जैसे ही निकटतम व्यक्ति गुज़रता, पेड़ और पत्थर की तरफ से
ख़ामोशी चीत्कार कर उठती; आगे, पीछे, अगल-बगल
मौत का तुमुल कोलाहल, और तूफान में गिरे दरख्तों की तरह
वे ऊंचे आकार धरती पर छितरा गये। शेष भयभीत होकर
कुछ इस तरफ कुछ उस तरफ भागे, और कुछ चिल्लाये, ''आगे बढ़ो!''
कुछ चीखे, ''वापस लौटो!'' जो आगे बढ़े, तेजी से गिरते चले गये।
इस प्रकार अग्रगति विघटित होकर समाप्त हो गयी,—जितनी जल्दी में
वे सपाट भूमियों की तरफ भागे, भागते हुए भी
मौत के गले लगे; लेकिन दूसरे आगे बढ़े, संत्रस्त
शौर्य से भरे, शत्रु की तरफ वे झपटे
पर पहुंच न सके,—इतने प्रचंड और बर्बर विध्वंस ने
उनके डांवाडोल पराक्रम पर रोक लगा दी, इतनी तेज़ी से
और इतने दुराग्रह के साथ वे पलटे कि समस्या एक व्रण बन गयी,
इस करकापात में केवल कुछ ही बच रहे। निराशा से उनके नायकों ने
यह भगदड़ देखी और अपनी फ़ौजों को पीछे हटाकर
घोर अनिश्चय के बीच यह विचार किया, हत्याकांड के
इस दर्रे को अप्राप्त ही छोड़ दिया जाये या
इतने भयानक इस नुकसान की क़ीमत वसूली जाये।

उधर प्रभु के पास चिन्तित आंखों से
दल का कप्तान पहुंचा। ''बाजी'', वह चिल्लाया,
''गोलियां समाप्त हैं; गोला-बारूद का जो बड़ा भंडार
हमारे पास था, बेदर्द प्रयोग के कारण
वह खर्च हो गया, चुक गया है।'' और बाजी प्रभु घूमा।
उसने एक दृष्टि डाली पड़े हुए मृतकों पर,
वे केवल अपनी पोशाक से ही ज्ञेय थे, और देखा
उसका अपना दल बहुत क्षीण नहीं हुआ है, उसने एक दृष्टि नीचे डाली
दर्रे में ठसकर पड़े हुए सैंकड़ों लोगों पर,
और निर्मम भाव से मुस्कराया; तब अग्निमय सूर्य जहां
झुका हुआ नीचे जा रहा था, सान्ध्य तारे की उस कगार की ओर
उसने ताका और ललकार उठा, ''अपनी आत्माओं को वज्र का बना लो।
अगर अब भी भवानी चाहेगी, ताक़त और तलवार
विनाश से हमारे राष्ट्र के भविष्य को रोक रखेगी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जबतक कि विजय शिवाजी के साथ लौटे।''
और इस प्रकार वे बाट जोहते रहे बिन बोले और बिन आवाज़ किये,
और उनके ऊपर वह मूक अपराह्न
प्रतीक्षा करता रहा; पृथ्वी की वह निस्तब्धता गहरी थी।
सिवा उन पर्वतों और उन मृतकों के
कुछ दिखायी नहीं देता था, कुछ सुनायी नहीं देता था, कहीं कोई कंपन नहीं था,
केवल कुछ काले पंखोंवाले पक्षी धीमी गति से घेरा बांधते
आकाश में मंडरा रहे थे, बस हवा
जो अभी चलनी शुरू हुई थी, लगभग निःशब्द ही
उन जंगली इलाकों की खामोशी पर संदेह कर रही थी,
केवल कभी-कभी कोई कराह उठती जो किसी प्राण त्यागती आत्मा के
पीड़ा पाते शरीर की यातना को व्यक्त करती। और बार-बार बाजी की दृष्टि
हर क्षण नीचे जा रहे सूर्य पर पड़ जाती।
सबकी आंखें बाजी पर लगी थीं, उसकी दृढ़
मुखमुद्रा पर टिकी थीं। इस प्रकार वे लम्बे क्षण गुजर गये।
पर जब सूर्य बहुत नीचे उतर गया, दूर एक हलचल-सी
प्रतीत हुई और सबने मूठ को कसकर पकड़ लिया
और अपने जीवट पर ज़ोर डाला।
अन्ततः कृतसंकल्प मुग़ल सेना का प्रवाह
एक बार फिर उमड़ता हुआ आया, यह नहीं था पठानों का
भगदड़ करता छिन्न-भिन्न सैन्य, न तो राजपूतों की हिम्मत हारी तलवारें,
बल्कि था आगरा का शौर्य रंगीन पोशाकों
और स्वर्ण और शमशीरों से जटित, जगमगाता।
बड़े वेग से वें आये आक्रमण की आशंका लिये
प्राणघातक धुआंधारी करते गोलियों के अग्नि-पंख लगाये,
पर उन्हें मिला सन्नाटा और उनके इरादे को
यह बड़ा मनहूस लगा, वे थोड़ा-सा रुक गये
किसी धोखे की आशंका से, यद्यपि अधिक विनाश के लिये तैयार,
फिर भी निवारण के प्रति सावधान। आश्वस्त होकर,
उन्होंने आगे बढ़, उच्च घोष के साथ ढलान पर धावा बोल दिया।
कोई गोली नहीं चली, कोई बन्दूक नहीं गरजी; अनाहत
उन्होंने पार किया खुला स्थान, अक्षत वे चढ़े
पहाड़ी पर; पर जैसे ही उनके हाथ पड़े
उन झाड़ियों पर जो उस सुरक्षा-स्थल की बाड़ बनी हुई थीं, अदृश्य तलवारों ने
उनकी उंगलियां काट डालीं, झाड़ियों के बीच से
अप्रत्यक्ष योद्धाओं द्वारा फेंके गये बल्लमों ने बींध डाले
उनके वक्ष। पीछे से निकटतम पंक्तियां
आगे बढ़ीं अपना प्रारब्ध भुगतने को, तब भी वह जनसागर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे बढ़ता रहा जबतक कि घोर संघर्ष और क्षति उठाकर
वह पहुंचा उस खतरनाक शिखर पर;. वहां कुछ देर
निर्दय हत्याकांड होता रहा और पूरा सीमांत प्रदेश
शूरवीर मृतकों के ढेर से प्राचीरबद्ध और
ठोस किलेबंदी में बदल गया। पर क्योंकि सामने ढेर होता,
पीछे से आ रही क्रोधोन्मत्त सेना अपने ही मृतकों को काट फेंकती
और ऊपर चढ़ जाती, और अन्ततः यह दुर्नम्य
सैन्य-समूह सफल हुआ और एक शिखर पर
एकजुट होकर शत्रु से लड़ने लगे घोर विषमताओं के विरुद्ध
वे थोड़े से दक्खिनी। लड़ने के लिये स्थान छोटा था,
और ताक़त का कौशल से और शक्ति का आत्मा से मुकाबला करते हुए
पर्वत-मालाओं के ये सबल और कुशल रक्षक
नगर-वासी सैन्य की टक्कर में आगे निकल गये,
अपनी गुह्य शस्त्रविद्या और बेधती असिधारों की क्षिप्रता से
आगरा के अभ्यास-केन्द्रों के सारे दांवपेंचों को पछाड़ते हुए।
इस प्रकार कुछ देर वे लड़े; तब अचानक
बाजी पर सकल भवानी उतर आयी।
पहाड़ियों पर भूखे बाघ की तरह वह
दहाड़ा, और शत्रु पर लम्बे डग भरती हुई उसके शरीर की ऊंचाई
बढ़ती प्रतीत हुई। उसकी तेज तलवार ने
बादल से खेलती बिजली की तरह अपने सामने
शिखर को रिक्त कर दिया, उसके दोनों ओर
दक्खिन के तलवारबाज़ तीव्र प्रहारों से
प्रति-प्रहार को रुद्ध कर रहे थे, जबतक कि किसी वन्य नदी के
कगार की तरह यह आक्रमण ढह न गया
लड़खड़ाते किनारे पर और चढ़ाई के निचले भाग में,
और एक बार फिर यह भयानक क्षण गुजर गया।
घातक संघर्ष के अवशेष बच रहे,
मुर्दे और मणिमानक, फुलकारी और स्वर्ण-सम्पदा।
पर इसके लिये वे हार स्वीकार नहीं कर सकते थे।
एक बार फिर वे आये और लगभग कब्ज़ा कर लिया। प्रभु में
तब क्रोध उदित हुआ और अब एक अंत करने के लिये उसने
स्वयं को अपनी आत्मा में खड़ा किया; लेकिन तब भी
एक नीरवता उसकी चित्तवृत्ति पर आ विराजी और वह
सारा देवोपम आवेग उसके हृदय से लुप्त हो गया,
और उसके भीतर से निकलकर प्रत्यक्ष अवस्थित हुई
एक शक्तिशाली मूर्त्ति, भीमवदना, रक्तवसना,
वज्रमेघ की तरह काली, अपने लहराते केशों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकाश को प्रच्छन्न करती हुई, और अपने अधिराट् हाथों में लिये
खड्ग, पुष्प, वरदान, रक्तस्रावी मस्तक,—
भवानी। और वह अगोचर हो गयी; दिन का उजाला
आम दुनिया में उतना ही साधारण था।
बाजी को ज्ञान था दुर्जेया भगवती भवानी का
जो भारत पर अंततक दृष्टि रखे थी।
तब भी एक सैनिक को मिल गया उसका कंधा, एक तीक्ष्ण
मुग़ल बल्लम किरकिराता हुआ उसकी भुजा में बिंध गया।
प्रचंड हो उसके चारों ओर घिर आया
सारे पर्वतारोहियों का समूह; पर बाजी ने आर्त्तनाद करते हुए कहा,
''मोरो देशपांडे, शीघ्र ही काले दर्रे के
दूसरी ओर से जाओ और मुझे सूचना दो।
पश्चिम से क्या कोई घुड़सवार आ रहा है, क्या तुम्हें सुनायी दे रहा है
रायगढ़ का तूर्यनाद ? मैं जानता हूं मेरा समय
समाप्त हुआ; मैं जानना चाहता हूं कि मेरा कार्य पूरा हुआ।''
और उसने बुलंद आवाज़ में जयघोष किया।
भीषण हो, उसने अपनी सारी मानवीय शक्ति लगा दी
मुग़लों को दर्रे की सीमा से खदेड़ने के लिये
मन्थर दबाव डालते हुए। उसके इर्द-गिर्द तेज़ी से गिरते गये
मराठे और मुग़ल, और तलवारें
उसके अंग-अंग का रक्तपान करती रहीं, मात्र एक रक्तिमा हो गयी
उसकी देह, फिर भी वह लड़ता रहा। तब उसके पार्श्व में
घावों से विकराल और अग्निल आंखों में
मौत लिये हर्ष मनाता एक भीषण आकार आ खड़ा हुआ,
मोरो देशपांडे। ''बाजी, मैंने देखे हैं
रायगढ़ के बल्लमबाज़; बाजी, मैंने सुना है
तुरही नाद।'' अपनी आवाज से सारे कोलाहल को विजित करता
वह बोला, और तब एक मुग़ल शव पर अधोमुख गिर पड़ा
मृत। और बाजी ने डरावने हाथ से
अपनी अग्निल एकटक घूरती आंखों का रक्त पोंछते हुए
देखा अपने चारों ओर पचास वीरों में से
केवल पन्द्रह को खड़े हुए। पर सामने, पीछे
हर तरफ दर्रे पर मुग़ल ही मुग़ल थे।
चीत्कार करते हुए, एक बार फिर वह भीषण मराठा घूमा
और पीछे खुशियां मनाते दुश्मन पर
सींग झुकाकर दौड़ते हुए वृषभ की तरह टूट पड़ा। उसके साथ दौड़े
बचे हुए दुस्साहसिक वीर मार-काट करते हुए,
और जैसे चाकू बनाता है तत्काल अपना रास्ता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पानी के बीच, वैसे ही लड़खड़ाती मुग़ल दीवार को
चकनाचूर कर पीछे नष्ट कर दिया गया। आठ जन केवल
खड़े थे दर्रे के संकरे छोर पर, कोई भी
अक्षत नहीं। जहां कठिनाई से ही तीन बराबरी में
खड़े हो सकते थे, वहां फिर उन्होंने शत्रु का सामना किया;
और इस अंतिम अधिकृत बिंदु से बाजी ने देखा
दूर की ढलान पर चढ़ रहे, पंक्तिबद्ध
दल के दल घुड़सवार; सामने दूर सरपट दौड़ते
करीब चालीस घोड़े, और एक पागधारी मस्तक पर
डूबते सूर्य की प्रभा में देदीप्यमान
एक झिलमिलाती मणिखचित कलगी। और बाजी ने दृष्टि डाली
दूरतक फैले मुंह बाये प्रदेश पर
और मानों देखना चाहा कटक पर एक दुर्ग,
रायगढ़, तब घूमकर पुनः युद्ध को लक्ष्य बनाया।
कुछ क्षणोंतक उन्होंने भीषण संघर्ष किया।
एक-के-बाद-एक मराठा वीर गिरता चला गया
जबतक कि केवल तीन बच रहे। तब अचानक
बाजी निश्चल खड़ा हो गया और भूमि पर गिर पड़ा।
वह अग्निल एकटक दृष्टि शांत हो गयी, भुजा निर्जीव :
बाजी मृत पड़ा था अविजित दर्रे में।
पर उसके गिरने से पहले, चट्टानों पर पीछे
बज उठी थीं घोड़ों की टापें और, जैसे ही पचास में से
इस अंतिम ने प्राण छोड़े, गोलियां बरसने लगीं
उस अत्यंत संकरे मुख-द्वार से और जो भी प्रविष्ट हुए
उन्हें मार गिराया गया। उच्च घोष करते, विजयोल्लास से भरे
दक्खिनी तूर्य बज उठे, उधर क्षत-विक्षत मन से
आगरा के सैनिक पीछे हट गये; उनके
सटे हुए अरक्षित जन समुदाय पर
किनारे से सैंकड़ों में जानलेवा गोलियां बरसने लगीं,
और तेजी से टूटती कतारों में, भयभीत,
मुगलों की भगदड़ शुरू हुई। सुदृढ़ कदमों से, फुर्तीला
विरोधी सैन्य पीछा करता आगे बढ़ा, सर्वप्रथम सूर्याजी
उच्च जयघोष करता और प्रहार और घात के साथ-साथ
गाता हुआ पहाड़ियों के प्रति एक गीत रामदास का।
पर शिवाजी बाजी के रिक्त पंजर के निकट
मौन खड़े थे और उनकी अपलक दृष्टि स्थिर लगी थी
मृतक पर। तानाजी मालसूरे
उनके निकट खड़ा था, उसने निष्प्राण देह को ध्यान से देख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धीरे-से कहा, "तैंतीस द्वारों से
तुम प्रवेश कर रहे हो स्वर्ग में, ओ भाग्यशाली आत्मा,
ओ पराक्रमी वीर। तो जब मेरी बारी आये,
मैं भी अपनी मौत को गले लगा सकूं; देश की रक्षा में
या अपने स्वामी के लिये कोई बड़ा दुर्ग जीतकर।"
पर शिवाजी ने मृतक के निकट देखी
एक अस्पष्ट लेकिन विशाल मेघाकृति हाथ में खड्ग लिये
और उस दूसरे हाथ में, जहां रक्त-स्रवण करता
मस्तक लटकता था, उसने उठायी बाजी के माथे से
वह देदीप्यमान पाग, जो मणि-रत्नों से अब भी जगमगा रही थी,
और उसे शिवाजी के मस्तक पर रख दिया। पर जब उसे उठाया गया
महावीर्य्य बलिदान से रक्तरंजित,
कलगी के चारों ओर उन्होंने देखा एक स्वर्ण किरीट।

—श्रीअरविंद

अनु॰—अमृता भारती

'भारतीय संस्कृति के आधार' पर आधारित :

राजा और प्रशासन

भारतीय राजनीति की रचना के शिखर पर तीन शासक संस्थाओं का अधिकार था—अपने मंत्रि-परिषद् के साथ राजा, केन्द्रीय समिति और राज्य की आम सभा। परिषद् के सदस्य तथा मंत्री सभी वर्णों से लिये जाते थे। परिषद् में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तथा शूद्रों के प्रतिनिधियों की निश्चित संख्या होती थी। निश्चित रूप से इसमें वैश्यों की प्रधानता होती थी लेकिन यह अनुपात न्यायोचित ही था क्योंकि संपूर्ण समाज में वैश्यों की बहुलता थी, इसका कारण यह था कि प्रारंभिक आर्य-समाज में वैश्य वर्ण के अंदर न केवल सौदागर और छोटे व्यापारी ही सम्मिलित थे बल्कि कारीगर, शिल्पी तथा कृषक भी आ जाते थे अतः वैश्य वर्ण जन-साधारण अर्थात् "विशः" का बहुत बड़ा भाग होता था, और ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा शूद्र—इनमें से पहले दो उच्चतर वर्णों का पद चाहे जितना महान् रहा हो, इन्होंने समाज पर चाहे जितना प्रभाव डाला हो लेकिन फिर भी प्राचीन आर्य-समाज में ये अल्पसंख्यक थे, इनका अधिक विकास तो बाद में ही हुआ। यह हुआ सांस्कृतिक ह्रास के युग में; बौद्ध उथल-पुथल द्वारा उत्पन्न अव्यवस्था और ब्राह्मणों के द्वारा समाज की पुनर्व्यवस्था के बाद ही भारत के अधिकतर भागों में कृषकों, शिल्पियों तथा छोटे-मोटे व्यापारियों का बृहत् भाग शूद्रों की अवस्था में जा गिरा, तब ब्राह्मणों का एक लघु समुदाय शिखर पर आ बैठा और बीच में था क्षत्रियों तथा वैश्यों का इधर-उधर छितराव। इस प्रकार संपूर्ण समाज का प्रतिनिधित्व करनेवाली परिषद् ही परम कार्यकारी और प्रशासनिक संस्था थी और शासन, अर्थ-व्यवस्था इत्यादि के सभी महत्त्वपूर्ण विषयों में राजा अपना निर्णय इस परिषद् के साथ विचार-विमर्श किये बिना नहीं ले सकता था। राजा, परिषद् और मंत्रीगण ही राज्य के कार्यों के विविध विभागों की देख-रेख और उनका नियंत्रण करते थे। निःसंदेह समय के साथ-साथ राजा की शक्ति भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बढ़ती चली गयी और बहुत बार वह अपनी स्वतंत्र इच्छा और प्रेरणा के अनुसार कार्य करने के लिये प्रलुब्ध होता था लेकिन फिर भी जबतक यह प्रणाली अपने ओज में बनी रही तबतक राजा मंत्रियों और परिषद् की सम्मति तथा इच्छा की उपेक्षा या अवज्ञा नहीं कर सकता था। यहांतक कि, ऐसा लगता है कि महान् सम्राट् अशोक भी अपनी परिषद् के साथ संघर्ष होने पर अंत में पराजित हो गया था और व्यवहार में उसे अपनी शक्ति छोड़ने के लिये बाधित होना पड़ा। परिषद् के मंत्री हठी और अयोग्य राजा को पदच्युत करके उसके परिवार के किसी और को राजा बनाने या उसका स्थान किसी नये राजवंश को देने के लिये कदम उठा सकते थे और जहां कहीं, जब कभी आवश्यकता हुई उन्होंने ऐसा किया भी। इसी तरह कई ऐतिहासिक परिवर्तन आये, उदाहरण के लिये मौर्यों के स्थान पर 'सुंगों' के राजगद्दी पर प्रतिष्ठित होने की क्रांति हुई और फिर 'कण्व' वंश के राजाओं का सूत्रपात हुआ। अतः हम कह सकते हैं कि राजा का धर्म था मंत्रियों तथा परिषद् की सहायता से कार्य करना और उसका समस्त व्यक्तिगत कार्य केवल तभी तक उचित या मान्य होता था जबतक वह धर्म के द्वारा उसे सौंपे गये कर्तव्यों का क्रियान्वयन हो। और चूंकि परिषद् ऐसी सर्वोत्कृष्ट शक्ति-संस्था थी जो चार वर्णों के स्तंभों पर टिकी थी अतः राजा भी उसके मात्र संचालक या सक्रिय अध्यक्ष के रूप में रह सकता था। वह एक स्वेच्छाचारी शासक नहीं हो सकता था, वह अपने-आपको राष्ट्र का स्वामी कदापि नहीं मान सकता था और न ही वह आज्ञाकारी प्रजा का उत्तरदायित्वहीन शासक ही हो सकता था। प्रजा को तो धर्म की ही आज्ञा का पालन करना होता था और परिषद् के साथ-साथ राजा की घोषणाओं का पालन तो इसलिये करना होता था कि वे धर्म की सेवा और उसे बनाये रखने के लिये प्रशासन-संबंधी साधन हैं।

—वन्दना

सान्ध्य वार्ताएं :

सत्ता के विभिन्न भागों के बारे में

१३-८-१९२६

शिष्य—मैं सत्ता के विभिन्न मनोवैज्ञानिक भागों में फर्क जानना चाहता हूं, जैसे मानसिक में

१. मुख्य मानसिक, २. मानसिक प्राण, ३. मानसिक भौतिक।

प्राण में १. प्राणिक मन, २. मुख्य प्राण, ३. प्राणिक भौतिक

और भौतिक में १. भौतिक मन, २. भौतिक प्राण और ३. मुख्य भौतिक।

श्रीअरविंद—इस भेद को भाषा में रखना कठिन है, अगर रखा भी जाये तो वह अपर्याप्त और आंशिक होगा। अगर तुम मनुष्य के मानसिक भाग को लो तो देखोगे कि वहां एक भाग है जिसे शुद्ध मानसिक भाग कहा जा सकता है जो सिर के ऊपर ऊंचाई पर रहता है और मस्तिष्क द्वारा भौतिक जीवन के साथ आदान-प्रदान करता है। यह विचारशील मन है। इसका मुख्य संबंध होता है तर्क-वितर्क, मानसिक रूपों की रचना और मानसिक इच्छा की क्रियावली।

फिर मानसिक भाव और संवेदन हैं जो सचमुच मानसिक तो नहीं हैं, वे प्राण से उठकर मन में जा पहुंचते हैं और मानसिक रूप धारण कर लेते हैं, मानसिक भाव और मानसिक संवेदन बन जाते हैं—इसे मैं मानसिक प्राण कहता हूं।

कुछ लोगों के अनुसार यह शुद्ध रूप से प्राण है जो सिर से लेकर वाणी के केन्द्र (गरदन) तक मानसिक सत्ता होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्य—बुद्धि क्या है ?

श्रीअरविंद—बुद्धि वह है जिसे मैं शुद्ध मन कहता हूं। उसमें प्रज्ञा और इच्छा-शक्ति मिली होती है। वह चिंतन और मनन की क्षमता है, वह तर्क करती है; वह ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने के लिये उठती है जैसे 'सत्य क्या है,' 'मुझे क्या करना चाहिये,' 'मुझे कैसे करना चाहिये ?' जब यह शुद्ध मानसिक क्षमता विकसित होती है तो हम उसमें अंतर्दर्शन और मानसिक दृष्टि की कुछ शक्ति भी पाते हैं। वह रूप और वाणी की रचना करती है।

शिष्य—वाणी का केन्द्र कहां है ?

श्रीअरविंद—वाणी का केन्द्र कंठ के नीचे है और सचमुच वाणी मानसिक क्षमता है। वह विचार और मनन के परिणामों को वाणी के माध्यम से प्रकट करने की कोशिश करती है। यह विचार की अभिव्यक्ति के लिये है परंतु भाव और प्राणिक सत्ता भी अपने-आपको प्रकट करने के लिये इसका उपयोग करते हैं। पहले वे निम्न भागों में से ऊपर जाते और फिर वाणी द्वारा अपने-आपको प्रकट करते हैं। लेकिन तत्त्वतः वाणी मनःशक्ति है।

शिष्य—मानस क्या है, बुद्धि और मानस में क्या फर्क है ?

श्रीअरविंद—सामान्यतः जब हम मानस शब्द का उपयोग करते हैं तो उसका अर्थ होता है मन, यानी सारी मानसिक क्रियावली—चिंतन, भाव, मानसिक संवेदन, सब इसमें आ जाते हैं। लेकिन जब हम दर्शन में मानस का उपयोग करते हैं तो उसका मतलब होता है ऐन्द्रिय मन। इसका स्थान हृदय के पास होता है, जब कभी कुछ लोगों में पूर्वाभास जागते हैं तो ये मानस में ही आते हैं—ऐन्द्रिय मन में—इसीलिये उपनिषद् में इसे छठी इन्द्रिय कहा गया है।

साधारणतः वेदांत में बुद्धि का अर्थ होता है समझ के साथ इच्छा-शक्ति। वह सत्य को खोजती या खोजने की कोशिश करती है और फिर उसके अनुसार कार्य करने का निश्चय करती है।

और फिर है मानसिक भौतिक। यह भौतिक मन नहीं है। यह वह चीज नहीं है जो जड़ के पीछे रहती और उसे सहारा देती है। यह शुद्ध विवेचन की किसी क्रिया के बिना अपने-आपको दोहराती रहनेवाली अभ्यासगत मानसिक गति है, उसमें अगर कोई विवेचन होता भी है तो यांत्रिक। वह अपने ही चक्कर में घूमता चलता जाता है और मन के अन्य भाग उसके बारे में सचेतन नहीं होते। वह अपने पुराने भावों, संस्कारों को यंत्र की तरह दोहराता रहता है। उसमें न तो प्राणिक आवेग और न स्वयं मन की कोई सृजनात्मक क्रिया होती है।

शिष्य—मेरा ख्याल है कि मानसिक, प्राणिक और शारीरिक स्तर पर अतिमानस का कोई तत्त्व रहता होगा। मानसिक सत्ता में कौन-सी चीज उससे मिलती-जुलती है ?

श्रीअरविंद—मानसिक स्तर पर अतिमानस अंतर्भास है। यह शुद्ध अतिमानस नहीं, उसका मानसिक रूप है।

उसके बाद नाभि और उसके नीचे और कुछ लोगों के मतानुसार हृदय से नाभितक प्राणिक सत्ता है। अपनी निजी प्रकृति में यह प्राण-गति या जीवन-शक्ति है जो अपने-आपको जीवन में कार्यान्वित करना चाहती है। उसका सबसे अनगढ़, अपरिष्कृत रूप है कामना। वस्तुतः यह शक्ति है जो अधिकार करना और भोग करना चाहती है। वह वस्तुओं को पकड़कर उन पर अपनी छाप लगाना चाहती है। यह अधिकार तथा भोग के लिये वस्तुओं को पकड़ती है। यही मनुष्य के अंदर महत्त्वाकांक्षा, नारी के लिये कामना, धन और शक्ति के लिये कामना, कामना के सभी अहंकारात्मक रूप पैदा करती है। प्रकृति में जीवन के लिये यह अनगढ़ रूप बहुत उपयोगी है।

मनुष्य के अंदर प्राणिक सत्ता ही यह करना चाहती है और वह करना चाहती है। वह हमेशा अपने-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपको बाहर उछालने में व्यस्त रहती है। प्राणिक प्रकृति का यह तात्त्विक रूप है। उसके पीछे होता है प्राणिक मन। वह एक विचार का रूप लेता है परंतु यह मानसिक विचार के रूप से भिन्न होता है। यह कोई ऐसी चीज है जो मन से न निकलकर सीधी प्राण से निकलती है, वह प्राणिक गतिविधियों के साथ रहती, उन्हें जानती और वाणी तथा मानसिक रूपों में प्रकट करती है। वह तर्क नहीं करती। वह भी शुद्ध मन की तरह सोचती और योजना बनाती है लेकिन वह एक और तरीके से सोचती और योजना बनाती है। यह एक ऐसा मन है जो अलग खड़ा रहता और यह व्यवस्था करता है कि आवेगों को कैसे चरितार्थ करे।

शिष्य—लेकिन तब यह सच्चा नहीं मिथ्या विचार होगा।

श्रीअरविंद—वह मिथ्या नहीं होता, केवल मानसिक विचार न होकर यह प्राणिक विचार है। उदाहरण के लिये जब मसोलिनी कहता है, 'सूर्यालोक में इटली का अपना स्थान होगा' तो यह मानसिक नहीं प्राणिक विचार है।

शिष्य—क्या यह मनोभाव नहीं है ?

श्रीअरविंद—यह मूलतः मनोभाव नहीं है। यह सीधा उसके प्राणिक अहंकार से आनेवाला विचार है। फिर उसके साथ उसका देशप्रेम का भाव भी हो सकता है। वह अपने तर्क से इसके औचित्य को सिद्ध करने के लिये भी कह सकता है। वह अपनी बुद्धि से कह सकता है, "मैंने यह बात कही है, अब तुम इसके लिये कोई युक्ति ढूंढ निकालो और यह भी बताओ कि यह क्यों सत्य है।"

शिष्य—तब फिर क्रियाशील मन क्या है ?

श्रीअरविंद—क्रियाशील मन है इच्छा-शक्ति, जब कि प्राणिक मन है कामना-मन। वह बिना किसी तर्क के प्राणिक ललक की कामना करता है। जैसा कि मैंने कहा जब मन कार्य करता है तो पहले वह इस प्रश्न का उत्तर देने की कोशिश करता है, "सत्य क्या है और मुझे क्या करना चाहिये ?" वह इसी पर रुक नहीं जाता। वह निश्चय भी करता है कि "मैं इसे कैसे करूं ?" वह इच्छा का भाग है। वह योजना भी बनाता और व्यवस्थित भी करता है परंतु एक भिन्न तरीके से। क्रियाशील मन वह इच्छा-शक्ति है जो बुद्धि के निर्णयों को कार्यान्वित करने की कोशिश करती है।

फिर है भौतिक प्राण यानी प्राण में भौतिक भाग। भौतिक स्तर पर प्राणिक आवेगों को चरितार्थ करने के लिये यह जरूरी है। सामान्यतः यह गुजरती हुई घटनाओं और अस्थायी गतियों से संबंध रखता है। यह छोटी-छोटी बातों पर क्षुब्ध हो जाता है, आसानी से परेशान हो जाता है। वह बड़ी जल्दी आनंद-विभोर हो उठता है, उसी तरह बड़ी जल्दी कुंठित भी हो जाता है। यह वह बेचैन हिस्सा है जो गुजरती हुई चीजों से संबंध रखता है तथा औरों को भी बेचैन करता है। प्राण में आवश्यक प्रेरणा हो सकती है पर यदि यह भौतिक भाग तैयार न हो तो उसे इस भूमि पर उतारा नहीं जा सकता।

इन सबसे मिलकर प्राण बनता है। सत्ता के पूर्ण विकास के लिये यह बहुत जरूरी है। वस्तुतः प्राण ही मन को उसकी ऊर्ध्वमुखी गति में सहारा देता है—कम-से-कम उसे देना तो चाहिये क्योंकि उसके बिना मन अपने-आपको जीवन में कार्यान्वित न कर सकेगा। वह केवल आदर्श, भाव और सिद्धांत रह जायेगा।

शिष्य—इसका मतलब यह हुआ कि प्राण को मानसिक भावों के साथ सहमत होना चाहिये।

श्रीअरविंद—हां, अन्यथा कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता।

शिष्य—लेकिन तब क्या मन प्राण-शक्ति को खींचता है या प्राण मानसिक ऊर्जा का आह्वान करता है ?

श्रीअरविंद—यह इसपर निर्भर है कि कौन क्षेत्र में पहले आता है। अलग-अलग व्यक्तियों में अलग-अलग होगा, किसी में मन पहले किसी में प्राण पहले।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्य—अगर प्राण मन को सहारा दे तो मन की विजय की पूरी संभावना रहेगी ?

श्रीअरविंद—जरूरी नहीं है। हो सकता है कि प्राण राजी हो जाये और मानसिक सत्ता की सहायता करने को तैयार हो परंतु उसमें इतनी काफी शक्ति न हो कि विचारों को जीवन में क्रियान्वित कर सके।

शिष्य—प्राणमय सत्ता में अतिमानसिक तत्त्व कौन-सा है ?

श्रीअरविंद—तुम कह सकते हो कि प्राण में अतिमानसिक तत्त्व है, प्राणिक अंतर्भास, प्रेरित आवेग और अंतःप्रेरणाएं। यह एक ऐसी चीज है जो ऊपर से सीधी प्राणिक सत्ता में आती है, यह जरूरी नहीं है कि वह मन को छूती हुई आये। वही इस बारे में सच्चे अंतर्भास देती है कि क्या करना है। ऐसे लोग हैं, और यह जरूरी नहीं कि वे योगी हों, जो चिंतन, मनन के बिना ही एकदम जान लेते हैं कि कौन-सी चीज उचित है जिसे करना चाहिये।

सभी प्रतिभाशाली व्यक्तियों में यह क्षमता होती है—एक प्रकार का अर्द्ध-अतिमानसभावापन्न प्राण-पुरुष, जो हमेशा उनसे ठीक काम करवाता है, ऐसा काम जिसे करना चाहिये। वे अपने कामों में भूल नहीं करते। साधारणतः वे तर्क नहीं करते। वास्तव में वे तर्क नहीं कर सकते, कारण नहीं बता सकते फिर भी हमेशा ठीक चीज करते हैं और सफल होते हैं।

जैसा कि मैंने कहा, प्राण हमारी सत्ता का बहुत जरूरी अंग है। जब वह बदल जाता है तो उच्चतर शक्ति के हाथ में यंत्र बन जाता है। तब कामना नहीं, उच्चतर शक्ति उसके द्वारा काम करती है।

ऐसा कर सकने के लिये उसे अपने-आपको मन से ऊपर के सत्य की ओर खोलना चाहिये।

—पुराणीकृत श्रीअरविंद की 'ईवनिंग टॉक्स' से

''कुछ माताजी के बारे में''

कुछ अद्‍भुत बातें

माताजी अपने-आप उच्चकोटि की चित्रकार और संगीतकार थीं। जन्म से फ्रेंच न होने के बावजूद उनकी फ्रेंच बहुत अच्छी थी। उन्होंने थोड़ी-बहुत संस्कृत भी सीखी थी। एक मजेदार बात यह है कि साधारणतः संस्कृत के शब्द बोलते हुए उनके उच्चारण यूरोपीय लोगों जैसे होते थे परंतु एक युवक के साथ बात करते हुए उनके उच्चारण एकदम शुद्ध संस्कृत जैसे ही होते थे। एकबार उसने इसका रहस्य जानना चाहा तो उन्होंने कहा, ''साधारणतः मैं उसी तरह बोलती हूं जैसी मेरी शिक्षा हुई है लेकिन मैं देखती हूं कि अगर मैं शुद्ध उच्चारण करूं तो तुम्हें बहुत खुशी होती है इसलिये मैं तुम्हारे आगे शुद्ध संस्कृत बोलने की कोशिश करती हूं।''

इतना ही नहीं, माताजी, एक तरह से कहा जाये तो, सभी भाषाएं बोल और समझ सकती थीं, इसके लिये उन्हें प्रयास करने की जरूरत न थी। एक उदाहरण देखिये : एक बार पच्चीस कन्नड़ स्त्री-पुरुष दौड़ते हुए एक युवक के पास आये और सबने एक सांस में कहा, 'आज हमारे साथ माताजी ने कन्नड़ में बातचीत की।' युवक को पूरा विश्वास था कि वह सच्ची बात जानता है कि माताजी कन्नड़ तो क्या कोई भी भारतीय भाषा नहीं जानतीं। लेकिन जब एक साथ पच्चीस साक्षी एक बात कह रहे हैं तो उनपर अविश्वास भी कैसे किया जाये !

उसने सीधा, सरल रास्ता अपनाया और जाकर माताजी से ही यह प्रश्न कर डाला। माताजी ने मुस्कान के साथ उत्तर दिया, ''तुम दोनों की बात सच्ची है। मुझे कन्नड़ का एक शब्द भी नहीं आता परंतु उन्होंने मेरी बात कन्नड़ में ही सुनी थी। चेतना का एक स्तर है जहां भाषा की जरूरत नहीं होती,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहां शब्दों का आदान-प्रदान नहीं होता, चेतना चेतना की बात को बिना किसी बाहरी साधन के समझ लेती है। मैं वहां पर बोली थी, उन लोगों ने वहीं मेरी बात को सुना और उनकी चेतना ने उसे कन्नड़ में अनूदित कर लिया। उनकी जगह कोई चीनी या जापानी होता तो वह उसी बात को चीनी या जापानी में सुन और समझ लेता।'' इस तरह की घटनाएं होती ही रहती थीं।

हां, तो बात कला की हो रही थी, तो माताजी का कहना था कि अपने आधारभूत सत्य में कला दिव्य अभिव्यक्ति के सौंदर्य का पक्ष है। कलाकार भी योगी की तरह उचित अभिव्यक्ति को पाने के लिये अपने अंदर की गहराइयों में जाता है।

लीयोनार्डो द विंची अद्‌भुत क्षमतावाले कलाकार और अनेकमुखी प्रतिभावाले कलाकार थे। उनके बारे में माताजी कहती हैं, ''वे योगी के सिवा और कुछ न थे। संगीत भी तत्त्वतः आध्यात्मिक कला है और इसका संबंध हमेशा धार्मिक भाव और आंतरिक जीवन के साथ रहा है। जब वीथोवन ने नाइन्थ सिम्फनी लिखी तो उसे उच्चतर जगत् में उद्‌घाटन और उच्चतर जगत् के यहां, पार्थिव जगत् में अवतरण की अनुभूति हुई थी। मन से बहुत ऊपर एक जगत् है जिसे हम सामंजस्य का जगत् कह सकते हैं, अगर योग द्वारा तुम समस्त कलाओं के स्रोत, इस जगत् तक पहुंच सको तो, यदि तुम चाहो तो तुम सभी कलाओं के स्वामी बन सकते हो।''

माताजी ने इसी विषय पर बोलते हुए एक बार कहा था कि प्राचीन भारत में लोग अपनी चित्र-कला या मूर्तियों पर नाम नहीं लिखा करते थे। उन दिनों कलाकार को जो कुछ करना होता था उसे वह यह सोचे बिना करता था कि आनेवाली पीढ़ियों में लोग उसे जानेंगे या नहीं, सब कुछ उच्चतर सौंदर्य को प्रकट करने के लिये अभीप्सा की गति से किया जाता था और सबसे बड़ी इच्छा यह होती थी कि कलाकार जिस देव का आह्वान कर रहा है उसके योग्य एक आवास बना दे।

हमने ऐसे बहुत से उदाहरण देखे हैं जिनमें लोग अविश्वसनीय जीवन जीते थे परंतु उन्होंने अंतःप्रकाश पाये। भगवान् तो हमेशा हर जगह उपस्थित होते ही हैं, अगर अचानक किसी समय आंतरिक द्वार खुल जाये तो भगवान् का दर्शन हो जाता है। इसके विपरीत जो संत या महात्मा अपनी महिमा से भरा होता है, दर्प, घमण्ड का पुतला होता है उसके लिये कोई आशा नहीं कि उसके अंदर भगवान् प्रकट होंगे। भागवत संपर्क में सबसे बड़ी बाधा है घमंड।

भागवत संपर्क के लिये सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण चीज है अभीप्सा की तीव्रता और यह सब तरह की अवस्थाओं में आ सकती है।

नया शिवाला

आज हमारे देश की हालत दर्दनाक है, जिधर देखो उधर साम्प्रदायिकता के झंडे गाड़े जा रहे हैं और इन झंडों के साथ-साथ तनाव, कलह, द्वेष इत्यादि रूपी कलुष चारों खूंट बंधते चले जा रहे हैं। आज की हालत देखकर कवि इक़बाल की बरसों पहले लिखी ''सदा-ए-दर्द'' नामक उर्दू की कविता बरबस याद हो आती है जो उन्होंने देश में हो रहे हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिक दंगों से विक्षुब्ध होकर लिखी थी। इन दंगों से उनका हृदय तथा मस्तिष्क बुरी तरह से कचोटे गये थे।

दुःख की बात तो यह है कि इतने वर्षों के बाद आज भी इक़बाल की यह कविता कहीं अधिक बड़े पैमाने पर सटीक बैठती है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जल रहा हूं कल नहीं पड़ती किसी पहलू मुझे,
हां डुबो दे, ए मुहीत-ए-आब-ए-गंगा तू मुझे।
सर ज़मीं अपनी क़यामत की निफ़ाक़अंगेज़ है,
वस्ल कैसा या तो इक़ कुर्ब-ए-फ़िराक़आमेज़ है।
बदले यक रंगी के ये नाआशनाई है ग़ज़ब,
एक ही ख़िरमन के दानों में जुदाई है ग़ज़ब।
जिसके फूलों में अखूवत की हवा आई नहीं,
उस चमन में कोई लुत्फ़-ए-नग्मा पैराई नहीं,
लज़्ज़त-ए-कुर्ब-ए-हक़ीक़ी पर मिटा जाता हूं मैं,
इख़्तिलात-ए-मौजः वह साहिल से घबराता हूं मैं।
दानाए ख़िरमन नुमा है शायर-ए-मुअजिज़ बयां,
हो न ख़िरमन ही तो इस दाने की हस्ती फिर कहां।
हुस्न हो क्या खुद नुमा जब कोई माइल ही न हो,
शम्अ को जलने से क्या मतलब जो महफिल की न हो।
ज़ौक़-ए-गोयाई खमूशी से बदलता क्यों नहीं,
मेरे आईने से ये जौहर निकलता क्यों नहीं।
कब ज़बां खोली हमारी लज़्ज़त-ए-गुफ़ार ने,
फूंक डाला जब चमन को आतिश-ए-पैकार ने।

[कवि प्रस्तुत कविता में देशवासियों के मध्य साम्प्रदायिक फूट तथा कलह के कारण अत्यंत क्षुब्ध होकर कह उठता है कि मैं जल रहा हूं तथा बेचैन हूं। मुझे किसी करवट चैन नहीं पड़ती। ऐ गंगा के जल ! तू मुझे अपने में डुबो ले। कवि के निकट उसके अपने देश की धरती अत्यधिक घृणा व मतभेद उत्पन्न करनेवाली है। अतः यहां मेल-मिलाप कहां ? यहां की निकटता में भी दूरी शामिल है। अर्थात् प्रकट रूप में तो हिन्दू एवं मुसलमान एक-दूसरे के निकट हैं परंतु धार्मिक उसूलों के कारण दूरी भी विद्यमान है। कवि भाई-चारे व एकता की बजाय यहां विद्यमान अपरिचय और अजनबीपन पर आश्चर्य प्रकट करता है और यहां के वासियों की एक ही चमन के दानों से उपमा देते हुए उनमें विद्यमान पारस्परिक अलगाव पर दुःखी है।

कवि कहता है कि उसे खेद है कि इस चमन के फूलों में भाई-चारे की भावना विद्यमान नहीं और न ही एकता के गीत का कोई आनंद ही। तदनन्तर कवि हिन्दू और मुस्लिम दोनों के मध्य वास्तविक निकटता की कामना करता है और उसके लिये कुर्बान जाने की बात कहता है। वह इनके बीच पारस्परिक मतभेद और झगड़ों को देखकर घबरा उठता है।

इक़बाल ने कवि की उपमा चमन के उस दाने से दी है जिससे चमन का हाल मालूम हो सके क्योंकि कवि का काव्य ऐसा दर्पण है जिसमें पूरे समाज की तस्वीर देखी जा सकती है। दाने के अस्तित्व से अभिप्राय कवि के अस्तित्व से भी है और ख़िरमन अर्थात् चमन से अभिप्राय क़ौम के अस्तित्व से। यदि क़ौम का अस्तित्व न हो (हिन्दू और मुस्लिम यदि दोनों मिलकर एक न हो सकें) तो फिर कवि का एकता का संदेश भी ठीक उसी तरह से व्यर्थ है जिस प्रकार सौंदर्य का प्रदर्शन, जबतक कि कोई उसकी ओर आकृष्ट न हो अथवा शमा के जलने का क्या अर्थ जब कोई महफिल ही न जमे। मेरा मौन मुखर होकर बोलने की कामना में परिवर्तित क्यों नहीं हुआ और मेरे दिल से यह जौहर (परस्पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकता की बात) अर्थात् अच्छी बात बाहर क्यों नहीं आई। कवि को खेद है कि हमने ज़बां खोली अर्थात् उस समय हिन्दू-मुस्लिम एकता का संदेश दिया जब हिन्दु-मुस्लिम झगड़ों व दंगों ने हिन्दुस्तान को बर्बाद कर दिया।]

सच कह दूं ए बरहमन ! ग़र तू बुरा न माने,
तेरे सनमक़दों[1] के बुत हो गये पुराने।
अपनों से बैर रखना तूने बुतों से सीखा,
जंगो-जदल[2] सिखाया वाइज़[3] को भी खुदा ने।
तंग आके मैंने आख़िर दैर-ओ-हरम[4] को छोड़ा,
वाइज़ का वाज़ छोड़ा, छोड़े तेरे फ़साने।
पत्थर की मूरतों में समझा है तू खुदा है,
ख़ाक-ए-वतन[5] का मुझको हर ज़र्रा[6] देवता है।
आ ग़ैरियत[7] के पर्दे एक बार फिर उठा दें,
बिछड़ों को फिर मिला दें नक़्श-ए-दुई[8] मिटा दें।
सूनी पड़ी हुई है मुद्दत से दिल की बस्ती,
आ इक नया शिवाला इस देश में बना दें।
दुनिया के तीरथों से ऊंचा हो अपना तीरथ,
दामान-ए-आसमां से इसका कलस मिला दें।
हर सुबह उठ के गायें मन्तर वो मीठे-मीठे,
सारे पुजारियों को मय[9] पीत की पिला दें।
शक्ति भी शांति भी, भगतों के गीत में है,
धरती के बासियों की मुक्ति परीत में है।

'गैर्वाणी'

कः शूद्रः . . . ?

एवं किल अनुश्रूयते—

कोपात् परो न चाण्डालश्चाण्डालत्वं भवेद् यतः।
क्रोधस्पर्शवतः स्पर्शोऽपवित्रान् न पवित्रयेत्॥
जायते जन्मना नैव चाण्डालो वा द्विजोऽपि वा।
सर्वेऽपि जन्मना शूद्रा जायन्ते कर्मणा द्विजाः॥

(क्रोधात् महत्तरः चाण्डालः नैव अस्ति। कोपात् जनः चाण्डालत्वं प्राप्नोति। कुपितस्य साधोः अपि स्पर्शः अपवित्रान् न पवित्रयति। केवलं जन्मना न कोऽपि चाण्डालो वा द्विजो वा भवति, जन्मना संस्कारं विना च सर्वे शूद्राः तिष्ठन्ति, संस्कारेण कर्मणा च द्वितीयं जन्म—ब्राह्मणत्वं प्राप्नुवन्ति।)

[1] मूर्तिगृह, मंदिर, [2] युद्ध, [3] धर्मोपदेशक, [4] इबादतख़ाना, मूर्तिगृह, ईश्वर का घर, [5] मातृभूमि की मिट्टी, [6] धूलि कण, [7] परायापन, [8] दुई के चिह्न, [9] सुरा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्ति काचित् कथा एषां वचनानां पृष्ठतः; श्रूयतां तावत् —

कश्चित् तथाकथितसिद्धमहात्मा गङ्गास्नानं कृत्वा आगच्छति स्म। मार्गस्य द्वयोः पार्श्वयोः तस्य दर्शनाय विशालः जनसम्मर्दः आसीत्। सर्वेऽपि सिद्धमहात्मनः दर्शनं कृत्वा आत्मानं धन्यभागं अमन्यन्त। दुर्भाग्येन तस्मिन् जनसम्मर्दे कश्चित् चाण्डालः अपि तिष्ठति स्म। शैशवादेव तस्य मनसि एषः भावः प्रवेशितः अभूत् यत् अहं अस्मि शूद्रजातौ उत्पन्नः कश्चित् चाण्डालः। मम छाया अपि उच्चकुलेषु ब्राह्मणेषु न पतेत्! सिद्धं पुरुषं वीक्ष्य सः बहु-प्रयत्नमकरोत् यथा तस्य वस्त्रखण्डं कदाचित् तं न स्पृशेत्... किन्तु निरर्थकोऽभवत् तस्य सर्वः प्रयासः। महात्मनः न केवलं दृष्टिः तस्य उपरि अपतत् अपि तु तयोः स्पर्शोऽपि सञ्जातः...।

अन्यस्मिन् क्षणे सम्पूर्णं दृश्यं परिवर्तितम्। यः सौम्यतायाः साक्षात् मूर्त्तिः प्रतिभाति स्म सः एव क्रोधस्य प्रचण्डाग्निवत् प्रज्वलितः। महात्मनः भृकुटिः तता, नेत्राभ्यां धिक्कार-सूचकाः तीक्ष्णशराः निर्गत्य चाण्डालस्य हृदयम् अविध्यन्। तस्य तथा भयङ्करीम् आकृतिं वीक्ष्य कम्पमानः बद्धाञ्जलिः चाण्डालः अब्रवीत्—क्षम्यतां प्रभो, क्षम्यताम्, महान् अपराधः जातः मम...

किन्तु चाण्डालस्य वचः तु महात्मनः क्रोधाग्नौ घृतमिव आचरत्। क्रोधेन उन्मत्तः इव कमपि प्रस्तरम् उत्थाप्य प्राहरत् तम्, भृशं च अभर्त्सयत्—अन्ध! मूर्ख! न जानासि यत् गङ्गातटस्य अस्मिन् मार्गे तव प्रवेशः एव निषिद्धः। कथं साहसं जातं तव अत्र आगन्तुम्?

चाण्डालः वराकः हस्तौ बद्ध्वा नतशिराः पत्रवत् कम्पमानः तथैव अतिष्ठत्।

साधोः क्रोधः तं दृष्ट्वा अधिकाधिकं वर्धते स्म, सः च तं निरन्तरम् आक्षिपत्—गच्छ, त्वं मम सम्मुखात्, न केवलं त्वां तव सम्पूर्णं कुलमहं अस्मात् ग्रामात् बहिष्करोमि। वज्रमूढ! मम पूजायां विलम्बः भविष्यति यतो हि तव स्पर्शेन मया पुनः गङ्गास्नानं कर्तव्यं भविष्यति।

हठात् चाण्डालस्य सम्पूर्णभङ्गिमा परिवर्तितः, मुखाकृतिः रूपान्तरिता। यः लज्जया, आत्मग्लानिना आत्मानं भूमौ निवेशयितुमैच्छत् सः एव उन्नमय्य ऋजुदृष्ट्या महात्मानं वीक्ष्य गभीरवाण्या अवदत्—बन्धो, आगच्छ, आवां सार्द्धमेव स्नास्यावः, मया अद्य स्वभ्राता प्राप्तः...

ईषत् विरम्य, चतुर्दिशं दृष्ट्वा सर्वान् सम्बोध्य चाण्डालः पुनरपि अवदत्—

'सर्वेऽपि जन्मना शूद्रा जायन्ते कर्मणा द्विजाः।
कोपात् परो न चाण्डालः...'

एषः जन्मना तथाकथितद्विजः भूत्वा परं सिद्धमहात्मनः उपाधिं प्राप्य अपि कोप-कर्मणा तु अद्य चाण्डालः जातः। अधुना आत्मनः परिशुद्ध्यर्थं यदि एतेन गङ्गास्नानं कर्तव्यं तदा अहमपि तेनैवाधिकारेण स्वबन्धुना सह स्नानं कृत्वा चित्तशुद्धिं कुर्याम्...

—वन्दना

———

हमेशा परम प्रभु की इच्छा पूरी होती है। यह कभी न भूलो और तुम शांति में रहोगे।

श्रीमां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

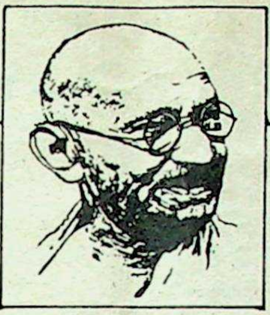

"सच्चे लोकतंत्र को केवल केन्द्र में बैठे 20 व्यक्ति ही नहीं चला सकते, इसे नीचे से प्रत्येक गांव के लोग ही चला सकते हैं।"

....गांधीजी

सत्ता सीधे जनता को

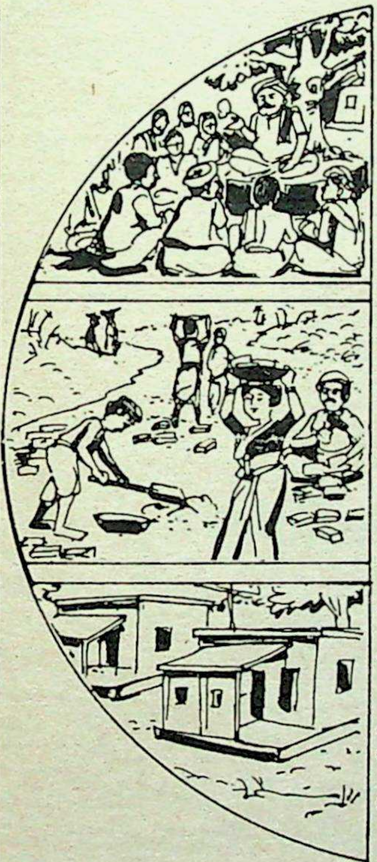

मुख्य विशेषताएं

पंचायती राज विधेयक

- गांव, ब्लाक और जिला स्तरों पर पंचायतों का गठन
- चुनाव आयोग की देखरेख में तीनों स्तरों पर सभी स्थानों के लिए प्रत्यक्ष चुनाव
- कार्यकाल – 5 वर्ष। यदि कोई पंचायत समय से पहले भंग कर दी जाती है तो छह माह के अन्दर पुनः चुनाव
- अनुसूचित जातियों/अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या के अनुपात के आधार पर स्थान आरक्षित
- महिलाओं के लिए 30 प्रतिशत आरक्षण
- पंचायतों द्वारा सामाजिक न्याय दिलाये जाने के साथ-साथ स्थानीय विकास योजनाएं बनाना और उन्हें कार्यान्वित करना
- पंचायतों के कार्य को सुगम बनाने के लिए पर्याप्त धन का प्रावधान

नगरपालिका विधेयक

- तीन प्रकार की नगरपालिकाओं – नगर पंचायतें, नगर परिषदें और नगर निगम – के गठन का प्रावधान
- चुनाव आयोग की देखरेख में प्रत्यक्ष चुनाव – कार्यकाल – 5 वर्ष
- यदि कोई भी नगर निकाय समय से पहले भंग हो जाता है तो उसके लिए छह महीने के भीतर पुनः चुनाव
- समाज सेवा के इच्छुक व्यक्तियों को अपने क्षेत्र की सेवा करने का अवसर उपलब्ध कराने के लिए वार्ड समितियां बनाने का प्रावधान
- स्थानीय निकायों को प्रभावी रूप से सत्ता की सुपुर्दगी
- नियोजन प्रक्रिया में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका निभाने का अधिकार
- नगर निकायों के लिए पर्याप्त धन की सुविधा

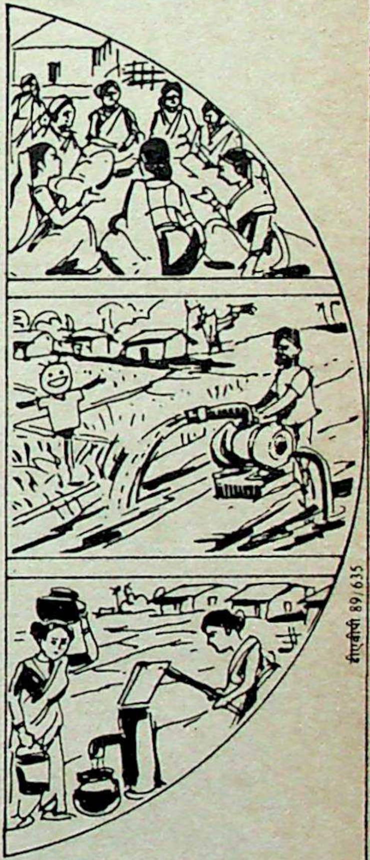

डीएवीपी 89/635

जन-जन के द्वार पर विकास और लोकतंत्र पहुंचाने की दिशा में एक क्रांतिकारी कदम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"Work done in the right spirit is meditation."

— THE MOTHER

With Best Wishes from:

MRS. KOYAL DEORAH CHARITABLE TRUST,

28, VARSHA, 69/B, NEPEANSEA ROAD,

BOMBAY - 400 006

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् के प्रति अपने समर्पण को पूर्ण बनाने की कोशिश करो तो तुम्हारे लिये तुम्हारे जीवन को पूर्ण बना दिया जायेगा।

—श्रीमां

एस. एन. सण्डरसन एण्ड कम्पनी

१ देशबन्धु गुप्त रोड

नयी दिल्ली-११००५५

With the Best Compliments of:

Indian Transport Agency

Leading Bank approved Transport House
since 1949; Fleet Owners

H.O.: **24 Ganesh Chandra Avenue, Calcutta – 700 013**
PHONES: 26-1953/26-5003 TELEX: 021-7889 DORA IN

branches:
Bombay, Gauhati, Dibrugarh, Digboi, Tinsukia, Sibsagar, Jorhat, Shillong, Nowgong, etc.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Assam Tea Warehousing Corporation
Indian Tea Storage Agency

The most tried & trusted warehouse of
Tea Trade at Gauhati and Calcutta

3-B, Lal Bazar Street
R.N.M. House, 4th Floor
CALCUTTA : 700 001.

Phone: 28-1287 & 28-1290 Gram: INTEASTORE
Tlx No.: 21-7889 DORA IN

Nothing but a radical change of consciousness can save humanity from the terrible plight into which it is plunged.
THE MOTHER

With the Compliments of:

Sri Mahalaxmi Oil Mills
RANIGANJ, Burdwan (W. Bengal)

M/S New Horizon Agencies
BITUMEN & P.O.L. PRODUCTS
TRANSPORT CONTRACTOR
H.O. RANIGANJ – 713 347 (W. Bengal)

With Best Compliments of:

deorah Seva Nidhi
(Charitable Trust Dedicated to Service)

25 Ballyganj Park
Rajnigandha 13 E
CALCUTTA 700 019

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तुम औरों से जो करवाना चाहते हो उसे स्वयं करो।

—श्रीमां

इण्डियन आयल के निम्नलिखित डीलर्स आपकी सेवा में

कुमार आयल्स

केरोसिन व मोबिल आयल डीलर्स

राम तीर्थ मार्ग, सहारनपुर—२४७००१

फोन ४०६५

कुमार आयल्स

केरोसिन व मोबिल आयल डीलर्स

देवबन्द

पी पी फोन ३७७

बन्सल एण्ड कम्पनी

पैट्रोल पम्प, उत्तर काशी

फोन ४५

हेड आफिस:

बन्सल निकेतन

लक्ष्मण झूला मार्ग

ऋषिकेश

फोन १२५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R. N. 8837/65

Regd. No. M/8127

For us there here is only one thing that counts. We aspire for the Divine, live for the Divine, act for the Divine.

The Mother

INLAND CARRIERS
(BOMBAY)

Head Office:

Takhatmal Estate
AMRAVATI - 444 601

Phone: 2228 and 2236 Gram: INACARS

Booking Offices:

i) 112, Sarang Street, BOMBAY-400 003 (Phone: 327710)
ii) 312, Nana Peth, Laxmi Road, PUNE-441 002 (Phone: 28027)
iii) Inside Panchkuwa, Bhistiwad, AHMEDABAD-1 (Phone: 384081)
iv) Tin-Nal Chowk, Gandhi Chowk, NAGPUR-444 002 (Phone: 42643)
v) 15-8-292, Ghoshamahal Road, HYDERABAD (Phone: 41685)
vi) Opp. Old Magistrate's Court, Gheekanta, BARODA (Phone: 51919)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवम्बर १९८९

पुरोधा

DUPLICA

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Every day, at each moment, we shall aspire to do the right thing in the right way, always -

With my blessings

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, राजस्थान, मध्य प्रदेश, हरियाना, गुजरात, ओड़िसा, आंध्र प्रदेश, पंजाब और मैसूर सरकार द्वारा सरकारी पुस्तकालयों, विद्यालयों और महाविद्यालयों आदि के लिये स्वीकृत

पुरोधा नवंबर १९८९ **वर्ष २८, अंक २, पूर्णांक २७६**

विषय-सूची

प्रार्थना और ध्यान	श्रीमां	२
अंतहीन पराक्रम	श्रीअरविंद	३
दैनन्दिनी		४
बीमारी	श्रीमातृवाणी से	७
भगवान् और अभिव्यक्ति	श्रीअरविंद	९
'भारतीय संस्कृति के आधार' पर आधारित : प्राचीन पद्धति		११
'सांध्य-वार्ताएं' : सत्ता के विभिन्न भाग		१३
'कुछ माताजी के बारे में' : योग		१६
मानव स्वभाव के बारे में	श्रीमातृवाणी से	१८
भगवान् की ओर आरोहण के रहस्य	श्रीमां	२०
श्रीअरविंद की शिक्षा तथा साधना-पद्धति		२२
विरोधी शक्तियों से मुकाबला करना	श्रीमां	२४
'गैर्वाणी' : मूल्याङ्कनम्		२६
पुस्तक-परिचय		२७
स्फुट वचन	श्रअरविंद	२८

आपका अग्निशिखा/पुरोधा का चंदा . . . में समाप्त हो रहा है। कृपया अग्निशिखा के १० और पुरोधा के १४ शीघ्र भेजें अन्यथा अगला अंक वी.पी.पी. से जायेगा। वी.पी.पी. लौट आने से हमें बहुत हानि होती है। अलग अनुस्मारक नहीं भेजा जायेगा। कृपया चेक न भेजें। चाहें तो २२५ या २७५ एक साथ या किस्तों में देकर अग्निशिखा और पुरोधा के ५०० देकर आजीवन सदस्य बन सकते हैं।

	पुरोधा	अग्निशिखा	दोनों मिलाकर
आजीवन सदस्यता शुल्क	२७५	२२५	५००
वार्षिक शुल्क	१४	१०	२४

सम्पर्क-सूत्र—सम्पादक पुरोधा एवं अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी—६०५००२

सम्पादक : रवीन्द्र, वन्दना

प्रकाशक : अनिरुद्ध सरकार, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थना और ध्यान

3 November, 1912

Let Thy light be in me like a Fire that makes all alive; let Thy Divine Love penetrate me. I aspire with all my being for Thy reign as sovereign and master of my mind and heart and body; let them be Thy docile instruments and Thy faithful servitors.

—THE MOTHER

३ नवंबर, १९१२

तेरा प्रकाश मेरे अंदर एक जीवनदायिनी अग्नि की तरह हो और तेरा दिव्य प्रेम मेरे अंदर प्रवेश करे। मैं अपनी पूरी सत्ता के साथ अभीप्सा करती हूं कि तू परम प्रभु और मेरे मन, हृदय और शरीर के स्वामी के रूप में राज्य करे; वर दे कि वे तेरे विनीत यंत्र और निष्ठावान् सेवक बनें।

—श्रीमां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंतहीन पराक्रम

मेरी नौका ने किया है जलावतरण
एक अनाम अनंत के जलधि पर; मैंने छोड़ दिया मानव-तट।
मेरे पीछे सब हो गया लुप्त और मैं देख रहा अज्ञात
अतल सामने और संकेत करती एक ज्योति क्षीण।
एक अदृश्य हाथ नियंत्रित करता मेरी पतवार। रात
एक काले गलियारे में समुद्र को कर देती प्राचीरावृत,—
एक अचेतन बुभुक्षा का सिंह करता विप्रलाप और गर्जन
या मृत वैखानस का समुद्र शयन।

मैं उस शक्ति की महानता का पाता संस्पर्श मेरे चहुं ओर
जिसका मैं अन्वेषी; मेरे नीचे हैं उसके विशाल गह्वर।
दूर, किसी प्राणी ने नहीं किया पदाक्रांत वह अदृश्य शिखर।
मैं उस एकाकी और अनन्य में हो जाऊंगा विलय
और जागूंगा परमेश्वर की आकस्मिक प्रदीप्ति के भीतर,
श्रुतिवाक्य का परम हर्ष और आश्चर्य।

अनु०—अमृता भारती

—श्रीअरविंद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दैनन्दिनी

नवंबर

१. हम अपने जीवन को आसान और आरामदेह बनाने के लिये यहां नहीं हैं, हम यहां भगवान् को खोजने के लिये, भगवान् बनने के लिये, भगवान् को अभिव्यक्त करने के लिये हैं।
हमारा क्या होता है यह भगवान् का काम है, हमारा मामला नहीं है।
भगवान् हमारी अपेक्षा ज्यादा अच्छी तरह जानते हैं कि जगत् की और हमारी प्रगति के लिये क्या अच्छा है।

२. माताजी उन सबके साथ हैं जो दल और राजनीति से ऊपर भागवत जीवन के प्रति अपनी-अपनी अभीप्सा में सच्चे हैं।

३. मेरे प्रिय नन्हें बालक,
मेरा प्रेम तुम्हारे साथ रहता है। मैं प्रभु से यह निरंतर प्रार्थना करती हूं कि वे तुम्हें अपनी उपस्थिति के बारे में सचेतन कर दें और इस तरह मेरे साथ एक कर दें।
बढ़ते हुए प्रकाश और शांति में मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूं।
आगे बढ़ो, सदा ऊपर उठते हुए प्रेम और आनंद और शांति में हमेशा आगे बढ़ते रहो।

४. विश्वास रखो, मैं तुम्हारे पास हूं।
अपने समस्त कोमल प्रेम के साथ।
तुम्हारी प्रगति और तुम्हारे काम में मदद देने के लिये मेरी सहायता हमेशा तुम्हारे साथ है।
तुम जिन कठिनाइयों को आज नहीं पार कर सकते उन्हें कल या बाद में पार किया जायेगा।
बहुत शांत रहो और तुम मेरी सहायता का अनुभव करोगे।

५. सत्यतक पहुंचने और उसे अभिव्यक्त करने के लिये मानवजाति ने जो प्रयत्न किया है उसमें उन सबका स्थान है जिन्होंने कोई शोधकार्य किया है, वह चाहे जितना छोटा क्यों न हो . . .
लेकिन हमेशा यह बड़ी भूल होती आयी है कि इन आंशिक शोधों को परम सामंजस्य में एक करने की जगह इनका विरोध किया गया है। इसीलिये मानवजाति अभीतक अंधेरे में टटोल रही है।
श्रीअरविंद यह प्रकट करने के लिये आये हैं कि यह परम सामंजस्य विद्यमान है। वे हमें उसे खोजने का मार्ग दिखाने आये हैं।

६. वास्तव में प्रभावशाली रूप से सदा मेरे निकट रहने के लिये तुम्हें अधिकाधिक सच्चा और निष्कपट, मेरे प्रति खुला और स्पष्टवादी होना चाहिये। समस्त कपट को उठा फेंको और यह निश्चय करो कि तुम ऐसा कुछ न करोगे जिसे तुम मुझे तुरंत न बतला सको।

७. अपनी परिभाषा के अनुसार आश्रमवासी वह है जिसने अपना जीवन भगवान् की सिद्धि और सेवा के लिये अर्पित करने का संकल्प कर लिया हो।
इसके लिये चार गुण अनिवार्य हैं, उनके बिना प्रगति अनिश्चित है, बीच-बीच में बाधाएं आती रहती हैं और पहले ही अवसर पर कष्टकर पतन होते हैं :
सचाई और निष्कपटता, वफादारी, विनम्रता और कृतज्ञता।

८. साहसपूर्ण और सीधी स्पष्टवादिता हमेशा कठिनाइयों का सामना करने का सबसे अच्छा उपाय होती है।
अगर सत्य है तो वह कभी नहीं मुरझायेगा, परिस्थितियां चाहे कितनी भी विरोधी क्यों न हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

९. भगवान् प्रकृति की ओर झुकना नहीं छोड़ सकते, न ही मनुष्य देवत्व की अभीप्सा करने से रुक सकता है। यह तो शांत और अनंत का सनातन संबंध है। जब वे एक-दूसरे से विमुख होते हुए प्रतीत होते हैं तो उनका यह पीछे हटना और भी अधिक प्रगाढ़ मिलन के लिये होता है।

१०. मैं तुमसे पहले भी बहुत बार कह चुकी हूं कि दुःख-कष्ट की चाह करना एक अस्वस्थ मनोवृत्ति है, इससे अवश्य बचना चाहिये, लेकिन भुलक्कड़पन के द्वारा, उथली हल्की क्रियाओं और मनोविनोद द्वारा उनसे भागना कायरता है। जब कोई दुःख आता है तो हमें कुछ सिखाने के लिये आता है। जितनी जल्दी हम उसे सीख लेंगे उतनी ही जल्दी उसकी आवश्यकता कम हो जायेगी। और जब हम रहस्य को जान लेते हैं तो दुःखी रहना संभव नहीं रहता क्योंकि वह रहस्य हमें दुःख का हेतु, प्रयोजन, मूल और उससे बाहर निकलने का रास्ता दिखा देता है।

११. दुःख से छूटने का रहस्य है अहं से छुटकारा पा लेना, उसकी कैद से निकल आना, अपने-आपको भगवान् के साथ एक कर देना, उसमें मिला देना, किसी भी चीज को उससे हमें अलग न करने देना। जब व्यक्ति एक बार इस रहस्य को खोज लेता है और इसे अपनी सत्ता में चरितार्थ कर लेता है तो पीड़ा के अस्तित्व का कोई हेतु नहीं रह जाता और दुःख गायब हो जाता है। यह सत्ता के गहरे भागों में, आत्मा में, आध्यात्मिक चेतना में ही नहीं बल्कि जीवन और शरीर में भी दुःख से छुटकारा पाने का सबसे प्रबल उपाय है।

१२. अपनी अभीप्सा और अपने प्रयास में डटे रहो, अपने-आपको बाधाओं के कारण हतोत्साह न होने दो। शुरू में हमेशा ऐसा होता ही है लेकिन अगर तुम उनकी ओर ध्यान दिये बिना युद्ध जारी रखो तो एक दिन आयेगा जब बाधाएं मार्ग छोड़ देंगी और कठिनाइयां गायब हो जायेंगी। मेरी सहायता हमेशा तुम्हारे साथ है लेकिन तुम्हें उसका उपयोग करना और स्वयं अपने साधनों की अपेक्षा उसपर निर्भर रहना सीखना चाहिये।

१३. **प्रश्न**—हठ क्या है? हम उसका अच्छे-से-अच्छा उपयोग कैसे कर सकते हैं?
उत्तर—यह एक महान् सद्गुण, अध्यवसाय का गलत उपयोग है।
उसका सदुपयोग करो, और वह ठीक होगा।
प्रगति की ओर अपने प्रयास में हठी रहो तो तुम्हारा हठ उपयोगी हो जायेगा।

१४. हर्ष तब आता है जब तुम उचित वृत्ति अपनाओ।

१५. अचंचल रहो, अपने-आपको अनासक्त करके साक्षी की तरह अवलोकन करने की कोशिश करो, आवेश में आकर क्रिया करने की समस्त संभावना को रोकने की कोशिश करो।

१६. हे मेरे प्रभु, मेरे प्रभो!
तुम मुझसे जो चाहते हो, मैं वही बनूं।
तुम मुझसे जो करवाना चाहते हो, मैं वही करूं।

१७. **प्रश्न**—मेरा मन क्षुब्ध है, मेरा प्राण दुःखी है और मेरा शरीर रुग्ण।
उत्तर—चिंता न करो, चुपचाप रहो, अपनी श्रद्धा को अक्षुण्ण बनाये रखो। यह स्थिति चली जायेगी।

१८. परम प्रभु को संबोधित अभीप्सा:
मेरे अंदर सब कुछ सदा तेरी सेवा में रहे।
हे प्रभु, मेरे अंदर तुझे जानने की उद्दीप्त कामना जगा।
मैं अभीप्सा करती हूं कि मेरा जीवन तेरी सेवा के लिये निवेदित हो।

१९. मैं समस्त अहंकारमय दुर्बलताओं और समस्त अचेतन कपट-कुटिलताओं से मुक्त किये जाने के लिये अभीप्सा करता हूं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरा हृदय तेरी दिव्य विजय के लिये काफी विशाल होने की अभीप्सा करता है।
ओ मेरे हृदय, भागवत विजय के योग्य महान् बन।

२०. भागवत कृपा से हमेशा यह प्रार्थना करो कि वह तुमसे हमेशा ठीक चीज ठीक तरह से करवाये। तुम्हारे पास जो कुछ आये, अगर तुम उसे ठीक भाव से लो तो वह अच्छे-से-अच्छी निकलेगी। एक ऐसा क्षण होता है जब उचित वृत्ति सहज रूप से बिना प्रयास के आती है।

२१. जब सच्चा और पवित्र प्रेम हो, (भगवान् का प्रेम और भगवान् के लिये प्रेम) तो जो कुछ भी हो उसका उपयोग ऐक्य को बढ़ाने और उसे पूर्ण करने के साधन-स्वरूप होता है। यह चिंता, पश्चात्ताप और अवसाद के लिये कोई जगह नहीं छोड़ता, इसके विपरीत चेतना को विजय की निश्चिति से भर देता है।

२२. हर एक को अपना अवसर दिया जाता है और सभीके लिये सहायता उपस्थित रहती है—लेकिन हर एक को उसकी सच्चाई और निष्कपटता के अनुपात में लाभ होता है।

२३. मनुष्य होने के लिये नियंत्रण अनिवार्य है। नियंत्रण के बिना तुम केवल पशु होते हो। तुम मनुष्य बनना तभी शुरू करते हो जब तुम उच्चतर और सत्यतर जीवन के लिये अभीप्सा करते हो और रूपांतर के नियंत्रण को स्वीकार करते हो। और इसके लिये तुम्हें अपनी निम्न प्रकृति और उसकी कामनाओं पर प्रभुत्व पाने से आरंभ करना चाहिये।

२४. आत्म-नियंत्रण के बिना कोई जीवन सफल नहीं हो सकता।

२५. यह कहा जा सकता है कि सभी प्रकार का अनुशासन, यदि उसका अनुसरण सख्ती से, सचाई से और सोच-समझकर किया जाये तो काफी सहायता करता है, क्योंकि वह तुम्हें पार्थिव जीवन के लक्ष्यतक तेजी से ले जाता है और नूतन जीवन को ग्रहण करने के लिये तैयार करता है। आत्मसंयम का अर्थ है इस नूतन जीवन के आगमन और अतिमानसिक सद्वस्तु के साथ संपर्क को जल्दी लाना।

२६. जीवन को भगवान् के प्रति अर्पित पुष्प की भांति खिलना चाहिये।

२७. हमारी निरंतर प्रार्थना है कि हम भगवान् की इच्छा को समझ सकें और उसके अनुसार जी सकें।

२८. अपने-आपको अधिकाधिक समर्पित करो—अपनी समस्त चेतना को, जो कुछ उसमें घटित होता है उस सबको और अपने सभी कर्म तथा क्रियाओं को।
यदि तुम्हारे अंदर दोष और दुर्बलताएं हैं तो उन्हें परिवर्तित करने या नष्ट कर देने के लिये भगवान् के सम्मुख रखो।

२९. योग में जिस शक्ति की आवश्यकता होती है वह है बिना थके, उदास हुए, निरुत्साहित या अधीर हुए तथा निरंतर प्रयास करते हुए या अपने लक्ष्य या संकल्प का परित्याग किये बिना श्रम, कठिनाई या असुविधा में से गुजर जाने की शक्ति रखना।
चाहे जितना अधिक समय लगे, योग-पथ पर मनुष्य को डटे रहना चाहिये, केवल इसी तरह वह लक्ष्य पर पहुंच सकता है।

३०. जो शक्तियां साधना के मार्ग में बाधा पहुंचाती हैं वे निम्नतर मानसिक, प्राणिक और भौतिक प्रकृति की शक्तियां हैं। उनके पीछे मनोमय, प्राणमय और सूक्ष्म-भौतिक जगतों की विरोधी शक्तियां हैं। इन सबका सामना केवल तभी किया जा सकता है जब मन और हृदय केवल भगवान् की ही अभीप्सा में एकाग्र और केंद्रित हो चुके हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बीमारी

श्रीमाताजी, "बीमारियों" के प्रश्न पर आ जाती हैं। किसी व्यक्ति के यह पूछने पर कि क्या बीमारियां विरोधी शक्तियों अथवा योग के उतार-चढ़ाव की अपेक्षा रोग के कीटाणुओं के कारण नहीं होतीं ? श्रीमाताजी ने उत्तर दिया :

"योग भला कहांसे आरंभ होता और कहां समाप्त होता है ? क्या तुम्हारा सारा जीवन ही योग नहीं है ? तुम्हारे शरीर में और उसके चारों ओर रोग की संभावनाएं सर्वदा बनी रहती हैं; तुम्हारे अंदर या तुम्हारे चारों ओर सब प्रकार की बीमारियों के रोगाणु और बीजाणु झुंड-के-झुंड विद्यमान होते हैं। जो रोग तुमको वर्षों नहीं हुआ उसीके तुम एकाएक कैसे शिकार हो जाते हो ? तुम कहोगे कि ऐसा "प्राणशक्ति के सुस्त पड़ जाने से" होता है। परंतु यह सुस्ती कहांसे आती है ? यह सत्ता में किसी प्रकार का असामंजस्य होने से, भागवत शक्तियों के प्रति ग्रहणशीलता का अभाव होने से आती है। जब तुम उस शक्ति और ज्योति से जो तुम्हारा भरण-पोषण करती हैं, अपने-आपको पृथक् कर लेते हो तब यह सुस्ती आती है, तब वहां वह चीज पैदा हो जाती है जिसे औषध-विज्ञान "अनुकूल क्षेत्र" कहता है और कोई चीज इसका लाभ उठाती है। संदेह, निरुत्साह, विश्वास का अभाव, निजी स्वार्थ के लिये भगवान् की ओरसे मुंह फेर पुनः अपनी ओर पलट आना—ये हैं जो ज्योति और दिव्य शक्ति से तुम्हें अलग कर देते हैं और आक्रमण को इस प्रकार का लाभ पहुंचाते हैं। वास्तव में यही चीज है जो तुम्हारे बीमार होने का कारण है, न कि रोगाणु।"

—वार्तालाप (१९२९)

एक बात सभी लोगों ने, यहांतक कि चिकित्सक-दल ने भी, अब स्वीकार करनी आरंभ कर दी है और वह यह है कि स्वास्थ्यसंबंधी नियम केवल उसी हदतक प्रभावशाली होते हैं जिस हदतक उनपर मनुष्य का विश्वास होता है। किसी महामारी का उदाहरण ले लो। बहुत वर्ष पूर्व यहां हैजे की महामारी फैली थी—अवस्था बहुत बुरी थी—परंतु अस्पताल का प्रधान डॉक्टर बड़ा कर्मठ व्यक्ति था। उसने प्रत्येक व्यक्ति को टीका देने का निश्चय किया। टीका देकर जब वह लोगों को बिदा करता तो वह उनसे कहा करता, "अब तुम्हें टीका लग गया है और तुम्हें कुछ नहीं होगा, परंतु तुमने यदि टीका नहीं लिया होता तो तुम अवश्य मर गये होते !" वह यह बात बड़े अधिकार के साथ उनसे कहता था। साधारणतया ऐसी महामारी बहुत दिनोंतक बनी रहती है और उसे रोकना कठिन होता है, परंतु, मैं समझती हूं, लगभग पन्द्रह दिनों में उस चिकित्सक को उसे रोकने में सफलता मिल गयी; जो हो, यह कार्य आश्चर्यजनक शीघ्रता के साथ हुआ। परंतु उस डॉक्टर को यह अच्छी तरह मालूम था कि उसके टीका लगाने का सर्वोत्तम प्रभाव यह था कि उसने लोगों में विश्वास जमा दिया।

अभी, बिलकुल हाल में, उन लोगों को एक दूसरी चीज मिली है और उसे मैं अद्भुत चीज मानती हूं। उन्होंने यह पता लगाया है कि प्रत्येक रोग के लिये एक ऐसा सूक्ष्माणु (microbe) होता है जो उसे दूर कर देता है [तुम यदि चाहो तो उसे सूक्ष्माणु कहो, पर जो हो, वह एक प्रकार का कीटाणु (germ) है][1] परंतु इसमें जो इतनी असाधारण बात है वह यह है कि यह "सूक्ष्माणु" अत्यंत ही

[1] संभवतः यह उस चीज की ओर संकेत करता है जिसे आजकल "antibodies" (रोग प्रतिकारक पिंड) कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संक्रामक है, रोगों के कीटाणुओं से भी कहीं अधिक संक्रामक है। और यह सामान्यतया दो अवस्थाओं में विकसित होता हैः उन लोगों में जिनमें एक प्रकार की स्वाभाविक प्रसन्नता और स्फूर्ति होती है और फिर उन लोगों में जिनमें नीरोग होने की प्रबल इच्छा होती है। अचानक वे लोग इस "सूक्ष्माणु" को पकड़ लेते हैं और नीरोग हो जाते हैं। और अद्भुत बात यह है कि महामारी में यदि कोई एक व्यक्ति नीरोग हो जाये तो तीन और व्यक्ति तुरंत नीरोग हो जाते हैं। और यह "सूक्ष्माणु" उन सभी लोगों में पाये जाते हैं जो नीरोग हो जाते हैं।

परंतु मैं कुछ दूसरी ही बात तुमसे कहने जा रही हूं: जिस चीज को लोग सूक्ष्माणु कहते हैं वह असल में दूसरे जगत् से आनेवाले एक प्रकंपन या एक इच्छा का महज स्थूल रूप है। जब मुझे इन चिकित्सासंबंधी आविष्कारों का पता लगा तो मैंने अपने-आपसे कहा, "सचमुच, विज्ञान प्रगति कर रहा है।" हम कहीं अधिक बुद्धिमानी के साथ प्रायः यह कह सकते हैं, "जड़तत्त्व प्रगति कर रहा है," यह एक उच्चतर इच्छा-शक्ति के प्रति अधिकाधिक ग्रहणशील बन रहा है। और जो कुछ उनके विज्ञान में "सूक्ष्माणुओं" के रूप में अनूदित हुआ है वह, यदि कोई उस चीज की जड़तक जाये, महज एक प्रकंपनशील आकार के रूप में दिखायी देगा; और यह प्रकंपनशील रूप एक उच्चतर इच्छा का भौतिक रूपांतर है। यदि तुम इस शक्ति या इस इच्छा को, इस ऊर्जा, इस प्रकंपन को (चाहे जो नाम तुम इसे देना चाहो) किन्हीं विशेष परिस्थितियों में ले आ सको तो वह न केवल तुम्हारे अंदर बल्कि संक्रमण के द्वारा तुम्हारे चारों ओर भी कार्य करेगा।

(एक शिष्य के यह पूछने पर कि जब हम यहां कीटाणुओं में विश्वास नहीं करते, छाना हुआ पानी क्यों पीते हैं, श्रीमाताजी ने उत्तर दिया):

"क्या तुम में से कोई भी इतना शुद्ध और बलवान् है जिसपर सुझावों का कुछ भी असर न होता हो? यदि तुम बिना छाने पानी पीओ और सोचो कि 'अब मैं अस्वच्छ जल पी रहा हूं' तो तुम्हारे बीमार पड़ने की बहुत कुछ संभावना हो जाती है। और यद्यपि, इस प्रकार के सुझाव सचेतन मन के अंदर न भी प्रवेश करें तो भी तुम्हारी समग्र अवचेतना तो इन सुझावों के लिये निष्क्रिय रूप से खुली पड़ी ही है . . . । साधारण मानव-अवस्था वह अवस्था है जो भय और आशंकाओं से भरी हुई है। यदि तुम अपने भौतिक मन को दस मिनटतक ध्यानपूर्वक देखो तो तुम्हें पता लगेगा कि दस मिनट में नौ मिनट वह भयों से भरा रहता है . . . । और साधना और प्रयास के द्वारा यदि तुमने अपने मन और प्राण को सभी आशंकाओं तथा सभी भयों से मुक्त कर भी लिया हो तो भी शरीर को मना लेना अधिक कठिन होता है।"

(वही)

जब हम अपने मन और प्राण में अपने-आपको मुक्त कर लेने में सफल हो जाते हैं तब शरीर को मना लेना इतना कठिन क्यों होता है?

क्योंकि बहुसंख्यक मनुष्यों के अंदर शरीर अपनी अंतःप्रेरणा अवचेतना से ग्रहण करता है, यह अवचेतना के प्रभाव के अधीन होता है। जो भय सक्रिय चेतना से भगा दिये जाते हैं, वे सब-के-सब वहीं चले जाते और आश्रय ग्रहण करते हैं और फिर, स्वभावतः ही, उन्हें अवचेतना से भी बाहर खदेड़ना पड़ता है और वहां से उनकी जड़ ही उखाड़ देनी पड़ती है।

—श्रीमातृवाणी खण्ड ४ से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् और अभिव्यक्ति

समस्त सत् दिव्य यथार्थता में एक है और उस यथार्थता की अभिव्यक्ति में बहु है। परम यथार्थता निरपेक्ष, आत्मा, स्व, सत्ता, एक सत् है जो सब कुछ और सब जगह है लेकिन वह सबसे बढ़कर है और कहीं भी नहीं है। एकमेव सर्व हो सकता है क्योंकि वह विशेष रूप से कोई नहीं है। वह अपने तत्त्व में सर्वव्यापक और शाश्वत हो सकता है क्योंकि वह देश और काल से बंधा हुआ नहीं है। वह एक है लेकिन बहुसंख्यक भी हो सकता है, उसकी बहुसंख्याएं उसके एकत्व की आत्माभिव्यक्ति हैं, निषेध नहीं, बहुलता हैं विभाजन या विखंडन नहीं। उसके बहु का प्रत्येक व्यष्टि एकमेव का एक भाग मालूम होता है परंतु ऊपरी आभास के भीतर और उसके पीछे एक सद्वस्तु है और वहां हर एक एकमेव है जो अपने किसी अंश को प्रकट करता है। हर एक अपने शांत दृश्य प्रपंच में अनंत है। हर एक काल में लीला करता हुआ शाश्वत है। परंतु काल भी शाश्वत है। काल विस्तार और गति में शाश्वतता है इसीलिये हर एक वास्तव में शाश्वत की एक शाश्वत सत्ता, अनंत का अनंत, एकमेव आत्मा की एक आत्मा, एकमेव स्व का एक स्व है। क्योंकि सच्ची वास्तविकता या सद्वस्तु हमारे एक और बहु के विरोधों से परे है। उसका एकत्व और उसका बहुत्व हमेशा एक-दूसरे में छिपे रहते हैं फिर भी वह न तो एकता से बंधा है और न बहुलता से यद्यपि हैं दोनों सत्य क्योंकि दोनों ही उसके, निरपेक्ष के घनिष्ठ पहलू हैं।

*

भगवान् ऐसी सत्ता नहीं है जो विश्व को रचती और उसपर शासन करती हो। बल्कि वह स्वयं विश्व और इसके अतिरिक्त वह सब भी है जो कालातीत और देशातीत है।

भगवान् एक ऐसी सत्ता भी है जो अपने अंदर विश्व की रचना करती और उसपर शासन करती है। क्योंकि विश्व उसके सत् का एक पद मात्र है। अगर हम एक ऐसे केन्द्र की कल्पना कर सकें जो अपने वृत्त को अपने अंदर समाये हुए है तो हम विश्व में भगवान् की ठीक परिभाषा कर सकेंगे।

भगवान् का निर्वैयक्तित्व क्या है? वह नास्ति, अस्ति और संभवन का तथ्य है और भगवान् का व्यक्तित्व क्या है? यह तथ्य कि यह सब, अस्ति संभवन की तरह, नास्ति अस्ति की तरह देश और काल में और उनके परे अपने बारे में अभिज्ञ है।

प्रेम का निर्वैयक्तित्व स्वयंभू आनंद है, वह जो कुछ ब्रह्म में अभिव्यक्त होता है उसे अपनी भुजाओं में लेता, उसपर अधिकार करता और उसे सत्ता में एक बना लेता है। प्रेम का व्यक्तित्व एकमेव है जो आत्मानंद के बारे में अभिज्ञ है और अपने प्रेम को सभी प्राणियों में फैलाता है।

व्यक्तित्व और निर्वैयक्तित्व एक ही सद्वस्तु है जिसकी ज्ञान ने दो तरह से कल्पना की है। अहंकार एकमेव अनंत व्यक्तित्व की चेतना है जो सीमित करनेवाली चेतना में प्रतिबिंबित है और जो सीमित होने के कारण विकृत हो गया है। रूप अपने-आपमें सर्वदा एक चेहरा है जो काल-क्षणों के अनुक्रम में देश की इकाइयों की संगति में उस सबको भूल गया है जो स्वयं उसके पीछे है और उसके अंदर आवेष्टित है। अहंकार वह सेतु है जिसके द्वारा वह उस अज्ञान के प्रति जागता है और आत्मज्ञान की ओर लौटता है।

अगर हम रूपों के जगत् की ओर मुंह करके सेतु पर खड़े हों तो हम सापेक्ष की ओर प्रवृत्त होते हैं। अगर हम उससे मुंह मोड़ लें तो हम निरपेक्ष की ओर प्रवृत्त होते हैं। जब हम उस सेतु को पार कर लें तभी आसानी से और पूरी तरह हम निरपेक्ष में सापेक्ष का आलिंगन कर सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मा और भौतिक पदार्थ, शुद्ध सत् और देश में फैला हुआ सत् ये विश्व के दो ध्रुव हैं। आत्मा में अहंकार नहीं होता। भौतिक पदार्थ में अहंकार नहीं होता। दोनों ध्रुवों पर अहंकार अपने-आपको खो देता है—आत्मा में समन्वय द्वारा और जड़-भौतिक में विलोपन द्वारा।

अहंकार अपनी सचेतन सत्ता को विकसित करने के लिये जड़-तत्त्व, प्राण और मन के पदार्थ का उपयोग करता है। उच्चतर अनंत प्रतिज्ञान हैं जिनमें वह अपने सचेतन अस्तित्व की परिपूर्ति करता है।

एक तात्त्विक ऐक्य होता है दूसरा संकलन-फल का ऐक्य। इनमें से दूसरा केवल एक समन्वय सूत्र या बहुत्व की स्वीकृति है। तात्त्विक ऐक्य ही सच्चा ऐक्य है।

एकत्व और बहुत्व एक-दूसरे के लिये और एक सद्वस्तु के लिये जरूरी हैं। बहुत्व एकत्व का अपनी संभावनाओं में विस्तार है। एकत्व बहुत्व का अपने सारतत्त्व में संचित रूप है।

*

विश्राम में अनंत सत्ता अपनी शाश्वत एकता के बारे में अभिज्ञ है। यह है निरपेक्ष की चिरस्थायी नीरवता।

क्रियाशील अनंत चिच्छक्ति अपने शाश्वत बहुत्व के बारे में अभिज्ञ है, यह रही चिरस्थायी गति और परम पुरुष की सृष्टि।

जैसे गतिशून्य आकाश में प्रकृति के रचनात्मक आवेग का पहला चिह्न स्पंदन या शब्द उठता है और यह स्पंदन आकाशीय गतिविधि की रेखा है, आकाश के साथ उसी की गतिशील आत्मशक्ति के क्षेत्र में आकाश संपर्क करता है और वह प्रथम गति सभी रूपों और शक्तियों को आरंभ करने के लिये पर्याप्त है, उसी तरह अनंत की आदि गति होती है।

लेकिन यह स्पंदन किसी भौतिक शक्ति या पदार्थ की हलचल नहीं है और यह संपर्क भी भौतिक संपर्क नहीं है। यह आध्यात्मिक तत्त्व में चेतना का स्पंदन है, यह आध्यात्मिक पदार्थ में चेतना का अपने साथ संपर्क है।

यह आदि गति काल में मौलिक या प्रथम नहीं है क्योंकि वह सदा से है और सदा बनी रहती है। यह चेतना की उस क्रिया में मौलिक है जो शाश्वत वर्तमान में सभी चीजों का अनंत पुनरावर्तन है या अगर तुम कहना चाहो तो इसे उस सदा भरे हुए अनंत के काल के तीन युगपत् काल, भूत, भविष्य और वर्तमान कह सकते हो जो हमारी सीमित अंधी कल्पना में निरपेक्ष की रिक्त या अभावात्मक कालहीनता में अनूदित होता है।

*

समस्त सत्ता और समस्त शक्ति एकमेव परम पुरुष से आती है और कोई भी कार्य चाहे वह किसी भी सत्ता या किसी भी शक्ति का क्यों न हो वैश्व की गति है और शाश्वत तथा अनंत में संपन्न होती है। जड़-द्रव्य में बंद हमारे मन के आगे परम पुरुष अभिव्यक्त नहीं होते। हमारे असंख्य अतिभौतिक लोक हमारी पार्थिव चेतना को उस भागवत स्रोत से अलग करते हैं और हमें उनका सीधा स्पर्श नहीं पाने देते और उस अनिर्वचनीय की अनावृत तात्कालिक घनिष्ठ उपस्थिति और उसके पथ-प्रदर्शन का तो प्रश्न ही नहीं उठता। फिर भी चिरस्थायी चिच्छक्ति, वह मौलिक शक्ति, परात्पर और शाश्वत माता जो परम पुरुष को अपने अंदर छिपाये रखती है, हमें उस अनिर्वचनीय महिमा के साथ किसी प्रकार के संपर्क में ला

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकती है और उच्चतम इच्छा और उसके परिणाम हमतक पहुंचा सकती है। यह मन के द्वारा नहीं किया जा सकता क्योंकि विचारशील मन निरपेक्ष या परम पुरुष या निर्गुण तत्त्व अथवा परम उपस्थिति के बारे में एक अपर्याप्त और बिलकुल अमूर्त धारणा बना सकता है। उच्चतर मन भी जो अनुभूति प्राप्त करता है सच्चिदानंद की एक फीकी-सी प्रतिच्छाया दिखाता है जिसे वह अनिर्वचनीय, शाश्वत या अनंत का अस्पष्ट-सा भाव समझ बैठता है। मन तत् को नहीं पकड़ पाता और न ही उसमें प्रवेश कर पाता है क्योंकि अगर वह प्रयास करे तो या तो तत् अंतर्धान हो जाता है या स्वयं मन निर्विकल्प समाधि, निर्वाण, विनाश, शून्य लय में गायब हो जाता है। लेकिन मन जो नहीं कर सकता उसे अंतरात्मा और महान् गुप्त अधिमन कर सकते हैं।

पार्थिव मन के लिये भगवान् का अस्तित्व नहीं है। अगर है भी तो वह एक मानसिक विचार या भावमय या प्राण-मन का विस्तार या उसी की अपनी प्रतिमा है।

—श्रीअरविन्द

'मानव से अतिमानव की ओर' से

'भारतीय संस्कृति के आधार' पर आधारित

प्राचीन पद्धति

भारतीय शासन-प्रणाली में हमने देखा कि समाज को मुख्य रूप से चार वर्णों में विभाजित किया गया और इसी चीज ने असाधारण महानता प्राप्त कर ली—भले ही आज इस वर्ण-व्यवस्था का बहुत पतन हो गया है लेकिन फिर भी वह विद्यमान तो है ही। वस्तुतः इन वर्णों के भी कई उपवर्ण बने और आगे चलकर धीरे-धीरे शहर तथा गांवों में जाति अपना पृथक् व्यक्तित्व रखने लगी, यानी प्रत्येक गांव के प्रतिनिधि-व्यक्ति अपने धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक मामलों का निपटारा स्वयं कर लेते थे, ऐसी प्रत्येक इकाई बाहरी हस्तक्षेप से मुक्त रहती थी, केवल धर्म के बारे में मूलभूत प्रश्नों पर निर्णय प्राप्त करने के लिये शास्त्रों के संरक्षकों के रूप में ब्राह्मणों से सम्मति ली जाती थी। जिस तरह कुल का अपना विधान होता था उसी भांति प्रत्येक जाति का भी अपना विधान, अपना नियम अर्थात् 'जातिधर्म' होता था।

इस भांति प्रत्येक गांव का अपना पृथक् समाज बहुत महत्त्व रखता था और प्रशासन की दृष्टि से बहुत सुविधाजनक था—प्रत्येक गांव अपनी सीमाओं के भीतर आत्म-निर्भर होता था, उसकी अपनी पंचायत, अपने ही निर्वाचित कार्यकुशल व्यक्ति होते थे, गांव अपनी आवश्यकताएं स्वयं पूरी करता था, शिक्षा, पुलिस, अदालत इत्यादि भी गांव-गांव में अपने थे अर्थात् प्रत्येक गांव का अपना पृथक् व्यक्तित्व था, प्रत्येक स्वयं एक इकाई था और स्वभावतः ये पृथक् व्यक्तित्व आपस में एक-दूसरे का सहयोग भी प्राप्त करते थे।

अगर हम कुछ गहराई में जाकर देखें तो पायेंगे कि वस्तुतः भारतीय संयुक्त परिवार का दृष्टांत भी—जो संपूर्ण भारत में प्रचलित था और अब आधुनिक सभ्यता के प्रवेश करने से छिन्न-भिन्न हो गया—बहुत छोटे पैमाने पर इसी समाज-व्यवस्था का लघुरूप है। जिस प्रकार प्रत्येक गांव का मुखिया या प्रतिनिधि संपूर्ण ग्राम का व्यवस्थापक माना जाता था उसी भांति परिवार के प्रधान व्यक्ति के अधीन संपूर्ण परिवार होता था—इसमें व्यक्ति अपना व्यक्तित्व बनाये रखते हुए भी समूह का एक अनिवार्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंग बन गया था—व्यक्ति और समाज दोनों एक-दूसरे के पूरक थे, बाधक नहीं। यही है वस्तुतः भारतीय मन की वह समन्वयात्मक प्रवृत्ति जो उसके चरित्र की विशेषता है और यही कारण है कि भारतीय समाज के मूल में, प्रत्येक क्षेत्र में यही विशेषता निहित है यद्यपि काल के बहाव के उतार-चढ़ाव में उसमें से कितना कुछ धुल-पुंछ गया फिर भी उसकी आधार-भूमि वही है।

दूसरे छोर पर—जो भारतीय मन का आध्यात्मिक छोर है—हम धार्मिक संघ को देखते हैं और फिर यह भी सामाजिक रूप ग्रहण कर लेता है। यद्यपि प्राचीन वैदिक समाज में किसी प्रकार का कोई धार्मिक संघ या सम्प्रदाय नहीं था क्योंकि उस प्रणाली में तो संपूर्ण जन-समुदाय एक ही सामाजिक-धार्मिक संगठन था, जिसमें सामान्य मनुष्य और पुरोहित में कोई भेद न था, यानी धार्मिक और लौकिक दो पृथक्ताएं न थीं। यह तो बाद के युग में हुआ जब संन्यासी-प्रवृत्ति बढ़ती गयी और उसने काल-क्रम में धार्मिक जीवन तथा सांसारिक जीवन के भेद को जन्म दिया और पृथक् धार्मिक-समाज की रचना में सहायता की। बौद्ध तथा जैन सम्प्रदाय ने इस प्रवृत्ति को बल प्रदान किया। बौद्धों ने मठों की स्थापना कर धार्मिक संघ का सूत्रपात किया लेकिन इन संघों की स्थापना के मूल में भारतीय शासन-व्यवस्था का आधार था। जिस भांति प्रशासन के क्षेत्र में प्रत्येक गांव अपनी पृथक् इकाई रखते हुए भी समग्र का एक हिस्सा था, उसी भांति प्रत्येक बौद्ध मठ भी एक पृथक् धार्मिक-संस्थान होते हुए भी मूल धर्म के सभी नियमों का पूरी तरह से पालन करता था, भारतीय समाज में इसी भांति धार्मिक संघों की स्थापना ने अपनी जड़ें जमानी शुरू कीं और कई प्रमुख मत-मतांतरों का विकास हुआ लेकिन यहां सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इन धार्मिक संघों ने कभी राजनैतिक क्षेत्रों की शासन-व्यवस्था को कुचला नहीं, अर्थात् भारत के इतिहास में कभी यह चीज देखने में नहीं आयी कि अन्य पश्चिमी देशों की भांति, जहां चर्च तथा राज्यों के संघर्ष के उदाहरण प्रचुर मात्रा में मिलते हैं, भारत में कभी इस तरह के धार्मिक-राजनैतिक संघर्ष ने तूल पकड़ा हो।

जबतक भारतीय शासन-प्रणाली की प्राचीन पद्धति स्थिर रही तबतक शासन की सुचारु व्यवस्था भी रही, लेकिन धीरे-धीरे इस प्रणाली में अन्य तत्त्व घुस आये, विदेशियों के आक्रमण ने इसे बहुत क्षीण बना दिया और इतना छिन्न-भिन्न कर दिया कि उस राजनैतिक-सामाजिक-धार्मिक समन्वयात्मक जीवन को पुनरुज्जीवित करने के लिये बहुत अधिक श्रम और ऊर्जा की आवश्यकता होगी।

—वन्दना

सांध्य वार्ताएं

सत्ता के विभिन्न भाग

१३-८-१९२६

शिष्य—प्राण क्या है?

श्रीअरविंद—प्राचीन परिभाषा के अनुसार प्राण चेतना का आधारभूत पदार्थ है। यहां सत्ता की सभी गतिविधियों के पीछे वही होता है। वह चित्त से भिन्न होता है जो उच्चतर चेतना है, उदाहरण के लिये प्राण आकाश और चित्त आकाश है।

और फिर भौतिक सत्ता है, उसमें भौतिक मन होता है जो अधिकतर मनुष्यों में होता है। वह अपने इर्द-गिर्द की भौतिक चीजों को देखता और स्वीकार करता है लेकिन उनके परे नहीं जाता। वह उन्हें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी तरह स्वीकार करता है जैसी वे हैं। हम यह तो नहीं कह सकते कि वह उनके बारे में सोचता है पर वही इन चीजों को किसी तरह से व्यवस्थित करता है। जब उच्चतर क्षमताओं के साथ न हो तो वह तर्क नहीं करता। तुम कह सकते हो कि वह मानसिक सत्ता का दूरतम बिंदु है—जैसे कलम की नोक होती है—जो मानसिक सत्ता के काम के लिये जरूरी है। जब मैं कलम उठाकर बिना कुछ सोचे-समझे कोई शब्द या नाम कागज पर लिखना शुरू करता हूं तो भौतिक मन ही यह करवा रहा होता है।

फिर है प्राणिक भौतिक या भौतिक प्राण। यह भौतिक सत्ता में विचरण करता हुआ प्राण होता है। हमारे लिये यह बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यही विभिन्न अंगों से काम करवाता है और भौतिक सत्ता की क्रियाओं को नियंत्रित करता है। यही शरीर को स्वास्थ्य और बल देता है। इसी कारण उपनिषद् शरीर में विचरण करते हुए प्राण की बात करते हैं।

ये सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि वे मानों उच्चतर क्षमताओं की स्नायुओं के छोर हैं। अगर वे उच्चतर क्षमताओं और आंतरिक सत्ता को ठीक तरह प्रत्युत्तर न दें तो तुम कुछ भी भली-भांति नहीं कर सकते।

उदाहरण के लिये अगर तुम संगीतज्ञ हो तो चाहे तुम्हारे अंदर अच्छे-से-अच्छा संगीत क्यों न भरा हो फिर भी तुम कुछ नहीं कर सकते अगर तुम्हारी उंगलियां ठीक तरह काम न करें। वे मानों आंतरिक सत्ता के दूर के छोर हैं जिनके द्वारा आंतरिक सत्ता अपने-आपको भौतिक स्तर पर प्रकट करती है। यह ठीक एक कलम की तरह है जिसके द्वारा विचार अभिव्यक्ति पाता है।

यही कारण है कि मस्तिष्क शरीर का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अंग माना जाता है। इसलिये नहीं कि वह विचार की रचना करता है बल्कि केवल इसलिये कि वह ऐसी संयोजक कड़ियां बनाता है जिनके द्वारा विचार यहांपर अभिव्यक्ति पाता है। यह वह उपकरण है जो उच्चतर क्रिया को ग्रहण करता है।

शिष्य—चित्रकला में भी वही कठिनाई है जो संगीत में है।

श्रीअरविंद—हां, कविता में भी। ऐसे लोग भी हैं जो अपने मन में तो अच्छी कविता पाते हैं पर जिस क्षण वे कलम उठाते हैं, सब कुछ गायब हो जाता है।

शिष्य—जी हां, 'क' के साथ यही मुश्किल है। उसे बहुत कुछ लिखना है पर जैसे ही वह कलम उठाता है तो बस कलम और स्याही बच रहते हैं। (हंसी)

श्रीअरविंद—और फिर आता है मुख्य भौतिक, जड़ भाग। यह है शरीर चेतना, तुम चाहो तो 'मांस चेतना' कह सकते हो। यह चेतना शरीर के कोषाणुओंतक में होती है।

भौतिक में काम करते हुए अतिमानस के बारे में कुछ कहना कठिन है। तुम कह सकते हो कि यह भौतिक कोषाणुओं में एक ऐसी चीज है जो उनसे ठीक-ठीक वही चीज करवाती है जो शरीर के लिये आवश्यक है। उदाहरण के लिये, चूंकि वह है इसलिये शरीर जानता है कि उसे क्या खाना चाहिये। अगर उसे स्वतंत्र छोड़ दिया जाये तो वह तुम्हें बतला सकता है कि उसे क्या चाहिये और क्या नहीं। मान लो कि तुम इस चीज को लो और बिना किसी मानसिक क्रिया के जान लो कि उसका भार कितना है, यह सीधी भौतिक चीज है।

लेकिन अधिकतर सभ्य लोग इस क्षमता को खो चुके हैं। लोगों ने अपने अंदर उठती हुई प्राणिक और मानसिक क्षमताओं की ओर बहुत ज्यादा ध्यान दिया। सामान्यतः खाने के मामले में प्राण अपनी कामनाओं को लेकर बहुत ज्यादा बाधा डालता है। वह कहता है, 'मुझे यह चाहिये,' 'मैं वह पसंद करता हूं,' 'मैं यह पसंद करता हूं' और मन भी अपने विचार लेकर आ जाता है, 'मेरे लिये यह ज्यादा अच्छा है,' 'इसके अंदर यह चीज है इसलिये यह खाना ज्यादा अच्छा है।'

लेकिन अगर भौतिक चेतना को स्वतंत्र छोड़ दिया जाये तो वह जानती है कि उसे क्या चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर में कोई कामनाएं नहीं होतीं, उसमें आवश्यकताएं होती हैं और वह जानता है कि उसके लिये क्या आवश्यक है।

शिष्य—क्या मनुष्य इस खोई हुई क्षमता को वापिस पा सकते हैं?

श्रीअरविंद—इसे पूरी तरह वापिस पा सकना कठिन है लेकिन हम उसे बड़ी हदतक पा सकते हैं। इस तरह हम आदिम मानव की बहुत-सी क्षमताएं खो चुके हैं।

शिष्य—चिकित्सा विज्ञान में ऐसी चीजें हैं जो इस दृष्टि का समर्थन करती हैं। अभी आपने बतलाया कि कोषाणुओं में चेतना है। यह देखा गया है कि जब आमाशय में पदार्थ अमुक स्थिति में हो, कोषाणु खाये हुए भोजन को आत्मसात् करते हैं। तब पोषक तत्त्वों को शरीर बड़ी हदतक अपना सकता है। जब विष लिया जाये तो चाहे उसे आत्मसात् करने की अवस्थाएं मौजूद हों तो भी शरीर के कोषाणु उसे अस्वीकार कर देते हैं, वे विष को नहीं अपनाते, इसे चयनात्मक आत्मसात्करण कहते हैं। मानों शरीर जानता है कि यह विष है और उसे अस्वीकार करता है।

श्रीअरविंद—हां।

शिष्य—जैसे जानवर जानते हैं कि उन्हें क्या नहीं लेना चाहिये।

श्रीअरविंद—हां, यही भौतिक चेतना है। कभी-कभी वे गंध से जान लेते हैं। हम देखते हैं कि मनुष्य के अंदर मन प्राण की कीमत चुकाकर आगे बढ़ा है उसी प्रकार उसे शरीर की कई क्षमताओं को भी छोड़ना पड़ा है।

हां, यह तर्क किया जा सकता है कि अगर मनुष्य अपनी मानसिक सत्ता पर इतना जोर न डालता तो वह इन चीजों के बारे में सत्य जानने की कोशिश न करता। तब मन आलसी बना रहता। लेकिन जरूरी नहीं है कि मन आलसी रहता। मन वह चेतना है जो अपने ही ऊपर उलटती है और ऊपर से प्राण और भौतिक पर नीचे नजर डालती है। इन क्षमताओं को खोने की जगह मन प्राण और भौतिक के जुटाये हुए साक्ष्य को लेकर आगे जा सकता था, उन्हें समझने की कोशिश कर सकता था।

शिष्य—सौंदर्य बोधात्मक रचनाएं किस स्तर की होती हैं?

श्रीअरविंद—यह अलग-अलग लोगों पर निर्भर है। सामान्यतः यह प्राणमय लोक की चीज है। लेकिन इसमें भेद भी होते हैं, उदाहरण के लिये, शैली का सौंदर्य, भाषा का सौंदर्य, लय-छंद आदि का सौंदर्य। ये सब प्राणिक स्तर की चीजें हैं।

परंतु सौंदर्यात्मक रचनाएं हर स्तर पर हो सकती हैं। मूल रूप से ये सब आनंदमय लोक से आती हैं।

शिष्य—आज 'क' का जो पत्र आया था वह किस स्तर का है? प्राणिक सौंदर्य का?

श्रीअरविंद—यह प्राणिक कल्पना है। यह कोई ऐसी चीज है जो तथ्यों की परवाह किये बिना अपनी ही राह लेती है। अगर आदमी शक्तिशाली है तो वह अपनी कल्पना को चरितार्थ कर सकता है।

शिष्य—क्या ऐसे आदमी को ही हम स्वप्न-द्रष्टा कहते हैं?

श्रीअरविंद—स्वप्न, स्वप्न सभी लोकों के हो सकते हैं, किसी लोक विशेष के नहीं।

शिष्य—मेरा मतलब ऐसे लोगों से है जो अपने स्वप्नों को चरितार्थ नहीं कर सकते और चीजों की कल्पना करते रहते हैं।

श्रीअरविंद—हां, ऐसे आदर्शवादी जिनमें ऐसी प्राणमय शक्ति नहीं होती जो उनके आदर्शों को जीवन में उतारकर उन्हें प्रभावशाली बना सके।

शिष्य—स्मृति क्या है? क्या यह कोई मानसिक क्षमता है?

श्रीअरविंद—स्मृति सब जगह होती है। वह सब जिसके बारे में हम सचेतन हैं या नहीं हैं, प्राण के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अंदर अभिलिखित होता है, यही चेतना का मौलिक पदार्थ है। लेकिन तुम्हें याद वही रहता है जो तुमने ध्यान से सुना और मन में बैठा लिया है। परंतु साधारणतः ये संस्कार प्राण में आते और साथ-ही-साथ अवचेतना में या अंतर्लीन चेतना में डूब जाते हैं। तुम उसे जो चाहे कह लो।

एक प्रामाणिक घटना है हिब्रू भाषा के एक प्रसिद्ध फ्रेंच विद्वान् की नौकरानी की। वह काम करते-करते अपने मालिक को हिब्रू में बाइबल का पाठ करते हुए सुनती थी, उसके लिये वह निरर्थक बकवास थी। जब वह असामान्य स्थिति में थी तो मालिक के किये गये पाठ को उसी स्वर और लहजे में, बिना एक भी भूल किये दोहरा गयी। उसे यह भाषा बिल्कुल न आती थी, उसका मन इसमें से कुछ भी न समझ पाता था लेकिन वह अवचेतन सत्ता में अभिलिखित होता गया। हमारे पैरों के तलवों की भी अपनी अलग स्मृति होती है।

हमने इन क्षमताओं का विभाजन और विश्लेषण किया है परंतु सभी विश्लेषणों की तरह यह समझने की सुविधा के लिये है। वस्तुतः ये इतने कटे-छंटे नहीं होते। वे अलग-अलग काम नहीं करते। उनमें आपसमें बहुत क्रिया-प्रतिक्रिया होती है। सत्ता अपनी क्रिया में, जैसा हम समझते हैं उससे कहीं अधिक जटिल है।

उदाहरण के लिये हमने सत्ता को मन, प्राण और शरीर तीन भागों में बांटा है लेकिन जब हम मन की बात करते हैं तो मानों अपने ही लोक में कार्य करते हुए मन को समझते हैं। लेकिन सभी भाग एक-दूसरे से जुड़े हैं और मन ऊपर से लेकर एकदम नीचेतक चेतना के सभी स्तरों पर काम करता है। सभी के बारे में यही बात है। केवल समझने की सुविधा के लिये यह वर्गीकरण है।

शिष्य—क्या प्रकृति की ये गतियां वैश्व गतिविधियों के साथ मेल नहीं रखतीं ?

श्रीअरविंद—हां, अन्यथा वे मनुष्य में न पायी जातीं।

शिष्य—दर्द क्या है ?

श्रीअरविंद—तुम्हारा मतलब दुःख से है, यह स्वभावतः प्राणिक होता है।

—पुराणीकृत श्रीअरविन्द की 'ईवनिंग टॉक्स' से

'कुछ माताजी के बारे में'

योग

हम ऊपर 'वर्ड्स ऑफ द मदर' की चर्चा कर आये हैं, इसका हिन्दी अनुवाद श्रीमातृवाणी का तीसरा खण्ड है। श्रीअरविन्द की पुस्तक ''द मदर'' की तरह यह भी श्रीअरविन्द के पूर्ण योग के साथ परिचय प्राप्त करने के लिये बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है। यहां इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि श्रीअरविन्द ने बहुत-सी पुस्तकें लिखी हैं परंतु माताजी के पास पुस्तकें लिखने के लिये समय ही न था। उन्हें सारे समय साधकों की व्यक्तिगत, सामुदायिक तथा विभागीय समस्याओं को हल करने में लगे रहना पड़ता था। उनकी पुस्तकें भी सोलह खण्डों में छप चुकी हैं और अभी कुछ बाकी भी हैं लेकिन इनमें ज्यादातर में साधकों या विद्यालय के बालकों के प्रश्न और माताजी के उत्तर हैं, माताजी को लिखी गयी चिट्ठियों के उत्तर, काम के बारे में आदेश-निर्देश—उदाहरण के लिये बैलों की देख-भाल, कशीदाकारी, चिकित्सा, शिक्षण, बच्चों की समस्याएं, श्रीअरविन्द की कुछ सूक्तियों की व्याख्या आदि हैं।

चलिये, 'वर्ड्स ऑफ द मदर' का थोड़ा और परिचय प्राप्त कर लें, इसमें पहला ही अध्याय है :

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या आप योग के विषय में कुछ कहने की कृपा करेंगी ?

तुम योग-साधना किस लिये करना चाहते हो ? शक्ति प्राप्त करने के लिये ? शांति और स्थिरता की प्राप्ति के लिये ? मानवजाति की सेवा के लिये ?

इनमें से कोई भी उद्देश्य यह बताने के लिये काफी नहीं है कि तुम इस योग-मार्ग के लिये हो।

तुम्हें जिस प्रश्न का उत्तर देना है वह यह है : क्या तुम भगवान् के लिये योग-साधना करना चाहते हो ? क्या भगवान् ही तुम्हारे जीवन के परम सत्य हैं, यहांतक कि तुम उनके बिना रह ही नहीं सकते ? क्या तुम यह अनुभव करते हो कि तुम्हारे जीवन का एकमात्र उद्देश्य भगवान् ही हैं और उनके बिना तुम्हारे जीवन का कोई अर्थ नहीं है ? यदि ऐसा हो तभी कहा जा सकता है कि तुम्हारे अंदर इस योग-मार्ग के लिये पुकार है।

सबसे पहली आवश्यक चीज है भगवान् के लिये अभीप्सा।

और दूसरी बात है इस अभीप्सा को सतत बनाये रखना, उसे सदा जीवंत, ज्वलंत और जाग्रत् रखना। और इसके लिये जिस बात की आवश्यकता है वह है एकाग्रता—भगवान् पर एकाग्रता जो उनके संकल्प और अभिप्राय के प्रति पूर्ण और निरपेक्ष आत्म-समर्पण के भाव से की गयी हो।

हृदय-केन्द्र में अपने-आपको एकाग्र करो। हृदय में प्रवेश करो, उसके अंदर जाओ, उसकी गहराई में उतरो और दूरतक, जितनी दूरतक तुम जा सको जाओ। अपनी चेतना के बाहर बिखरे हुए तारों को एकत्र कर लो, उन्हें समेट कर अंदर डुबकी लगाओ और तह में जाकर बैठ जाओ।

वहां हृदय की गभीर शांति में एक अग्नि जल रही है। यही है तुम्हारे अंतर में रहनेवाले भगवान् का दिव्य अंश—तुम्हारी सत्य सत्ता (हृत्पुरुष)। इसकी आवाज सुनो और इसके आदेश का पालन करो।

एकाग्रता के लिये दूसरे केन्द्र भी हैं, उदाहरणस्वरूप, एक केन्द्र मस्तिष्क के ऊपर है (सहस्रार), दूसरा भ्रू-मध्य में है (आज्ञा)। इनमें से हर एक का अपना प्रभाव है और हर एक किसी परिणामपर पहुंचाता है। परंतु केन्द्रीय पुरुष का स्थान हृदय है और हृदय से ही सब केन्द्रीय प्रवृत्तियां निकलती हैं—यहीं से रूपांतर के लिये समस्त गतिशीलता और वेग और आत्मदर्शन करने की शक्ति निकलती है।

जो अपने-आपको योग के लिये तैयार करना चाहता हो उसे क्या करना चाहिये ?

सबसे पहले उसे सचेतन होना चाहिये। हम अपनी सत्ता के एक नगण्य-से भाग में सचेतन हैं, इसके अधिकांश भाग में हम अचेतन हैं। यह अचेतनता ही हमें अपनी प्रकृति के अपरिमार्जित भाग के साथ नीचे की ओर बांधे रहती है और उसके परिवर्तन या रूपांतर को रोकती है। अचेतना द्वारा ही अदिव्य शक्तियां हमारे अंदर घुस आती हैं और हमें अपना गुलाम बना लेती हैं। तुम्हें अपने बारे में सचेतन होना चाहिये, अपनी प्रकृति और प्रवृत्तियों के प्रति तुम्हें जाग्रत् होना चाहिये, तुम्हें यह जानना चाहिये कि तुम किसी चीज को क्यों और कैसे करते हो, कैसे सोचते या अनुभव करते हो। तुम्हें अपने प्रेरक भावों, आवेशों और अपनी गुप्त या प्रकट शक्तियों को, जिनकी प्रेरणा से तुम काम करते हो, समझना चाहिये। या यूं कहें कि तुम्हें अपनी सत्ता की मशीन के सभी कल-पुरजों को अलग-अलग करके जान लेना चाहिये। एक बार तुम सचेतन हो जाओ तो तुम खरे और खोटे की परख और छान-बीन कर सकोगे, तुम देख सकोगे कि कौन-सी शक्तियां तुम्हें नीचे की ओर खींचती हैं और कौन-सी ऊपर उठने में सहायता देती हैं। और जब तुम उचित को अनुचित से, सत्य को असत्य से, दिव्य को अदिव्य से अलग करके जान सको तो तुम्हें सख्ती से अपने इस ज्ञान के अनुसार चलना चाहिये, अर्थात्,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृढ़तापूर्वक एक को त्याग कर दूसरे को स्वीकार करना चाहिये। पग-पग पर ये द्वंद्व तुम्हारे सामने उपस्थित होंगे और पग-पग पर तुम्हें चुनाव करना होगा। तुम्हें धैर्य रखना होगा, लगन लगाये रहना होगा और चौकन्ना रहना होगा—योगियों की भाषा में "निद्रारहित", जो कुछ भी दिव्य हो उसे स्वीकार करना और जो कुछ अदिव्य हो उसे किसी भी प्रकार का मौका देने से इंकार करना होगा।

क्या यह योग मनुष्यजाति के लिये है ?

नहीं, यह भगवान् के लिये है। हमारी साधना का ध्येय मनुष्यजाति का कल्याण नहीं है, हमारी साधना का हेतु है भगवान् की अभिव्यक्ति। हम भगवान्के संकल्प को कार्य में परिणत करने के लिये यहां हैं, बल्कि यह कहना अधिक सत्य होगा कि हम यहां इसलिये हैं कि भगवान् का संकल्प हमारे ऊपर कार्य कर सके, ताकि हम पुरुषोत्तम को उत्तरोत्तर मूर्तिमान् करने और पृथ्वी पर उनके राज्य की स्थापना करने के लिये उनके यंत्र बन सकें। मानवजाति का जो भाग इस भागवत पुकार का प्रत्युत्तर देगा केवल वही उनके प्रसाद को प्राप्त करेगा।

प्रत्यक्ष रूप से यदि न भी हो तो अप्रत्यक्ष रूप से ही सही, इस योग द्वारा सामूहिक रूप में मानवजाति का लाभ होगा या नहीं, यह बात मानवजाति की अपनी अवस्था पर निर्भर करेगी। इस विषय का निर्णय यदि मानवजाति की वर्तमान अवस्थाओं से किया जाये तो बहुत अधिक आशा नहीं दिखायी देती। आज एक औसत मनुष्य का—मनुष्यजाति के प्रतिनिधि का—क्या भाव है ? क्या वह विशुद्ध रूप से भगवान् का अंश धारण करनेवाली किसी भी वस्तु के संपर्क में आते ही क्रोध से कांप नहीं उठता या विद्रोह नहीं करता ? क्या वह यह नहीं अनुभव करता कि भगवान् का अर्थ ही है उसकी पाली-पोसी हुई संपत्ति का नाश ! क्या वह भगवान् की इच्छा और संकल्प से साफ-साफ इंकार करके उसके विरुद्ध लगातार चिल्ल-पों नहीं करता ? भगवान् के आविर्भाव से कुछ भी लाभ उठाने की आशा करने से पहले मानवजाति को बहुत बदलना होगा।

हम सब लोग यहां एक साथ मिले हैं इसका क्या अर्थ है ?

हम सब पूर्वजन्मों में मिल चुके हैं, नहीं तो इस जन्म में एक साथ न होते।

हम सब एक ही परिवार के हैं और हमने भगवान् की विजय तथा पृथ्वी पर उनकी अभिव्यक्ति के लिये युग-युग में काम किया है।

मानव स्वभाव के बारे में

एकदम आरंभ से ही आत्मसमर्पण का पूर्ण होना संभव नहीं है न ?

साधारण रूप में नहीं। इसमें थोड़ा-बहुत समय लगता है। परंतु कभी-कभी एकाएक परिवर्तन हो जाता है। इन सब चीजों को ब्योरेवार समझाने में बहुत अधिक समय लगेगा। तुम शायद जानते हो कि साधना की सभी परंपराओं में यह कहा जाता था कि मनुष्य का स्वभाव बदलने के लिये ३५ वर्षों की आवश्यकता होती है ! अतएव एक क्षण में ही इसके हो जाने की आशा तुम्हें नहीं करनी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि मनुष्य को प्रत्येक वस्तु के प्रति उदासीन होना है तो बच्चों को पारितोषिक क्यों दिये जाते हैं ?

तुम पाठशाला के एक बच्चे से योगी होने की आशा नहीं करते, करते हो ? मैंने अभी कहा है कि उसे प्राप्त करने तथा अपना स्वभाव बदलने में ३५ वर्षों की आवश्यकता होती है।

तुम जानते ही हो कि, मानव का व्यक्तिगत अधिकार—परिवार के पिता के, अध्यापक के, राज्य के अध्यक्ष के अधिकार की तरह—एक प्रतीकात्मक वस्तु है। उन लोगों को कोई सच्चा अधिकार प्राप्त नहीं है बल्कि अधिकार उन लोगों को दिया गया है ताकि वे लोग सामाजिक जीवन में अपने पार्ट को अदा करने की योग्यता प्राप्त कर सकें—ऐसे सामाजिक जीवन में जैसा कि वह आजकल है, अर्थात् एक ऐसा सामाजिक जीवन जो मिथ्यात्व पर आधारित है, सत्य पर बिलकुल ही नहीं, क्योंकि सत्य का मतलब है एकत्व, और समाज स्थापित है विभाजन पर। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो अपने पार्ट को, अपने कार्य को, अपने प्रतीक को कम या अधिक अच्छे रूप में, पूरा करते हैं—कोई व्यक्ति निर्दोष नहीं होता, इस संसार में सब कुछ मिला-जुला है। परंतु जो लोग अपने पार्ट को गंभीरतापूर्वक लेते हैं, यथासंभव ईमानदारी के साथ उसे पूरा करने का प्रयास करते हैं, ऐसी अंतःप्रेरणाएं प्राप्त कर सकते हैं जो उन्हें साधारण व्यक्ति की अपेक्षा थोड़े अधिक सच्चे रूप में अपना पार्ट अदा करने के योग्य बना देती हैं। यदि अंक देनेवाला अध्यापक अपने मन में यह बात याद रखे कि वह दिव्य सत्य का प्रतिनिधि है, यदि वह दिव्य 'संकल्प' के साथ समस्वर रहने के लिये निरंतर पर्याप्त कष्ट उठाये तो वह बहुत सहायक हो सकता है; क्योंकि साधारण अध्यापक अपनी व्यक्तिगत अभिरुचियों के अनुसार—वह क्या पसंद नहीं करता, वह क्या पसंद करता है आदि-आदि के अनुसार कार्य करता है और यह सब सामान्य मिथ्यात्व से संबंधित होता है, परंतु नंबर देने के समय यदि वह अपनी तुच्छ संकीर्ण चेतना की अपेक्षा अधिक गभीर सत्य के साथ अपने-आपको समस्वर बनाने का सच्चाई के साथ प्रयत्न करे तो वह इस सत्य के एक मध्यस्थ के रूप में कार्य कर सकता है और, ऐसा करने के कारण, अपने विद्यार्थियों को उनके अंदर विद्यमान इस सत्य के विषय में सचेतन होने में सहायता कर सकता है।

ठीक यही वह बात है जो मैं तुम लोगों से कहना चाहती थी। शिक्षण एक प्रकार की पुरोहिताई है, शिक्षा देना एक प्रकार की पुरोहिताई है, और किसी राज्य का अधिकारी होना एक प्रकार की पुरोहिताई है। अतएव अपने पार्ट को अदा करनेवाला व्यक्ति यदि उसे सर्वोत्तम तथा सत्यतम रूप में अदा करने की अभीप्सा करे तो संसार की साधारण अवस्था बहुत सुंदर हो सकती है। दुर्भाग्यवश अधिकांश लोग इस विषय में कभी, तनिक भी विचार नहीं करते, वे अपनी भूमिका को किसी प्रकार निभा देते हैं—उन असंख्य लोगों की तो यहां कोई चर्चा ही नहीं जो केवल धन कमाने के लिये कार्य करते हैं, पर इस विषय में उनका कार्य स्वभावतः ही एकदम सड़ा-सा होता है। आश्रम की स्थापना करने में मेरा एकदम पहला आधार यही था : यहां किया गया कार्य भगवान् की पूजा हो।

अपनी प्रकृति की, अपनी मनोवृत्ति की धारा में अपने-आपको बहने देने के स्थान में मनुष्य को निरंतर अपने मन में इस प्रकार की भावना बनाये रखनी चाहिये कि हम 'परात्पर ज्ञान' के, 'परात्पर सत्य' के, 'परात्पर विधान' के प्रतिनिधि हैं और इस भाव को हमें यथासंभव अत्यंत शुद्ध, अत्यंत सच्चे रूप में अपने जीवन में उतारना चाहिये; तब हम स्वयं बहुत अधिक प्रगति करते हैं और दूसरों से भी करवा सकते हैं। और इसके अतिरिक्त, हमें आदर प्राप्त होगा, श्रेणी के अंदर फिर कभी अनुशासनहीनता नहीं रहेगी, क्योंकि प्रत्येक मानव-प्राणी के अंदर कोई ऐसी चीज है जो सच्ची महानता को पहचानती और उसके सामने माथा टेकती है; यहांतक कि बुरे-से-बुरे अपराधी भी उच्च और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निष्काम कर्म का समादर करने में समर्थ होते हैं। इसलिये जब बच्चे किसी अध्यापक में, पाठशाला के एक शिक्षक में, सत्य के अनुसार कार्य करने की गहरी अभीप्सा को अनुभव करते हैं तो वे उसकी बात इतना अनुगत होकर सुनते हैं जितना अनुगत होकर वे उस समय नहीं सुनेंगे जब अध्यापक एक दिन तो अच्छे भाव में हो और दूसरे दिन न हो, जो कि सबके लिये अनर्थकारी है।

यदि मनुष्य का स्वभाव बदलने के लिये ३५ वर्ष की आवश्यकता होती है तो भला कोई अभी से भगवान् के प्रति पूर्ण समर्पण कैसे कर सकता है ?

यह कार्य तेजी से भी हो सकता है; सब कुछ उस पथ पर निर्भर करता है जिसका अनुसरण साधक करता है।

तुम्हें याद होगा, हमने एक बार तुम लोगों से बिल्ली के बच्चे और बन्दर के बच्चे के मनोभाव की बात कही थी।[1] यदि तुम बिल्ली के एक आज्ञाकारी बच्चे की तरह (बिल्ली के ऐसे बच्चे भी होते हैं जो बहुत असंयत होते हैं, मैंने उन्हें देखा है) होना स्वीकार करो, एक छोटे-से विनीत बच्चे की तरह बन जाना मंजूर करो तो यह कार्य बड़ी तेजी से आगे बढ़ सकता है। ध्यान रखो, यह कहना बड़ा आसान है कि "बिल्ली के बच्चे का मनोभाव ग्रहण करो", पर इसे करना उतना आसान नहीं है। तुम्हें यह विश्वास नहीं करना चाहिये कि बिल्ली के बच्चे का मनोभाव ग्रहण करने का तात्पर्य है समस्त व्यक्तिगत प्रयास का परिहार कर देना। क्योंकि तुम बिल्ली के बच्चे नहीं हो, मनुष्य बिल्ली के बच्चे नहीं हैं! तुम्हारे अंदर ऐसे अनगिनत तत्त्व हैं जो अपने-आपपर ही विश्वास करने के अभ्यासी हैं, जो अपना निजी काम आप करना चाहते हैं, और इन सब तत्त्वों को संयमित करना, सब प्रकार की परिस्थितियों के हाथ में अपने को छोड़ देने से बहुत अधिक कठिन है। यह बहुत ही कठिन है। सबसे पहले, मन-बुद्धि का वह अद्भुत कार्य सर्वदा बना रहता है जो देखना, आलोचना करना, विश्लेषण करना, संदेह करना, समस्या सुलझाने की चेष्टा करना बहुत अधिक पसंद करता है, कहता है, "आखिर यह बात ऐसी है", "क्या इस तरह यह कुछ और अच्छी नहीं हो सकती ?" आदि-आदि। अतः यह चीज चलती रहती है, चलती रहती है और तब कहां होता है वह बिल्ली का बच्चा ? . . . क्योंकि बिल्ली का बच्चा तो सोचता ही नहीं! वह इस सबसे मुक्त है और इसी कारण उसके लिये ऐसा करना बहुत आसान है!

चाहे तुम जिस किसी पथ का क्यों न अनुसरण करो, व्यक्तिगत प्रयास तबतक बराबर आवश्यक होता है जबतक कि तादात्म्य का क्षण नहीं आ जाता। उस समय सभी प्रयास फटे-पुराने लबादे की तरह तुमसे झड़ जाते हैं, तुम दूसरे व्यक्ति बन जाते हो : तुम्हारे लिये जो कुछ पहले असंभव था वह अब केवल संभव ही नहीं हो जाता बल्कि अनिवार्य बन जाता है, तुम अन्यथा कर ही नहीं सकते।

तुम्हें सचेत, नीरव होना चाहिये, तुम्हें आंतरिक प्रेरणा की प्रतीक्षा करनी चाहिये, बाहरी प्रतिक्रियाओं के वश कुछ नहीं करना चाहिये, तुम्हें निरंतर निमित्त रूप से बस उसी ज्योति से परिचालित होना चाहिये जो ऊपर से आती है, तुम्हें बस उसी ज्योति की प्रेरणा के अधीन कार्य करना चाहिये, अन्य किसी चीज के अधीन नहीं। कभी यह नहीं सोचना चाहिये, यह प्रश्न नहीं उठाना चाहिये, यह नहीं पूछना चाहिये, "मुझे यह करना चाहिये या वह", बल्कि—जानना, देखना, सुनना चाहिये। एक ऐसी आंतरिक निश्चयता के साथ कार्य करना चाहिये जो प्रश्न नहीं करती, संदेह नहीं करती, क्योंकि निर्णय तुम्हारे पास

[1] श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि शिष्य दो मनोभावों में से एक को चुन सकता है : बिल्ली के बच्चे का निष्क्रिय विश्वास जो अपने को उठा ले जाने के लिये मां के ऊपर छोड़ देता है (यह समर्पण का पथ है, अत्यंत सुनिश्चित) और बंदर के बच्चे का सक्रिय मनोभाव जो अपनी मां के साथ चिपक जाता है (यह व्यक्तिगत प्रयास का पथ है)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से नहीं आता, वह ऊपर से आता है। हां, यह बहुत शीघ्र भी आ सकता है अथवा तुम्हें इसके लिये शायद दीर्घकालतक प्रतीक्षा भी करनी पड़ सकती है,—यह निर्भर करता है मनुष्य की पहले की तैयारी के ऊपर, अन्य बहुत-सी चीजों पर। तबतक तुम्हें उसकी इच्छा करनी चाहिये, आग्रहपूर्वक बार-बार इच्छा करनी चाहिये और सर्वोपरि बात यह है कि कभी धैर्य अथवा साहस नहीं खोना चाहिये। अगर आवश्यक हो तो एक ही चीज को हजार बार दुहराओ, यह समझते हुए कि शायद हजारवीं बार तुम परिणाम अवश्य उपलब्ध कर लोगे।

तुम एक टुकड़े के ही नहीं बने हुए हो। तुम्हारा वर्तमान शरीर बहुधा एक आकस्मिक रचना होती है। यदि तुम्हारे अंदर सचेतन अंतरात्मा है जो तुम्हारे शरीर की रचना को प्रभावित करती है तो फिर तुम किसी ऐसे व्यक्ति से, ऐसी अंतरात्मा से अनंत रूप में अधिक अच्छे ढंग से तैयार किये हुए व्यक्ति होते हो जो यह बिना जाने कि वह कहां जा रहा है, सीधे सिर के बल शरीर में आ गिरता है : उस ढंग से आये हुए लोगों को अंधकार में इस प्रकार आ गिरी हुई अपनी चेतना को ऊपर उठाने के लिये बहुत कठिन परिश्रम करना होता है। आंतरिक तैयारी की स्थिति पूर्व जीवनों से प्राप्त हो सकती है या वर्तमान जीवन से प्राप्त हो सकती है; अथवा अपने सर्वांगीण विकास में तुम एक मोड़ पर पहुंच चुके हो और ऐसी परिस्थितियों से तुम्हारा ठीक-ठीक संबंध हो गया है जो अंतिम पग उठाने के लिये आवश्यक हैं। पर इसका अर्थ यह नहीं कि तुम इस मोड़ पर पहुंचने से पहले हजार बार पृथ्वी पर जीवन यापन नहीं कर चुके हो।

—श्रीमातृवाणी खण्ड ४ से

भगवान् की ओर आरोहण के रहस्य

इतिहास की घटनाओं का मूल्यांकन करने के लिये कुछ दूरी की जरूरत है इसी तरह अगर तुम भौतिक संभावनाओं से काफी ऊपर उठना जानो तो तुम समस्त पार्थिव जीवन को समग्र रूप में देख सकते हो। उस क्षण से यह अनुभव करना आसान है कि मानवजाति के सभी प्रयास एक ही लक्ष्य की ओर अभिमुख हैं।

यह ठीक है कि व्यक्तिगत रूप से हो या सामूहिक रूप से, मनुष्य वहांतक पहुंचने के लिये बहुत-से अलग-अलग रास्ते अपनाते हैं। उनमें से कुछ इतने टेढ़े-मेढ़े होते हैं कि पहली दृष्टि में लगता है कि वे लक्ष्य की ओर जाने की जगह उससे परे जा रहे हैं; लेकिन सभी जाने-अजाने, तेजी से या धीरे-धीरे जा रहे हैं उसी ओर।

तो यह लक्ष्य है क्या ?

वह मनुष्य के जीवन के उद्देश्य और विश्व में उसके मिशन के साथ एक है।

लक्ष्य : ''उसे चाहे कुछ नाम दे लो, बुद्धिमानों के लिये वह सभी नामों को धारण करनेवाला है।''

चीनियों का ताओ, हिन्दुओं का ब्रह्म, बौद्धों का धर्म, हर्मीज़ का शुभ, प्राचीन यहूदियों के अनुसार वह जिसे कोई नाम नहीं दिया जा सकता, ईसाइयों का खुदा, मुसलमानों का अल्लाह, जड़वादियों का न्याय, सत्य।

—मानव जीवन का हेतु है ''उसके'' बारे में सचेतन होना।

—उसका उद्देश्य है ''उसे'' अभिव्यक्त करना।

—सभी धर्म, सभी संतों की शिक्षा इस लक्ष्यतक पहुंचने के उपायों से भिन्न कुछ नहीं है।

—उन्हें तीन मुख्य श्रेणियों में बांटा जा सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

—पहली—बौद्धिक उपाय : "सत्य" के लिये प्रेम, "निरपेक्ष" की खोज।

विवेक, अध्ययन, मनन, विश्लेषण, विचार के संयम और एकाग्रता के द्वारा तुम व्यक्तित्व के भ्रम से छुटकारा पा जाते हो। वह है एक ही द्रव्य में—जो अपने-आपमें एक आभास से बढ़कर कुछ नहीं है, चक्कर लगाते हुए परमाणु : ईथर या आकाश का घनरूप।

जब हम "मैं" कहते हैं तो हम किसकी बात करते हैं ? शरीर की ? संवेदनों की ? भावनाओं की ? विचारों की ? इनमें से किसी में स्थिरता नहीं है। सातत्य का आभास एक कठोर निर्धार्यता से आता है जो सत्ता के इन क्षेत्रों में से हर एक पर लागू होती है, और इस निर्धार्यता में जितने आंतरिक अभिकर्ता होते हैं उतने ही बाहरी अभिकर्ता भी घुस आते हैं। तब फिर "स्व" कहां है ? यानी, कोई स्थायी, निरंतर, हमेशा एकरस तत्त्व कहां है ? उसे पाने के लिये, इस निरपेक्ष को पाने के लिये हमें गहराई से गहराई की ओर, सापेक्षता से सापेक्षता की ओर बढ़ना चाहिये। क्योंकि जो कुछ रूप धारण किये हुए है वह सापेक्ष है जबतक कि हम "वहां" नहीं पहुंच जाते जो हमारी तर्क-बुद्धि के लिये "अचिंत्य", हमारी वाणी के लिये "अकथ्य" है, पर तादात्म्य के द्वारा ज्ञेय है क्योंकि हम "उसे" अपने अंदर लिये रहते हैं, वह **हमारी** सत्ता का केन्द्र और उसका जीवन है।

दूसरा तरीका—भगवान् का प्रेम। यह उन लोगों का तरीका है जिनमें धार्मिक भाव विकसित है।

सभी चीजों के भागवत "सार तत्त्व" के लिये अभीप्सा, जिसे हमने संपूर्ण प्रदीप्ति के एक क्षण में देखा है।

और तब इस भागवत "सार तत्त्व" के प्रति आत्म-निवेदन, इस "शाश्वत धर्म" के प्रति हर क्षण अपनी हर क्रिया में समग्र आत्म-दान। संपूर्ण समर्पण : अब व्यक्ति केवल एक विनीत यंत्र, "परम प्रभु" के सामने एक आज्ञाकारी सेवक रह जाता है। "प्रेम" इतना पूर्ण हो जाता है कि वह उन सब चीजों से अनासक्ति पैदा कर देता है जो निरपेक्ष ब्रह्म और उनपर पूर्ण एकाग्रता नहीं है।

"और इसके अतिरिक्त इससे भी ऊपर उठना असंभव नहीं है क्योंकि स्वयं प्रेम भी प्रेमी और प्रेमपात्र के बीच अवगुंठन बन जाता है।"

तादात्म्य

तीसरा उपाय—मानव जाति के लिये प्रेम।

मानव जाति के अत्यधिक दुःख-दर्द के तीव्र प्रत्यक्ष ज्ञान के और एक स्पष्ट दृष्टि के परिणामस्वरूप इस दुःख-दर्द को समाप्त कर देने के लिये अपने-आपको पूरी तरह समर्पित कर देने का संकल्प उठता है।

चाहे कितनी भी कम मात्रा में क्यों न हो, औरों की सहायता करने के लिये अपने समस्त विचार, अपनी समस्त ऊर्जाएं, अपने सारे क्रिया-कलाप अर्पित कर देने में आत्म-विस्मृति।

"करुणा से उमड़ते हृदयों के साथ दुःख-पीड़ित संसार में जाओ, प्रशिक्षक बनो, जहां कहीं अविद्या-अंधकार का राज्य है वहां ज्योति जगाओ।"

समर्पण मानव जाति के प्रति चार क्षेत्रों में अभिव्यक्त होता है। तुम औरों को चार तरह से दे सकते हो :

भौतिक उपहार। बौद्धिक उपहार : ज्ञान। आध्यात्मिक उपहार : सामंजस्य, सुंदरता, लय। संपूर्ण उपहार। यह उन्हीं लोगों के द्वारा चरितार्थ किया जा सकता है जिन्होंने तीनों मार्गों का अनुसरण किया है, जिन्होंने अपने अंदर विकास के सभी तरीकों का, शाश्वत के बारे में सचेतन होने का, उदाहरण के उपहारों का समन्वय कर लिया है। एक ऐसा उदाहरण जो आत्म-चेतन नहीं है, तुम उदाहरण बनते हो क्योंकि तुम हो, क्योंकि तुम "शाश्वत दिव्य चेतना" में निवास करते हो।

—श्रीमां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीअरविन्द की शिक्षा तथा साधना-पद्धति

(उनके पत्रों से संकलित)

मानसिक विकास, पठन तथा अध्ययन

साधक के लिये मन का विकास उपयोगी प्रारंभिक तैयारी है। इसका अनुसरण साधना के साथ-साथ इस शर्त पर किया जा सकता है कि उसे बहुत अधिक स्थान न दिया जाये और वह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु—स्वयं साधना—के मार्ग में हस्तक्षेप न करे।

*

जो साधना करना चाहता है उसे साधना को पहला स्थान देना होगा—पढ़ना और मानसिक विकास केवल गौण वस्तुएं हो सकती हैं।

*

साधक का लक्ष्य है साधना, मानसिक विकास नहीं। लेकिन अगर उसके पास खाली समय हो तो जिन लोगों का मानसिकता की ओर झुकाव होता है वे स्वाभाविक रूप से उस समय को पढ़ने या किसी तरह के अध्ययन में लगायेंगे।

*

पढ़ना और अध्ययन करना केवल जानकारी प्राप्त करने और ज्ञात तथ्यों का क्षेत्र विकसित करने के लिये ही उपयोगी होते हैं। लेकिन अगर तुम विवेक करना, सत्य-असत्य में भेद करना, निर्णय करना तथा वस्तुओं के अंदर और पीछे क्या है यह देखना न जानो तो सब कुछ निरर्थक हो जाता है।

*

यह हो सकता है कि किसी व्यक्ति ने बहुत अध्ययन किया हो और फिर भी वह मानसिक रूप से अविकसित हो। चिन्तन-मनन, समझ तथा अपने से उत्कृष्ट बुद्धिजीवियों से मानसिक प्रभावों को ग्रहण करके ही मनुष्य का मन विकसित होता है।

बुद्धि अध्ययन की मात्रा पर निर्भर नहीं करती, यह मन का एक गुण है। अध्ययन तो केवल उसे कार्य करने के लिये सामग्री देता है, उसी तरह जीवन भी देता है। ऐसे भी लोग हैं जिन्हें लिखना-पढ़ना नहीं आता लेकिन वे बहुत-से उच्च शिक्षाप्राप्त व्यक्तियों से कहीं अधिक बुद्धिमान् होते हैं और जीवन तथा अन्य वस्तुओं को ज्यादा अच्छी तरह समझते हैं। दूसरी ओर, एक अच्छी बुद्धि अध्ययन द्वारा अपने-आपको अधिक अच्छा बना सकती है क्योंकि उसे कार्य करने के लिये अधिक सामग्री मिलती है और वह अभ्यास तथा अधिक विशाल क्षेत्र प्राप्त होने के कारण बढ़ती है। लेकिन किताबी ज्ञान अपने-आपमें सच्ची चीज नहीं है, उसका बुद्धि की सहायता के रूप में उपयोग किया जाना चाहिये लेकिन प्रायः यह मूढ़ता तथा अज्ञान की ही सहायता करता है—अज्ञान इसलिये कि यदि व्यक्ति तथ्यों के सच्चे अर्थ को न देख पाये तो उनका निरा ज्ञान निरर्थक होता है।

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानसिक ज्ञान का बहुत लाभ नहीं होता सिवाय इसके कि वह कभी-कभी भूमिका के रूप में उस सत्य ज्ञान की ओर संकेत करता है जो वस्तुओं की प्रत्यक्ष चेतना से आता है।

*

सच्चा ज्ञान अपने-आप अंदर से भागवत स्पर्श द्वारा आता है। अध्ययन मन को तैयार करने के लिये केवल अस्थायी सहायक हो सकता है। लेकिन सच्चा ज्ञान अध्ययन से नहीं आता, यह आंतरिक ज्ञान के लिये थोड़ी-सी तैयारी के रूप में उपयोगी हो सकता है—लेकिन मन को बहुत सतही रूप में सक्रिय न रहना चाहिये या केवल उत्सुकता के कारण चीजों को जानने की इच्छा न रखनी चाहिये।

*

दो प्रकार की समझ होती है—बुद्धि से समझना और चेतना के अंदर समझना। अगर इनमें से पहली यथार्थ हो तो उसे पाना अच्छा है, लेकिन वह अनिवार्य नहीं है। चेतना के द्वारा समझ तब आती है जब श्रद्धा और उद्घाटन हो, यद्यपि यह धीरे-धीरे, अनुभूति के सोपानों द्वारा प्राप्त हो सकती है। लेकिन मैंने ऐसे अनपढ़ और बुद्धिरहित लोगों को देखा है जो अपने अंदर चल रही योग की प्रक्रिया को इस तरीके से पूर्ण रूप से समझते थे, जब कि बौद्धिक मनुष्य बड़ी-बड़ी भूलें करते हैं, उदाहरण के लिये वे निष्क्रिय मानसिक अचंचलता को आध्यात्मिक शांति मान बैठते हैं और आगे बढ़ने के लिये इससे बाहर निकलने से इंकार कर देते हैं।

*

मानसिक विकास साधना में सहायता कर भी सकता है और नहीं भी—अगर मन विशेष तर्कशील धाराओं में बहुत अधिक बौद्धिक रूप से विकसित हो चुका हो तो वह बाधक बन सकता है।

*

प्रारंभिक मानसिक स्तर पर अच्छी-अच्छी किताबें पढ़ना सहायक हो सकता है—यह चीज मन को तैयार करती है, उसे उचित वातावरण में रखती है यहांतक कि अगर कोई बहुत संवेदनशील हो तो मानसिक स्तर पर यह उपलब्धि की झलकें भी दिखा सकती है। बाद में इसकी उपयोगिता कम हो जाती है—तुम्हें प्रत्येक ज्ञान और अनुभूति को अपने अंदर पाना होता है।

*

ज्ञान हमेशा अज्ञान से अधिक अच्छा होता है। यह अगर उस समय नहीं तो बाद में भी वस्तुओं को संभव बनाता है, जब कि अज्ञान सक्रिय रूप से बाधा देता और पथ-भ्रष्ट करता है।

*

इस जगत् की चीजों के बारे में अज्ञानी होना आध्यात्मिक ज्ञान के लिये सहायक नहीं है।

*

जगत् में जो कुछ घट रहा है उसके बारे में जानना यौगिक जीवन के सिद्धांत के विरुद्ध नहीं है—अयौगिक है इन चीजों से आसक्त हो जाना और इनके बिना रह न पाना या इन्हें सबसे अधिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महत्त्व की वस्तु मानना। सबसे अधिक महत्त्व की वस्तु होनी चाहिये साधना—नयी चेतना और नये आंतरिक जीवन में विकास। बाकी सब कुछ अनासक्त भाव से, उनमें पूरी तरह से डूबे बिना करना चाहिये। ऐसा भाव होना चाहिये कि अगर माताजी तुम्हें अखबार पढ़ने की एकदम से मनाही कर दें तो इससे तुम्हें किसी तरह की क्षति का अनुभव न हो और तुम दोनों अवस्थाओं में भेदतक का अनुभव न करो।

*

सामान्य रूप से हम कह सकते हैं कि अखबार पढ़ना या उपन्यास पढ़ना साधना के लिये सहायक नहीं होता और वह कम-से-कम ऐसे प्राण के लिये तो सहायक ही है जो अभी साधना में निमग्न हो जाने के लिये तैयार नहीं है—जबतक कि तुम उसे उचित तरीके से उस उच्चतर चेतना के साथ पढ़ने में समर्थ न हो जाओ जो पढ़ने से 'विक्षुब्ध' नहीं होती या एकाग्र योग-चेतना से हट नहीं जाती बल्कि जो कुछ पढ़ा गया है उसका आंतरिक चेतना तथा आंतरिक जीवन के दृष्टिकोण से उचित उपयोग करने में समर्थ होती है।

*

उन्हीं चीजों को पढ़ना चाहिये जो योग में सहायता दें या काम के लिये उपयोगी हों, या फिर जो दिव्य उद्देश्य के लिये क्षमताओं को विकसित करें। बेकार चीजों को नहीं पढ़ना चाहिये, न ही केवल मनोरंजन या पल्लवग्राही बौद्धिक उत्सुकता के लिये पढ़ना चाहिये जो केवल मानसिक चंचुपात के जैसा होता है। जब तुम उच्चतम चेतना में प्रतिष्ठित हो चुके होते हो तो तुम सब कुछ या कुछ भी नहीं पढ़ सकते हो; उससे कोई फर्क न पड़ेगा।

—श्रीअरविन्द

विरोधी शक्तियोंसे मुकाबला करना

विरोधी शक्तियों का, जो अगोचर होते हुए भी जीवंत और स्पष्टतया अनुभवनीय हैं, मुकाबला कैसे करना चाहिये ?

बहुत कुछ तुम्हारी चेतना के विकास की अवस्था पर निर्भर है। आरंभ में यदि तुम्हारे पास विशेष गुप्त ज्ञान और शक्ति न हों तो तुम्हारे लिये सबसे अच्छी बात यही है कि तुम जहांतक संभव हो शांत और स्थिर रहो। यदि आक्रमण विरोधी सुझावों का रूप ले तो उसे शांति के साथ ठीक उसी तरह दूर फेंकने की कोशिश करो जैसे किसी भौतिक पदार्थ को फेंका जाता है। तुम जितने अधिक शांत रहोगे उतने ही अधिक शक्तिशाली बनोगे। सभी आध्यात्मिक शक्तियों का सुदृढ़ आधार है समचित्तता। किसी चीज को अपना संतुलन न बिगाड़ने दो, तब तुम हर प्रकार के आक्रमण का प्रतिरोध कर सकोगे। इसके अतिरिक्त, यदि तुम्हारे पास यथेष्ट विवेक-शक्ति हो और तुम विरोधी सुझावों को पास आते ही देख और पकड़ सको तो उन्हें निकाल बाहर करना और भी सहज हो जाता है, किंतु कभी-कभी ये अलक्षित रूप से घुस आते हैं और तब इनसे युद्ध करना अधिक कठिन होता है। जब ऐसा हो तो तुम्हें स्थिर होकर बैठना चाहिये और शांति तथा गभीर आंतरिक स्थिरता का आवाहन करना चाहिये। अपने-आपको दृढ़ बनाये रखो, श्रद्धा तथा विश्वास के साथ भगवान् को पुकारो। यदि तुम्हारी अभीप्सा शुद्ध और स्थिर है तो तुम अवश्य सहायता प्राप्त करोगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विरोधी शक्तियों के आक्रमण अपरिहार्य हैं। तुम्हें इनको अपने मार्ग में परीक्षा के रूप में लेना और इन अग्नि-परीक्षाओं में से साहस के साथ गुजरना चाहिये। यह संघर्ष कठिन हो सकता है किंतु जब तुम इसे पार करके बाहर निकलोगे तो देखोगे कि तुमने कुछ प्राप्त किया है, तुम एक कदम आगे बढ़े हो। विरोधी शक्तियों के होने की भी एक आवश्यकता है। ये तुम्हारे निश्चय को अधिक सुदृढ़ और तुम्हारी अभीप्सा को अधिक स्पष्ट बनाती हैं।

फिर भी, यह सत्य है कि इनका अस्तित्व इसीलिये है कि तुमने इनके अस्तित्व के लिये कारण दे रखा है। जबतक तुममें कोई भी चीज ऐसी हो जो इन्हें पुकार का उत्तर देती हो तबतक इनका हस्तक्षेप करना सर्वथा उचित है। यदि तुम्हारा कोई भी भाग इन्हें प्रत्युत्तर न दे, यदि तुम्हारी प्रकृति के किसी भी अंश पर इनका वश न हो तो ये शक्तियां लौट जायेंगी और तुम्हें छोड़ देंगी। परंतु कुछ भी क्यों न हो, ये तुम्हारी आध्यात्मिक प्रगति को रोक या अटका नहीं सकतीं।

विरोधी शक्तियों से युद्ध में तुम्हारी पराजय एक ही कारण से हो सकती है और वह है भगवान् की सहायता में सच्चे विश्वास का न होना। अभीप्सा की सच्चाई आवश्यक साहाय्य को सदा ले ही आती है। शांत आवाहन, यह विश्वास कि सिद्धि की ओर आरोहण में तुम कभी अकेले नहीं रहते और यह श्रद्धा कि जब कभी किसी सहायता की आवश्यकता हो तो वह सदा उपस्थित होती है—तुम्हें सहज और निरापद रूप से पार लगा देंगे।

ये विरोधी शक्तियां साधारणतया बाहर से आती हैं या अंदर से ?

यदि तुम समझते या अनुभव करते हो कि ये अंदर से आती हैं तो संभवतः तुमने अपने-आपको उनके लिये खोल दिया है और वे तुम्हारे अंदर अलक्षित रूप से आकर जम गयी हैं। वस्तुओं का सच्चा स्वभाव सामंजस्य का होता है, किंतु कुछ जगत् ऐसे हैं जहां इस सामंजस्य में विकार पैदा होता है जिसके फलस्वरूप विकृति और विरोध की सृष्टि हो जाती है। विकार पैदा करनेवाले इन जगतों के साथ यदि तुम्हारा बहुत अधिक मेल हो तो हो सकता है कि वहां की सत्ताओं के साथ तुम मित्रता स्थापित कर लो और उनकी पुकार पर पूरा सहयोग दो। यह होता तो है, किंतु यह कोई अच्छी अवस्था नहीं है। चेतना तुरंत अंधी हो जाती है और तुम सत्य-असत्य में विवेक करने में असमर्थ हो जाते हो तथा यह कहने योग्य भी नहीं रह जाते कि कौन-सी चीज मिथ्या है और कौन-सी नहीं।

बहरहाल, बुद्धिमानी इसीमें है कि जब कोई आक्रमण हो तो यही समझा जाये कि यह बाहर से आया है और कहा जाये : "यह मेरा स्वरूप नहीं है और मैं इससे किसी प्रकार का संपर्क नहीं रखूंगा।" समस्त निम्नतर आवेगों और इच्छाओं तथा मन के समस्त संदेहों और शंकाओं के साथ भी तुम्हें इसी तरह से व्यवहार करना होगा। यदि तुम अपने-आपको इनके साथ तदाकार कर लो तो इनके साथ तुम्हारा युद्ध और भी विकट हो जाता है, कारण उस समय तुम यह अनुभव करने लगते हो कि तुम अपने ही स्वभाव को पराजित करने के अति दुष्कर कार्य में लगे हो। परंतु जैसे ही तुम यह कह सको : "नहीं, यह मेरा स्वरूप नहीं है, इससे मैं किसी प्रकार का संबंध नहीं रखूंगा," वैसे ही इनको हराकर भगा देना अधिक सहज हो जायेगा।

आन्तर और बाह्य के बीच रेखा कहां खींची जा सकती है ?

यह रेखा अत्यंत लचीली होती है, तुम चाहो तो बिलकुल समीप हो सकती है और चाहो तो दूर हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकती है। तुम हर एक बात को अपने ऊपर लेकर उसे अपनी वास्तविक आत्मा का एक अंग और अंश मान सकते हो और चाहो तो उसे एक केश या नाखून के टुकड़े की तरह, जरा भी प्रभावित हुए बिना दूर फेंक सकते हो।

ऐसे धर्म भी हुए हैं जिनके अनुयायी अपने केश या नाखून के एक टुकड़े को भी अपने से अलग नहीं करते थे, उन्हें भय था कि कहीं अपने व्यक्तित्व के किसी भाग को न गंवा दें। जो अपनी चेतना को जगत् के जितना विशाल बनाकर फैलाने में समर्थ होते हैं वे जगत् बन जाते हैं, किंतु जो अपने क्षुद्र शरीरों और सीमित अनुभवों में ही बंद रहते हैं वे उन सीमाओं पर जाकर रुक जाते हैं; उनके लिये शरीर और सीमित अनुभव ही सारा व्यक्तित्व बनकर रह जाते हैं।

श्रीमातृवाणी खण्ड ३ से

गैर्वाणी

मूल्याङ्कनम्

वर्तते काचित् बोधकथा अस्य मासस्य अर्थे मे मञ्जूषायाम्। एतादृश्यः कथाः पुनः पुनरपि श्रुत्वा श्रावयित्वा च न पुरातन्यः भवन्ति यतो हि एतासां हृदयगवाक्षात् प्रतिबिम्ब्यते सत्यस्य रूपम्।

आसीत् कश्चित् कलाविद् राजा, सौन्दर्यप्रेमी सः स्वसम्पूर्णनगरं लावण्यस्य प्रतिमूर्त्तिमेव अकारयत्। कथ्यते हि "यथा राजा तथा प्रजाः", सौन्दर्योपासकाः पौराः अपि स्वनगरं स्फटिकवत् स्वच्छम् अरक्षन्। दूरदेशात् जनाः तस्य नगरस्य शोभां द्रष्टुमागच्छन्ति स्म।

एकदा राज्ञा चिन्तितं यत् अहं नगरे काष्ठस्य अभूतपूर्वं प्रासादं कारयिष्यामि। निपुणशिल्पकारान् आहूय सः स्वमतं प्राकाशयत, सर्वैः एकमतं तस्य प्रस्तावस्य परिपुष्टिः कृता। अचिरमेव महाकार्यम् आरब्धम्। शिल्पी राजा स्वयमपि नियमितं रचनास्थलं गत्वा कार्यसञ्चालनमपश्यत्, यथा-यथा प्रासादस्य कार्यं क्रियते स्म, तस्य श्रीसुषमां वीक्ष्य राजा प्रफुल्लः भवति स्म। पुरजनाः अपि तादृशं प्रासादं कदापि न अपश्यन्—संक्षेपेण तस्मिन् राज्ये प्रासादस्य निर्माणकार्यमुत्सववत् प्रचलति स्म। अन्ततः महापर्वणः अनुष्ठानस्य दिनं प्राप्तम्—अद्भुतराजप्रासादस्य उद्घाटनम्!! देशान्तरेभ्यः जनाः निमन्त्रिताः, वास्तविकी कलाकृतिः आसीत् प्रासादः। राजा न केवलं शिल्पकारेभ्यः प्रचुरं धनधान्यमददात् अपि तु तान् राजशिल्पकाराः इति उपाधिना व्यभूषयत्।

राज्ये महोत्सवस्य प्रभावः अधुनापि सर्वत्र स्पन्दते स्म किन्तु अहो महादुर्भाग्यम्!! कोऽपि न जानाति कथं रात्रौ सम्पूर्णकाष्ठप्रासादः अग्निना दग्धः।

प्रभातपर्यन्तं एषा वार्ता सर्वत्र प्रसृता। दुःखिताः पौरजनाः राजानं सान्त्वयितुं समागताः किन्तु किमपि आश्चर्यकरं अपश्यन् ते सर्वे, राजा यथानित्यं स्वकार्यं करोति स्म। प्रतीयते स्म यथा राजा तेन अग्निकाण्डेन अस्पृष्टः एव आसीत्, कः कुर्यात् साहसं राजानं किमपि प्रष्टुम्? मनसि सर्वेषां उत्सुकता आसीत् किन्तु नासीत् साहसं तामभिव्यञ्जितुम्।

दैवेन आगामिरात्रौ एव भयङ्करः झञ्झावातः आगतः, राजप्रासादस्य सम्मुखस्थः वटवृक्षः तस्मिन् झञ्झावाते धराशायी अभवत्। परेद्युः प्रभाते जनाः किं पश्यन्ति? महाराजः पतितस्य वृक्षस्य समीपे उपविश्य धारासारैः क्रन्दति। सम्प्रति सर्वे विस्मिताः जाताः—आसीत् तत् समीचीनमपि। यः राजा तथा बहुमूल्यकाष्ठप्रासादे दग्धे सति ईषदपि दुःखं न अमन्यत सः एव सामान्यवृक्षस्य उत्पाटनेन विरहितः तथा क्रन्दति। मन्त्रिणः राजानं कथमपि असान्त्वयन् किन्तु राजा अन्यमनस्कः, दुःखितः एव अतिष्ठत्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकः वृद्धमन्त्री अन्ततः राजानम् अपृच्छत्, महाराज ! न बोधामि, षष्टिलक्षरूप्यकैः निर्मितः प्रासादः यदा दग्धः तदा भवतः मुखे दुःखस्य छाया अपि न दृष्टा किन्तु एषः वटवृक्षः किमर्थं भवन्तं तथा शोकाकुलं करोति ?

राजा अतिदुःखितस्वरेण अभणत्—तात ! यदि वाञ्छामि तदा निपुणशिल्पकारान् नियोज्य षष्टिं किम् अशीतिलक्षरूप्यकाणि अपि प्रदाय अन्यमेकं प्रासादं मासेन कारयितुं शक्नोमि किन्तु प्रकृत्या निर्मितमिदं तथा पुरातनं वृक्षं कथं पुनरपि रोपयेयम् ? प्रासादे तु कतिपयजनानां निवासोऽभविष्यत् किन्तु अशीतिवर्षेभ्यः एषः महान् वृक्षः कतिसहस्रप्राणिनाम् आश्रयस्थलमभवत्, किम् अस्ति अस्य गणना ??

राज्ञः उत्तरं श्रुत्वा निर्वाक् जातः वृद्धमन्त्री, अन्ये अपि जनाः स्तम्भिताः, ससम्मानं च तेषां मस्तकानि राज्ञः सम्मुखे नतानि, धन्याः आसन् प्रजाः वस्तुतः एतादृशं प्राज्ञं राजानं प्राप्य, तस्य जयजयकारैः अगुञ्जत् दिग्-विदिशाः—कः जानाति यत् राज्ञः गभीरप्रेम्णः प्रत्युत्तररूपेण तस्य वटवृक्षस्य किमपि बीजं पुनरपि भूमिं प्रविश्य वृष्ट्याः प्रथमस्पर्शेन अङ्कुरितः न जातः !!

—वन्दना

पुस्तक-परिचय

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय वाराणसी के प्रकाशन

द्रोण की आत्म-कथा : ले० मनु शर्मा; मूल्य २०.०० ।

ऐतिहासिक कथाएं लिखने में मनु शर्मा सिद्धहस्त हैं। बापा रावल, द्रौपदी की आत्म-कथा, कर्ण की आत्म-कथा आदि अपना स्थान बना चुकी हैं। इनकी भाषा बहुत सजीव होती है। एक छोटा-सा उदाहरण देखिये, दुर्योधन आदि संधि-वार्ता छोड़कर कृष्ण को बंदी बनाने की कोशिश में हैं। श्रीकृष्ण अपने रथ पर से दहाड़ते हैं, "मूर्खो, किसी स्वतंत्र व्यक्ति को वह बंदी नहीं बना सकता जो स्वतः बन्दी हो, अपनी आंखें खोलो और देखो, तुम्हारे चारों ओर तुम्हारे ही अहंकार की दीवारें हैं, तुम्हारे पैरों में ईर्ष्या की बेड़ियां हैं, तुम्हारे करों में द्वेष की हथकड़ियां हैं, तुम्हारे मस्तिष्क में लोभ का विषैला धुंआ भरा है . . . "

हनुमान, एक जीवन: मूल्य १०.००; *राम, एक जीवन* : मूल्य १०.००; *रावण, एक जीवन* : मूल्य १४.००; तीनों के लेखक युगेश्वर।

युगेश्वर पौराणिक पात्रों को लेकर सांस्कृतिक उपन्यास लिखने में निपुण हैं। इन तीनों पुस्तकों में पौराणिक गाथाओं को आधार बनाकर नये ढंग से कहानी लिखी गयी है। हनुमान एक जीवन, की एक बानगी देखिये, "हनुमान के हाथों अक्षय कुमार की मृत्यु हो जाती है, रावण अपने पुत्र की मृत्यु सुनकर अत्यंत दुःखी हुआ। दूसरे का बेटा मरता है तो राजा प्रसन्न होता है। पुरस्कार और अलंकरण बांटता है, सहानुभूति के प्रमाण-पत्र अर्पण करता है किन्तु अपने बेटे की मृत्यु पर भीतर से दुःखी होता है।"

रावण, एक जीवन में से देखिये, "फिर भी रावण के मन में चिन्ता का कीड़ा घुस गया था, वह कीड़ा जिधर जाता निशान बनाता जाता था। निशान बनते जाते, रावण के चेहरे पर रेंगते कीड़े के निशान बनते गये। देखनेवालों ने, समझनेवालों ने रावण के चेहरे पर इन निशानों को लक्ष्य किया"।

शूर्पणखा नाक-कान कटाकर रावण के यहां आती है तो मन्दोदरी उबल पड़ती है, "हत्यारिन, पति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को खा गयी, अब भाई भतीजों को खाना चाहती है, सर्पिणी-सी जीभ लपलपाती है सियारनी-सी मुंह बनाकर रोती है, गर्दभी-सी पर-पुरुष को साधना चाहती है। कोई यह नहीं पूछता कि तुम राम के पास गयी क्यों थीं ? परदेशी पुरुष के पास तुम्हारे जाने का क्या प्रयोजन था ? इसीलिये न कि वह तुम्हारी बेचैन और उन्मत्त वासना को मदनांकुश से शांत करे, तुम्हारे स्फीत नरक-कुण्ड में गिर कर अखंड पाप का भागीदार बने।''

तीनों किताबें पढ़ने लायक हैं।

स्फुट वचन

परम देव का बीज मर्त्य हृदयों में सो रहा है। परम देव का फूल विश्व-वृक्ष पर उगता है। सभी अपने अंदर और सभी चीजों में भगवान् को खोज लेंगे। लेकिन जब भगवान् का संदेशवाहक धरती पर सहायता करने के लिये, धरती की आत्मा को उच्चतर चीजों की ओर ले जाने के लिये आता है, उसे भी वह जूआ स्वीकारना होगा जिसे वह खोजने आया है, उसे भी वह पीड़ा सहनी होगी जिसे वह दूर करने आया है। अगर वह धरती के भाग्य से मुक्त और अछूता रहे तो वह उन रोगों को कैसे दूर करेगा जिन्हें उसने अनुभव ही नहीं किया ?

*

धरती से दुःख-दैन्य का उन्मूलन हो जायेगा। संसार पशु के क्रोध से, दानव की क्रूरता और उसकी पीड़ाओं से मुक्ति पा जायेगा। हर एक के लिये हमेशा शांति और आनंद होगा।

*

चूंकि तू समस्त-सौंदर्य और समस्त-आनंद है इसलिये मेरी अंध और सम्मोहित आत्मा तेरे लिये तरसती है। वह जो कुछ है, सभी में तेरे रहस्यमय स्पर्श को पाती है और उसके आनंद के भार से पुलकित होती है।

सभी आंखों के पीछे मुझे तेरी गुप्त दृष्टि दिखायी देती है और हर आवाज में मुझे तेरा जादुई राग सुनायी देता है। तेरी मधुरता प्रकृति के मार्गों द्वारा मेरे हृदय में मंडराती है और वह तेरे जाल से छूटकर कहीं और नहीं धड़कता।

वह सभी जीवित वस्तुओं में तेरे ही शरीर से प्रेम करता है, पत्ते-पत्ते में और एक-एक पत्थर में तेरा आनंद बसा है। उड़ते क्षण तुझे अपने आग्नेय पंखों पर उड़ा लाते हैं और तू ही दृष्टि की अनंत कलात्मकता है।

काल तुझे अपने यान के अगले भाग पर लिये उड़ता है और तू ही भविष्य की समस्त उत्कट, भावपूर्ण आशा है।

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निश्चेतन, भयानक, मूक रसातल में अनंत के हृदय की धड़कनें सुनायी देती हैं, संवेदनशून्य अर्द्ध रात्रि, उसकी आनंद-समाधि, प्रकाश के अथाह, मुहरबंद आश्चर्य को ढके रहती है।

—श्रीअरविन्द (सावित्री से)

अचंचलता हमेशा अच्छी होती है, सच्ची और स्थायी प्रगति के लिये अनिवार्य भी होती है।

—श्रीमां

एस. एन. सण्डरसन एण्ड कम्पनी

१ देशबन्धु गुप्त रोड

नयी दिल्ली-११००५५

उच्च कोटि की बिजली की सामग्रियों के लिए सम्पर्क करें :

आनस्टी इलेक्ट्रिक स्टोर्स

२२, रवीन्द्र सरनी

कलकत्ता—७०००७३

फोन—२७-७९९८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"Work done in the right spirit is meditation."

— The Mother

With Best Wishes from:

MRS. KOYAL DEORAH CHARITABLE TRUST,

28, VARSHA, 69/B, NEPEANSEA ROAD,

BOMBAY - 400 006

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्म या मृत्यु

जब आपके परिवार में हो तो अपने स्थानीय रजिस्ट्रार के यहां रजिस्टर कराएं

क्योंकि

जन्म प्रमाण-पत्र
उम्र का सबूत है :

* स्कूल में प्रवेश के लिए
* रोजगार के लिए
* मताधिकार प्राप्त करने के लिए
* ड्राईविंग लाइसेंस प्राप्त करने के लिए
* पासपोर्ट प्राप्त करने के लिए
* बीमा पालिसी प्राप्त करने के लिए

मृत्यु प्रमाण-पत्र
आवश्यक है :

* सम्पत्ति के उत्तराधिकार के लिये
* बीमा राशि वसूल करने के लिए
* सम्पत्ति के दावे निपटाने के लिए

समय पर रजिस्टर कराएं और प्रमाण-पत्र निःशुल्क प्राप्त करें

जन्म और मृत्यु रजिस्ट्रीकरण कानूनन जरूरी है ।
विलम्ब रजिस्ट्रीकरण की भी अनुमति है ।

davp 89/490

महारजिस्ट्रार, भारत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Assam Tea Warehousing Corporation
Indian Tea Storage Agency

The most tried & trusted warehouse of
Tea Trade at Gauhati and Calcutta
3-B, Lal Bazar Street
R.N.M. House, 4th Floor
CALCUTTA : 700 001.

Phone: 28-1287 & 28-1290 Gram: INTEASTORE
Tlx No.: 21-7889 DORA IN

Nothing but a radical change of consciousness can save humanity from the terrible plight into which it is plunged.
THE MOTHER

With the Compliments of:
Sri Mahalaxmi Oil Mills
RANIGANJ, Burdwan (W. Bengal)

M/S New Horizon Agencies
BITUMEN & P.O.L. PRODUCTS
TRANSPORT CONTRACTOR
H.O. RANIGANJ – 713 347 (W. Bengal)

With Best Compliments of:

deorah Seva Nidhi
(Charitable Trust Dedicated to Service)

25 Ballyganj Park
Rajnigandha 13 E
CALCUTTA 700 019

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी भी बाधा पर एकाग्रचित्त न हो, वह उसमें अधिक बल भर देती है।

— श्रीमां

इण्डियन आयल के निम्नलिखित डीलर्स आपकी सेवा में

कुमार आयल्स

केरोसिन व मोबिल आयल डीलर्स

राम तीर्थ मार्ग, सहारनपुर — २४७००१

फोन ४०६५

कुमार आयल्स

केरोसिन व मोबिल आयल डीलर्स

देवबन्द

पी पी फोन ३७७

बन्सल एण्ड कम्पनी

पैट्रोल पम्प, उत्तर काशी

फोन ४५

हेड आफिस :

बन्सल निकेतन

लक्ष्मण झूला मार्ग

ऋषिकेश

फोन १२५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

L-578

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R. N. 8837/65

Regd. No. M/8127

For us there is only one thing that counts. We aspire for the Divine, live for the Divine, act for the Divine.

The Mother

INLAND CARRIERS
(BOMBAY)

Head Office:
Takhatmal Estate
AMRAVATI - 444 601

Phone: 2228 and 2236 Gram: INACARS

Booking Offices:

i) 112, Sarang Street, BOMBAY-400 003 (Phone: 327710)
ii) 312, Nana Peth, Laxmi Road, PUNE-441 002 (Phone: 28027)
iii) Inside Panchkuwa, Bhistiwad, AHMEDABAD-1 (Phone: 384081)
iv) Tin-Nal Chowk, Gandhi Chowk, NAGPUR-444 002 (Phone: 42643)
v) 15-8-292, Ghoshamahal Road, HYDERABAD (Phone: 41685)
vi) Opp. Old Magistrate's Court, Gheekanta, BARODA (Phone: 51919)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिसम्बर १९८९

पुरोधा

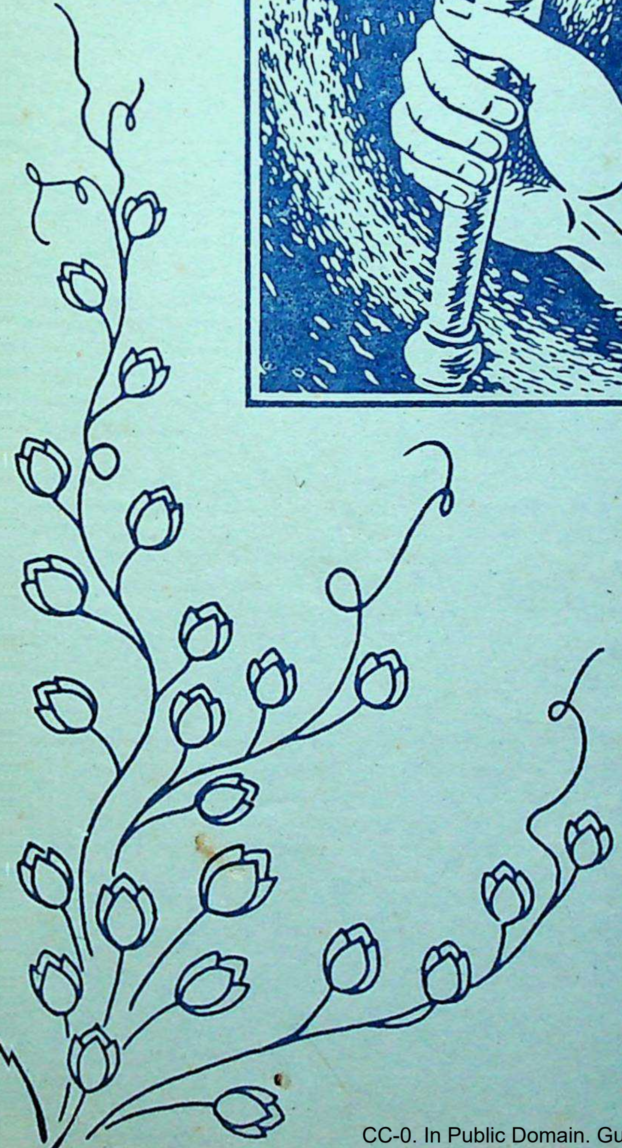

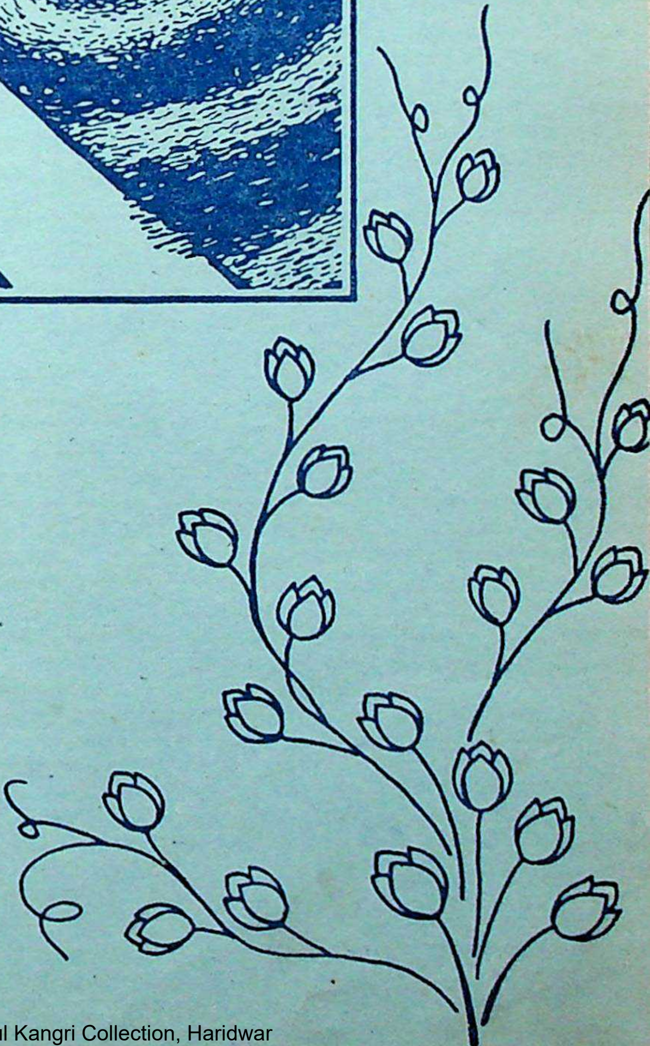

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

The very memory of the past experience has sometimes to be swept away from the thoughts that it may not impede the work of perpetual reconstruction which, alone in this world of relativities, permits the perfect manifestation of the Divine.

With my blessings

M.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, राजस्थान, मध्य प्रदेश, हरियाना,
गुजरात, ओड़िसा, आंध्र प्रदेश, पंजाब और मैसूर सरकार द्वारा
सरकारी पुस्तकालयों, विद्यालयों और महाविद्यालयों आदि के लिये स्वीकृत

पुरोधा दिसंबर १९८९ **वर्ष २८, अंक ३, पूर्णांक २७७**

विषय-सूची

प्रार्थना और ध्यान		२
अभ्यागत (सॉनेट)	श्रीअरविंद	३
दैनन्दिनी		४
संक्रमण का काल	श्रीअरविंद	७
शारीरिक सामंजस्य	श्रीमां	८
एकमेवाद्वितीयम्	श्रीअरविंद	११
'भारतीय संस्कृति के आधार' पर आधारित : भारत की राजनीतिक अक्षमता		१३
'सांध्य-वार्ताएं' : सौंदर्य		१४
'कुछ माताजी के बारे में' : ध्यान		१७
संयोग क्या है ?	श्रीमातृवाणी से	१८
भोजन में संतुलन	श्रीमातृवाणी से	२१
आत्मनिवेदन और समर्पण	श्रीमातृवाणी से	२३
'गैर्वाणी' : अतिथिः		२५
एक प्रश्न		२७
स्फुट वचन		२८

आपका ~~अग्निशिखा~~/पुरोधा का चंदा . . . में समाप्त हो रहा है। कृपया ~~अग्निशिखा के १० और~~ पुरोधा के १४ शीघ्र भेजें अन्यथा अगला अंक वी.पी.पी. से जायेगा। वी.पी.पी. लौट आने से हमें बहुत हानि होती है। अलग अनुस्मारक नहीं भेजा जायेगा। कृपया चेक न भेजें। चाहें तो २२५ या २७५ एक साथ या किस्तों में देकर अग्निशिखा और पुरोधा के ५०० देकर आजीवन सदस्य बन सकते हैं।

	पुरोधा	अग्निशिखा	दोनों मिलाकर
आजीवन सदस्यता शुल्क	२७५	२२५	५००
वार्षिक शुल्क	१४	१०	२४

सम्पर्क-सूत्र—सम्पादक पुरोधा एवं अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी—६०५००२

सम्पादक : रवीन्द्र, वन्दना
प्रकाशक : अनिरुद्ध सरकार, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२
मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थना और ध्यान

१९ नवंबर, १९१२

कल मैंने उस अंग्रेज से जो तुझे बड़ी सच्ची इच्छा के साथ खोज रहा था, कहा कि मैंने तुझे निश्चित रूप से पा लिया है और हमारा ऐक्य निरंतर है। सचमुच जिस अवस्था के बारे में मैं सचेतन हूं वह ऐसी ही है। मेरे सभी विचार तेरी ओर जाते हैं, मेरे सभी कर्म तुझे ही अर्पित हैं। मेरे लिये तेरी उपस्थिति चरम, अविकार और अचल तथ्य है और तेरी शांति सदा-सर्वदा मेरे हृदय में निवास करती है। फिर भी मैं जानती हूं कि ऐक्य की यह स्थिति, कल जिसे पाना मेरे लिये संभव होगा उसकी तुलना में, तुच्छ और अस्थिर है और मैं अभीतक उससे दूर, निःसंदेह बहुत दूर हूं उस एकात्मता से जिसमें मैं पूरी तरह "मैं" के भाव को खो दूंगी, उस "अहं" को जिसका उपयोग मैं अब भी अपना भाव प्रकट करने के लिये करती हूं लेकिन जो हर बार कृत्रिम या जबरदस्ती उपयोग होता है, मानों वह एक ऐसी परिभाषा हो जो उस विचार को अभिव्यक्त करने में असमर्थ है जो अभिव्यक्त होना चाहता है। मुझे यह मानव संपर्क के लिये अनिवार्य मालूम होता है लेकिन सब कुछ इसपर निर्भर है कि यह "मैं" किसे अभिव्यक्त करता है; और अब भी कितनी ही बार जब मैं इसका उच्चारण करती हूं तो मेरे अंदर से तू बोलता है क्योंकि मैं पृथक् होने का भाव खो चुकी हूं।

लेकिन यह सब अभी भ्रूण अवस्था में है और पूर्णता की ओर बढ़ता चलेगा। कैसा संतोषजनक आश्वासन है तेरी "सर्व शक्तिमत्ता" के अंदर शांत विश्वास में।

तू सब कुछ है, सब जगह है, सबमें है और यह शरीर जो कर्म करता है, तेरा अपना शरीर है, उसी तरह जैसे यह दृश्य विश्व पूरी तरह से तू है इस पदार्थ में; जो तू होते हुए भी तेरा तत्पर और स्वेच्छापूर्ण सेवक बनना चाहता है, तू ही है जो श्वास लेता है, सोचता है और प्रेम करता है।

—श्रीमां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभ्यागत

अपने गुह्य अमर अस्तित्व का मैंने किया अन्वेषण:
मेरे मन के पुरोभाग से आच्छादित, विशाल, शांत-प्रसन्न,
अविनाशी की दृष्टि से वह देखता यह चराचर जगत्,
मानव-रंगशाला का वह एक देव-प्रेक्षक।

तन और मन का कोई दुःख-पीड़न
उस पवित्र, नीरव महालय में न कर सकता पदक्रमण।
भय और संकट, पट्टे लटकाये भाग्य के शिकारी श्वानवत्
फाड़ते शरीर और शिराएं,—कालातीत आत्मा है मुक्त।

ईश-किरण अंतरस्थ साक्षी, हो जागृत
मेरी आत्मा के अमिट सारतत्त्व के भीतर,
ज्वालासम, अबोधगम्य सर्वशक्तिमान् अभ्यागत।
मृत्यु आती है निकटतर और नियति वसूल करती अपना कर;

वह सुनता वे प्रहार जो कर देते चकनाचूर प्रकृति का भवन:
दुर्जेय, ज्योतिर्मान, स्थिर वह रहता आसीन।

अनुवादिका : अमृता भारती —श्रीअरविंद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दैनन्दिनी

दिसंबर

१. भगवान् से कोई यह नहीं कह सकता, "मैंने तुझे जान लिया है," फिर भी सब "उसे" अपने अंदर लिये रहते हैं और अपनी अंतरात्मा की नीरवता में भगवान् की आवाज की प्रतिध्वनि सुन सकते हैं।

हर सत्ता अपने अंदर "भागवत निवासी" को लिये रहती है और यद्यपि समस्त विश्व में कोई सत्ता मनुष्य के समान दुर्बल नहीं है, फिर भी कोई उसके समान दिव्य नहीं है।

२. मानव सामान्यता असह्य है।

हम सचमुच जानवाले ज्ञान के लिये, सचमुच शक्तिशाली शक्ति के लिये, सचमुच प्रेम करनेवाले प्रेम के लिये अभीप्सा करते हैं।

हमारा मूल्य अपने-आपका अतिक्रमण करने के प्रयास के परिमाण में है और अपने-आपका अतिक्रमण करने का अर्थ है भगवान् को पाना।

३. इस प्रत्यक्ष अस्त-व्यस्तता द्वारा एक नयी और अधिक अच्छी व्यवस्था रूप ले रही है। लेकिन उसे देखने के लिये तुम्हारे अंदर "भागवत कृपा" में श्रद्धा होनी चाहिये। हिम्मत बनाये रखो।

४. अंतिम विश्लेषण में सब कुछ सचमुच भागवत कृपा पर निर्भर है और हमें भविष्य की ओर विश्वास और प्रसन्नता के साथ देखना चाहिये, साथ-ही-साथ यथा-संभव जल्दी-से-जल्दी प्रगति करनी चाहिये।

५. "ठीक उसी समय जब सब कुछ अधिक, और अधिक खराब होता प्रतीत होता है, तब हमें श्रद्धा की परम क्रिया अपनानी चाहिये और यह जानना चाहिये कि 'भागवत कृपा' कभी हमारा साथ न छोड़ेगी।"

मेरा मतलब है कि सभी परिणामों की परवाह किये बिना अपने आंतरिक विश्वास के अनुसार कार्य करो और तथाकथित प्रतिकूल प्रत्यक्ष प्रमाणों के होते हुए अपनी श्रद्धा को अविचल बनाये रखो।

६. भगवान् पर पूर्ण भरोसा : वह भरोसा जो जीवन को सच्चा सहारा देता है।

भगवान् पर हमारा भरोसा बाहरी परिस्थितियों पर निर्भर न होना चाहिये।

७. शांति असीम होनी चाहिये, अचंचलता गहरी और निश्चल, स्थिरता अटल और भगवान् पर विश्वास हमेशा बढ़नेवाला।

स्थिर, प्रबल और निरंतर शांति द्वारा ही सच्ची विजयें पायी जा सकती हैं।

८. प्रगति के बारे में चिंता न करना ज्यादा अच्छा है क्योंकि चिंता केवल प्रगति में बाधा देती है। पूरे विश्वास और सरलता के साथ भागवत सहायता की ओर खुलना और विजय पर विश्वास रखना ज्यादा अच्छा है।

शाश्वत की चेतना में निवास करो तो तुम्हें कोई चिंता न रहेगी।

९. महत्त्वहीन चीजों को बहुत महत्त्व न दो।

१०. जबतक तुम्हारे अंदर जगत् को बदलने की शक्ति नहीं है तबतक यह कहना बेकार है कि दुनिया गलत है और अगर तुम अपने अंदर से उन चीजों को निकाल दो जो संसार में गलत हैं तो तुम देखोगे कि फिर दुनिया गलत न रहेगी।

११. यह अनिवार्य है कि तुम अपनी सत्ता की निम्नतर गतिविधियों का अनासक्त और वैज्ञानिक ढंग से स्पष्ट दृष्टि और अंतर्दृष्टिवाले साक्षी की तरह अवलोकन करो। लेकिन तुम्हें इन गतिविधियों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस तरह प्रकट होने या अधिकार जमाने न देना चाहिये मानों उन्हें रहने और बाकी सत्ता पर शासन करने का अधिकार हो। दूसरे शब्दों में कहें तो तुम्हें कभी इन गतिविधियों के आवेश में आकर कार्य न करना चाहिये। उनके सुझावों को कभी वाच्य या क्रिया में भौतिक रूप से परिणत न करो, कभी बाहरी या भीतरी संकेत में भी उनकी आज्ञाओं को कार्यान्वित न होने दो।

१२. अगर तुम्हारे अंदर दृढ़ संकल्प है तो बस उसे दिशा देनी होगी; अगर तुम्हारे अंदर संकल्प नहीं है तो पहले अपने अंदर संकल्प का निर्माण करना होगा जो हमेशा बहुत समय लेता है और कभी-कभी कठिन भी होता है।

संकल्प :—समर्थता की ओर मुड़ी हुई चेतना की शक्ति।

१३. तुम जो कुछ करो उसमें रस लेने की कोशिश करो।

तुम जो कर रहे हो उसमें तुम्हें रस हो तो आनंद भी आयेगा।

तुम जो कर रहे हो उसमें रस लेने के लिये तुम्हें अधिकाधिक अच्छी तरह करने की कोशिश करनी चाहिये।

जब काम आकर्षक बन जाये और आनंद के साथ किया जाये तो यह कितना अधिक अच्छा होगा।

१४. हमारा काम चाहे जो हो, हम चाहे जो करते हों, हमें उसे सचाई, ईमानदारी और अति सावधानी के साथ करना चाहिये, किसी निजी लाभ के लिये नहीं बल्कि भगवान् के प्रति अर्घ्य के रूप में जिसमें हमारी पूरी सत्ता का समर्पण हो। अगर सभी परिस्थितियों में सचाई के साथ यह वृत्ति रखी जाये तो जब कभी हमें काम को भली-भांति करने के लिये कुछ सीखने की जरूरत हो तो ज्ञान को पाने का अवसर हमें मिल जाता है और हमें बस उस अवसर का लाभ उठाना होता है।

१५. अपने आदर्श के प्रति निष्ठावान् रहो और अपना काम भगवान् के अर्पण करो।

१६. चीजों को मधुरता के साथ कह सकना हमेशा बल का चिह्न होता है और दुर्बलता ही हमेशा अप्रिय रूप में फूट पड़ती है।

१७. साधना की प्रगति और तीव्रता के साथ-ही-साथ ढोंग और समझौते के बंद करने की अनिवार्य आवश्यकता भी अधिकाधिक अनुभव होती है।

यह धरती अभीतक अज्ञान और मिथ्यात्व द्वारा शासित है। लेकिन सत्य की अभिव्यक्ति का समय आ गया है।

१८. कठिनाइयां इसलिये आती हैं कि तुम्हारे अंदर संभावनाएं हैं। अगर जीवन में सब कुछ आसान होता तो यह कुछ नहीं का जीवन होता। चूंकि तुम्हारे रास्ते में कठिनाइयां आती हैं इससे पता चलता है कि तुम्हारे अंदर संभावनाएं हैं। डरो मत।

१९. उत्तरोत्तर सामंजस्य की स्थापना में जो मुख्य बाधाएं हैं उनमें से एक है अपने विरोधी के आगे यह सिद्ध करने की आतुरता कि वह गलत है और हम ठीक हैं।

२०. "सत्य" के पथ पर अधिक जानने के लिये तुमने जो कुछ सीखा है उसे अभ्यास में लाना होगा। जरा-सा निष्कपट अभ्यास बहुत-से लिखे और बोले गये शब्दों से कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

कम बोलो, सच्चे बनो, पूर्ण निष्कपटता के साथ काम करो।

२१. जब तुम बोलो तो मुख से शब्द निकालने से पहले कम-से-कम इतनी देर तो अपने-आपको एकाग्र कर लो कि तुम्हारा शब्दों पर नियंत्रण रहे और वे ही शब्द मुंह से निकलें जो अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं, केवल वही जो इस महान् उपलब्धि की ओर अग्रसर होने में किसी प्रकार भी बाधक नहीं हैं।

...अपने जीवन के प्रयोजन और लक्ष्य को कभी मत भूलो। इस महान् उपलब्धि का तुम्हारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकल्प सदा तुम्हारे ऊपर तथा जो कुछ तुम करते हो और जो कुछ तुम हो उसपर सजग रूप में विद्यमान रहे मानों यह प्रकाश का एक विशाल पक्षी है जो तुम्हारे अस्तित्व की समस्त गतिविधि को प्रभावित करता है।

२२. . . . अपने लक्ष्य को कभी मत भूलो . . . किंतु अपनी ओर से पूरा प्रयत्न करने पर भी यदि बादल घिर आयें, आशा और आनंद तिरोहित हो जायें और उत्साह ठंडा पड़ जाये तो याद रखो कि यह इस बात का लक्षण है कि तुम अपने चैत्य पुरुष से दूर हट गये हो और तुमने उसके आदर्श के साथ अपना संपर्क खो दिया है। इस बात को याद रखने से तुम एक गलती से बच जाओगे। तुम अपने चारों ओर के व्यक्तियों तथा दूसरी चीजों को दोषी नहीं ठहराओगे और इस प्रकार निरर्थक रूप में अपने कष्टों और कठिनाइयों की वृद्धि नहीं करोगे।

२३. हमेशा अपने आदर्श के प्रति निष्ठावान् और अपनी क्रिया में सच्चे और निष्कपट रहो।

२४. सच्ची बुद्धिमत्ता है किसी भी स्रोत से आनेवाले ज्ञान को सीखने के लिये तैयार रहना।
हम फूल से, पशु से, एक बच्चे से चीजें सीख सकते हैं बशर्ते कि हम हमेशा अधिक जानने के लिये उत्सुक हों क्योंकि संसार में केवल "एक" ही शिक्षक है—परम प्रभु, और वे हर चीज में अभिव्यक्त होते हैं।

२५. अगर तुम नियमित रूप से दिन में आठ-नौ घंटे काम करो तो तुम्हें भूख लगेगी। तुम अच्छी तरह से खाओगे और शांति से सोओगे और तुम्हारे पास यह सोचने के लिये समय न होगा कि तुम अच्छी मनोदशा में हो या बुरी।

२६. पढ़ाई मन को मजबूत बनाती है और उसकी एकाग्रता को प्राण के आवेगों और कामनाओं से हटाती है। मन और प्राण पर काबू पाने के तरीकों में से पढ़ाई-लिखाई पर एकाग्र होना एक बहुत शक्तिशाली तरीका है; इसलिये पढ़ना लिखना इतना जरूरी है।

२७. व्यक्ति सावधानी के साथ जो भी करे वह निश्चय ही मजेदार हो जाता है।

२८. **प्रश्न**—माताजी, आलस्य से कैसे छुटकारा पाया जा सकता है?
उत्तर—आलस्य दुर्बलता या रस के अभाव से आता है। पहली चीज का उपचार करने के लिये—तुम्हें मजबूत होना चाहिये।
दूसरी चीज को ठीक करने के लिये—कुछ रुचिकर काम करना चाहिये।

२९. जीवन सत्य और मिथ्यात्व के बीच, प्रकाश और अंधकार, प्रगति और अवनति, ऊंचाइयों की ओर आरोहण या रसातल में पतन के बीच निरंतर चुनाव है, हर एक आजादी से चुन सकता है।

३०. संक्षेप में दो बातें हमेशा याद रखो—कभी किसी भी अवस्था में भयभीत मत होओ और सभी परिस्थितियों में सच्ची सहायता को पुकारो और वह तुम्हारी शक्ति को सौगुना अधिक प्रबल बना देगी।

३१. **अध्यवसाय** द्वारा ही आदमी कठिनाइयों को जीत सकता है, उनसे भागकर नहीं। जो डटा रहे उसका जीतना निश्चित है। विजय सबसे अधिक सहनशील को प्राप्त होती है। हमेशा अपना अच्छे-से-अच्छा करो और परिणामों को भगवान् देख लेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संक्रमण का काल

(आज संसार की चिंताजनक स्थिति हर एक बुद्धिमान के मन में यह प्रश्न उठाती है कि संसार का क्या होगा ? और ऐसी स्थिति क्यों हैं ? अगर हम ठीक तरह से श्रीअरविंद के नीचे दिये हुए इन शब्दों का अध्ययन करें तो हमें इस प्रश्न का समुचित उत्तर मिल जायेगा।

लेकिन, श्रीअरविंद की अन्य चीजों की तरह केवल एक बार पढ़ लेने से चीज पकड़ में न आयेगी।—सं०)

इस समय मानवजाति विकास के संकट में से गुजर रही है जिसमें उसकी नियति का चुनाव छिपा है क्योंकि एक ऐसी अवस्था पहुंच गयी है जहां मानव मन अमुक दिशाओं में बहुत अधिक विकसित हो चुका है जब कि अन्य दिशाओं में वह अवरुद्ध और भ्रमित खड़ा है और अपना मार्ग नहीं पा सकता। मनुष्य के सदा सक्रिय मन और प्राण-इच्छा ने बाहरी जीवन का एक ढांचा खड़ा कर दिया है और वह ढांचा इतना विशाल, इतना जटिल है कि उसकी व्यवस्था करना असंभव है। यह उसने बनाया है अपने मानसिक, प्राणिक और भौतिक दावों और प्रेरणाओं की सेवा के लिये, यह एक जटिल राजनीतिक, सामाजिक, प्रशासकीय, आर्थिक, सांस्कृतिक यंत्र है, उसके बौद्धिक, संवेदनात्मक, सौंदर्यग्राही और भौतिक संतोष के लिये एक संगठित सामूहिक साधन है। मनुष्य ने एक ऐसे सभ्यता-तंत्र की रचना की है जो उसकी सीमित मानसिक क्षमता और समझ के लिये तथा उसकी और भी अधिक सीमित आध्यात्मिक और नैतिक क्षमता के लिये उस तंत्र के उपयोग और व्यवस्था की दृष्टि से बहुत ज्यादा बड़ा है। वह भूलें करनेवाले उसके अहं और उसकी क्षुधाओं के लिये अत्यधिक भयानक संकट बन गया है; क्योंकि उसकी चेतना की सतह पर अभीतक कोई महत्तर द्रष्टा मन, ज्ञान की कोई अंतर्भासात्मक आत्मा नहीं आयी है जो जीवन की इस आधारभूत पूर्णता को उसका अतिक्रमण करनेवाली किसी वस्तु की मुक्त वृद्धि के लिये उपयुक्त परिस्थिति बना सके। जीवन के साधनों की यह नयी परिपूर्णता मनुष्य को उसकी आर्थिक और भौतिक आवश्यकताओं के लगातार अतृप्त दबाव से छुड़ा सकने की अपनी सामर्थ्य के कारण, भौतिक जीवन से ऊपर उठे हुए अन्य और महत्तर लक्ष्यों की पूरी खोज का अवसर हो सकती है; उच्चतर सत्य, शुभ और सौंदर्य के अन्वेषण का, एक महत्तर और अधिक दिव्य आत्मा की खोज का अवसर हो सकती है जो हस्तक्षेप करके जीवन का उपयोग सत्ता की उच्चतर पूर्णता के लिये करे, लेकिन इसकी जगह उसका उपयोग नयी-नयी मांगों को बढ़ाने और सामूहिक अहंकार के आक्रामक विस्तार के लिये हो रहा है। साथ ही भौतिक विज्ञान ने वैश्व शक्ति की बहुत-सी क्षमताएं उसके हाथों में सौंप दी हैं और मानवजाति के जीवन को जड़ भौतिक रूप में एक बना दिया है लेकिन जो इस वैश्व शक्ति का उपयोग करता है वह छोटा-सा मानव वैयक्तिक या सामूहिक अहंकार है जिसके ज्ञान के प्रकाश या गतिविधियों में कुछ भी वैश्व नहीं है, कोई आंतरिक बोध या शक्ति नहीं है जो मानव जगत् के इस भौतिक रूप से नजदीक खिंच आने में एक सच्चा जीवन ऐक्य, मानसिक ऐक्य या आध्यात्मिक ऐक्य की रचना कर सके। वहां जो कुछ है वह है संघर्षरत मानसिक भावों की अस्त-व्यस्तता, भौतिक और प्राणिक चाहों और आवश्यकताओं की वैयक्तिक और सामूहिक प्रेरणाएं, प्राणिक दावे और कामनाएं, अज्ञानमय जीवन-प्रेरणा के आवेग, व्यक्तियों, वर्गों, राष्ट्रों की जीवन-संतुष्टि के लिये क्षुधाएं और पुकारें, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक धारणाओं और रामबाणों के प्रचुर कुकुरमुत्ते, नारों और सर्वरोगहर औषधियों की भीड़-भाड़ और रेल-पेल जिनके लिये मनुष्य अत्याचार करने और अत्याचार सहने, मरने-मारने के लिये तैयार रहता है, उन्हें अपने हाथ में आये हुए विशाल और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतिकराल साधनों से किसी-न-किसी तरह आरोपित करने को तैयार रहता है और यह सब वह इस विश्वास के साथ करता है कि उसके लिये यही किसी आदर्शतक पहुंचने का रास्ता है। निश्चित रूप से मानव मन और प्राण का विकास बढ़ते हुए वैश्व भाव की ओर ले जायेगा लेकिन अहंकार तथा खंडित करने और विभक्त करनेवाले मन के आधार पर वैश्व भाव की ओर यह उन्मीलन केवल असंगत विचारों और अंतर्वेगों के विशाल प्रदूषण, विपुल शक्तियों और कामनाओं का उभार, एक विशालतर जीवन की आत्मसात् न हुई और आपस में घुली-मिली मानसिक, प्राणिक और भौतिक सामग्री का अस्तव्यस्त समूह ही रच सकता है और चूंकि वह सामग्री आध्यात्म-सत्ता के सर्जनशील और सामंजस्यकारी प्रकाश द्वारा ऊपर उठायी हुई नहीं होगी, वह विश्वव्यापी अस्तव्यस्तता और असंगति में लथ-पथ होगी जिसमें से विशालतर सामंजस्यपूर्ण जीवन का बनाना असंभव होगा। भूतकाल में मनुष्य ने जीवन का संगठित उद्भावन और सीमायन द्वारा समंजस किया है। उसने निश्चित विचारों और बंधे रीति-रिवाजों पर आधारित निश्चित सांस्कृतिक तंत्र या जैविक जीवन तंत्र पर आधारित समाजों की रचना की जिनमें से हर एक की अपनी व्यवस्था थी। इन सबको अधिकाधिक आपस में मिलते हुए जीवन की कुठाली में डालना और रोज नये भावों और उद्देश्यों, वास्तविकताओं और संभावनाओं की बाढ़ का अंदर आना, जीवन की बढ़ती संभावनाओं का सामना करने, उनपर अधिकार करने और उनमें सामंजस्य लाने के लिये एक नयी, महत्तर चेतना की मांग करते हैं। तर्कबुद्धि और भौतिक विज्ञान केवल मानक बनाने में, हर चीज को भौतिक जीवन के कृत्रिम रूप से व्यवस्थित और यंत्रीकृत एकता में निर्धारित करने में ही सहायक हो सकते हैं। एक महत्तर समग्र-सत्ता, समग्र-ज्ञान, समग्र-शक्ति की जरूरत होती है, इन सबको समग्र-जीवन के महत्तर ऐक्य में मिला देने के लिये। और आज इस संक्रमण के काल में हमें इसी महत्तर ऐक्य की नितांत आवश्यकता है।

('दिव्य जीवन' से) —श्रीअरविंद

शारीरिक सामंजस्य

"...हमें शारीरिक शिक्षा की एक सुविवेचित और स्पष्टदर्शी प्रणाली के द्वारा अपने शरीर को सबल और नमनीय बनाना चाहिये, जिससे कि वह भौतिक जगत् में उस 'सत्य-शक्ति' का उपयुक्त यंत्र बन सके जो हमारे भीतर अभिव्यक्त होना चाहती है।"

शरीर को संगठित करना, उदाहरण के लिये, प्राणिक सत्ता की अपेक्षा कहीं कम कठिन होता है। किंतु मन और प्राण के जैसे स्वभाव और प्रकृति हैं, इस बेचारे गुलाम शरीर के साथ वे क्या-क्या नहीं करते! वे इसके साथ दुर्व्यवहार करते हैं, शायद इसे बिगाड़ भी डालते हैं (यह शरीर हल्की-सी आपत्ति करता है, थोड़ा बीमार पड़ जाता है) और उसके बाद ये दोनों साथी कहते हैं, "कैसा जानवर है यह शरीर, यह हमारे कार्य में हमारा साथ नहीं दे पाता!" दुर्भाग्यवश अपने दोनों मालिकों—मन और प्राण—की आज्ञाओं का पालन शरीर आंखे मूंदकर, विवेचना किये बिना करता है। मन अपने सिद्धांत लेकर आता है, "यह मत खाना, इससे तुम्हें नुकसान होगा, यह न करना, यह बुरा है," और यदि मन समझदार और स्पटदर्शी न हुआ तो शरीर को उससे जो आज्ञाएं मिलती हैं उनके परिणामों को बेचारा शरीर भोगता है। मैं यहां प्राण से मिलनेवाले हुक्मों की बात नहीं कहती। मन अपने कठोर सिद्धांतों के द्वारा और प्राण अपने अमिताचारों, भावावेगों और आवेशों के द्वारा बहुत शीघ्र ही शरीर का संतुलन बिगाड़ देते हैं और थकान, निःशक्तता और बीमारी की अवस्था उत्पन्न कर देते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"... शरीर को इस अत्याचार से मुक्त करना होगा और यह केवल तभी हो सकता है जब सत्ता के चैत्य केंद्र के साथ सतत एकत्व बना रहे।"

स्पष्ट ही यह समस्त रोगों का इलाज है।

"... शरीर में सहन करने और परिस्थितियों से मेल बैठाने की विलक्षण क्षमता है। हम जो कुछ कल्पना कर सकते हैं उससे बहुत अधिक चीजें करने की क्षमता उसमें है। अभी जो अज्ञ और स्वेच्छाचारी मालिक इसपर शासन करते हैं उनकी जगह यह यदि सत्ता के केंद्रीय सत्य के द्वारा शासित हो तो हम यह देखकर आश्चर्यचकित रह जायेंगे कि इसमें क्या-क्या करने की क्षमता निहित है।"

गत युद्ध में यह प्रमाणित हो चुका है कि शरीर में ऐसे कष्टों को सहने की क्षमता है जिन्हें साधारणतया सहन करना असंभव है। तुमने निश्चय ही युद्ध की ऐसे कहानियां सुनी या पढ़ी होंगी जिनमें शरीर को भयानक चीजें भोगनी और सहनी पड़ीं और उसने उन सबका सामना किया और प्रमाणित कर दिया कि उसमें सहने की प्रायः अशेष क्षमता निहित है। कुछ लोग ऐसी परिस्थितियों में जा पड़े जिनसे उनकी मृत्यु हो जानी चाहिये थी; किंतु वे जीवित बच गये और इसका कारण यह था कि उनमें जीवित रहने की इच्छा बहुत बलवती थी और शरीर ने उस इच्छा का पालन किया।

"... तब इस स्वस्थ और संतुलित जीवन में शरीर के अंदर एक नया सामंजस्य प्रगट होगा जो उच्चतर लोकों के सामंजस्य को प्रतिबिंबित करेगा और शरीर को आकार का पूर्ण सुडौलपन तथा आदर्श सौंदर्य प्रदान करेगा।"

यह अंतिम स्थिति है। अभी मानव-शरीर जैसा है उसकी तुलना यदि सौंदर्य के किसी उच्चतर आदर्श से की जाये तो स्पष्ट है कि बहुत कम लोग परीक्षा में उत्तीर्ण होंगे। प्रायः प्रत्येक मनुष्य के अंगों के अनुपात में एक प्रकार का असंतुलन विद्यमान है; हम इसके इतने आदी हो गये हैं कि हमारी दृष्टि में यह चीज आती ही नहीं; किंतु यदि हम उच्चतर सौंदर्य के दृष्टिकोण से देखें तो यह चीज दीखने लगती है; पूर्ण सौंदर्य की तुलना में बहुत थोड़े-से शरीर ही ठहर सकते हैं। इस असंतुलन के हजारों कारण हैं, किंतु इलाज एक हीं है। वह है सत्ता के अंदर सच्चे सौंदर्य की, परमोच्च सौंदर्य की इस सहज-वृत्ति और भावना को स्थापित करना जो कि धीरे-धीरे कोषों पर क्रिया करे और शरीर को सौंदर्य प्रगट करने के योग्य बनाये। यह अभीतक भी एक ऐसी चीज है जिसे लोग नहीं जानते : शरीर तुम्हारी धारणा से अनंतगुना अधिक नमनीय है। तुमने निश्चय ही देखा होगा (शायद बहुत ही अस्पष्ट रूप में) कि जो लोग आंतरिक शांति में, आंतरिक सौंदर्य में, प्रकाश में और पूर्ण सद्भावना में निवास करते हैं उनका रूप उन लोगों जैसा नहीं होता जो कुविचारों में और अपनी प्रकृति के निम्नतर अंगों में निवास करते हैं। जब मनुष्य अपनी श्रेष्ठतम स्थिति में रहता है, अपने निम्नतम पशुत्व से ऊपर रहता है, तब उससे एक ऐसी चीज विकीर्ण होती है जो उसमें उस समय नहीं होती जब वह पशुता की अवस्था में निवास करता है।

यदि मनुष्य अपना रूप अहंभाव से या उस विख्यात चीज दंभ के कारण बदलना चाहे तो स्वभावतः ही उसे सफलता नहीं मिलेगी, क्योंकि यह काम करने की शक्ति तो एक और ही अधिक गंभीर चीज में है; लेकिन तुम यदि सब समय बुरी इच्छा, खोटे विचार से बचे रह सको तो देखोगे कि तुम्हारे रूप और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकृति में एक प्रकार का सामंजस्य क्रमशः प्रगट होने लगा है। क्योंकि यह सच है कि शरीर आंतरिक स्थितियों को प्रगट करता है।

किंतु तुम एक बात भूल जाते हो। यदि तुम समूचे दिन में पांच या छः घंटे उच्चतर चेतना में बिता लेते हो तो तुम्हें लगता है कि यह बहुत हो चुका और बाकी समय तुम कम या अधिक एक छोटे पशु की भांति रहते हो, तुम अपने-आपपर नियंत्रण नहीं रखते, परिस्थितियों की हांकपर चलते हो। और तुम उस चीज के पास जाना एकदम भूल जाते हो जो ऊपर स्थित है, जो तुम्हें अपनी प्रकृति के निम्नतर क्षेत्रों में नीचे गिरने से रोक सकती है।

यदि तुम इसके लिये प्रयत्न करने का कष्ट उठाते तो इसमें अपने शरीर से तुम्हें बहुत अधिक सहायता प्राप्त होती।

तुम्हें शरीर को हेय दृष्टि से नहीं देखना चाहिये और न इसकी अत्यधिक भर्त्सना ही करनी चाहिये, क्योंकि यह दोषी नहीं है; यदि अपने शरीर को सिखाने और साधने के लिये तुम किसी उपयोगी पद्धति को अपनाओ तो तुम्हें अभी जो उससे लाभ प्राप्त होता है उससे अनंतगुना अधिक लाभ मिलेगा। अभी बिल्कुल हाल ही में लोगों ने शारीरिक अनुशीलन को एक महत्त्वपूर्ण चीज कहना शुरू किया है। यदि सौ वर्ष पीछे की ओर ताको तो तुम देखोगे कि जिन लोगों को और कोई काम नहीं रहता था वे ही शारीरिक व्यायाम में संलग्न रहते थे। सौ वर्ष पहले इसे एक व्यसन समझा जाता था। जब कोई कहता था, "मैं अपने लड़के को स्कूल नहीं भेजना चाहता, उसे आजीविका कमानी चाहिये," तो ऐसा उत्तर देनेवाले बहुत लोग मिलते थे, "नहीं, नहीं, क्षमा करें, आप बड़ी भारी भूल कर रहे हैं, यदि आप अपने बच्चे को उसके प्रौढ़ जीवन के लिये तैयार नहीं करेंगे तो उसे जो कुछ करना चाहिये उसे करने में वह असमर्थ रहेगा।" लेकिन यह बात लोग कहते थे मन के संबंध में, शरीर के बारे में नहीं। इतने सारे बच्चे ऐसी अवस्थाओं में रहते थे जो कम या अधिक अच्छी होती थीं, उनका शरीर उनके लिये वास्तव में एक कठिनाई होता था, किंतु लोग यही कह देते थे, "वह सुधर जायेगा, वह बिल्कुल ठीक हो जायेगा . . .।" अभ्यास और धैर्य से तुम अपने शरीर को ऐसा बना सकते हो कि जीवन के कर्मों के साथ वह ठीक-ठीक निभा सके। आजकल लोग स्वस्थ और संतुलित जीवन का मूल्य स्वीकार करने लगे हैं। और मैंने यह कहा है कि यह सामंजस्य प्रगतिशील होगा।

> *". . . यह सामंजस्य प्रगतिशील होगा, क्योंकि सत्ता का सत्य निश्चल नहीं होता, वह तो एक वर्द्धमान, अधिकाधिक सर्वांगपूर्ण और सर्वतोमुखी पूर्णता का निरंतर प्रकटीकरण है। जैसे ही शरीर वर्द्धमान सामंजस्य की इस गति का अनुसरण करना सीख जायेगा वैसे ही रूपांतर की एक सतत प्रक्रिया के द्वारा विघटन और विनाश की आवश्यकता से बच निकलना उसके लिये संभव हो जायेगा। इस तरह मृत्यु के अटल नियम के बने रहने के लिये कोई कारण नहीं रह जायेगा . .। 'सत्य' के चारों गुण हमारी सत्ता में स्वयं ही अभिव्यक्त होंगे। चैत्य वाहन होगा सच्चे और विशुद्ध प्रेम का, मन होगा अचूक ज्ञान का, प्राण अभिव्यक्त करेगा अजेय शक्ति और बल को, और शरीर अभिव्यक्ति होगा पूर्ण सौंदर्य और पूर्ण सामंजस्य की।"*

रहस्यवेत्ताओं और धार्मिक लोगों में बहुत कम लोग ही यह बात जानते हैं कि सत्ता के प्रत्येक अंग के अंदर भगवान् भिन्न-भिन्न ढंग से प्रगट होते हैं। उच्चतर अंगों में 'वह' प्रगट होते हैं 'शक्ति', 'प्रेम' आदि के रूप में, किंतु भौतिक स्तर में 'वह' प्रगट होते हैं 'सामंजस्य' और 'सौंदर्य' के रूप में।

अतएव, शारीरिक सुंदरता को प्रगट करने की समस्या एक आध्यात्मिक समस्या हो जाती है।

—श्रीमां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकमेवाद्वितीयम्

समस्त अस्तित्व एक, शाश्वत और अनंत का अस्तित्व है, **एकमेवाद्वितीयम्**। केवल एक ही है, कोई दूसरा नहीं, उसके सिवा कभी, कहीं कुछ नहीं हो सकता।

काल में अस्तित्व भी वही है, सांत भी वही है क्योंकि सांत अनंत की एक स्थिति मात्र है और काल शाश्वतता का एक पहलू मात्र। जिसे हम अदिव्य कहते हैं वह भी वही है क्योंकि वह सर्वव्यापक भगवान् का एक मुखौटा मात्र है।

समस्त सत्ता उस एक अनंत और शाश्वत भगवान् की सत्ता है। उसके सिवा न कुछ है न हो सकता है। न केवल अनंत वह है बल्कि सांत भी वही है, न केवल कालहीन बल्कि काल और काल के अंदर विद्यमान सब कुछ भी वही है। केवल निर्गुण ही नहीं, सगुण भी, गुण और संख्या और जो कुछ गुण और संख्या से परे है, निराकार और साकार, व्यक्ति और उतना ही वैश्व और अतिवैश्व, द्रव्य और प्राण और मन और साथ ही आत्मा, सापेक्ष और निरपेक्ष सभी वह है। **एकमेवाद्वितीयम्**।

जो कुछ है वह परमार्थ तत्त्व की वास्तविकता है। जगत् के अस्तित्व का कारण बतलाने के लिये भ्रांतिपूर्ण माया का अन्वेषण करने की जरूरत नहीं है। यह विचार कि सर्वोच्च परमार्थ तत्त्व आत्माभिव्यक्ति में अक्षम है और उसकी एकमात्र शक्ति आत्म-विमोह की शक्ति है, यह उस मानव मन और तर्क-बुद्धि का अंतिम, निराशामय सहारा है जो अपनी ही बनायी हुई कठिनाई से बचने का प्रयास कर रहा है। यह कठिनाई उसकी अपने ऊपर लादी हुई भ्रांति या माया है जिसका ज्योतिर्मय आत्मा की सच्ची और पूर्ण अतिमानसिक चेतना में अस्तित्व ही नहीं है।

शाश्वत और काल में अस्तित्व के बीच कोई असंगति नहीं है। काल और कालातीत आत्मस्थित अवस्था और आत्मविकसनशील गति में एक ही शाश्वतता है। कालातीत शाश्वत है और अपने-आपको चिरस्थायी अनंत वर्तमान में जानता है। काल भी शाश्वत है और भूत, वर्तमान और भविष्य की अविभाज्य गति में जाना जाता है। गतिशील क्षण में अपने-आपको संतुलित रखनेवाली हमारी चेतना ही हमें विभक्त काल का संस्कार देती है। एक क्षण से दूसरे क्षणतक गति करनेवाली चेतना, भूत को खोती, भविष्य को पाती और इन तीनों की स्मृति को उस क्रिया द्वारा जोड़े रखती है जो 'है,' 'था' और 'होगा'। शाश्वत चेतना में भूत अब भी मौजूद है और वर्तमान के द्वारा भविष्य में फैला हुआ है। यह मान लेना कि कालातीत, अपने कालातीत होने के कारण अपने-आपको काल की गति में नहीं डाल सकता और इसलिये काल और काल में स्थित सब कुछ भ्रांति और माया है या यह मानना कि केवल काल का ही अस्तित्व है और हम उसकी कालिक सृष्टि हैं, भागवत शाश्वतता पर अपनी छोटी-सी सतही चेतना का अज्ञान और सीमाबंधन आरोपित करना है। वास्तव में स्वयं हम अपनी सतह के नीचे शाश्वत काल में अपनी सत्ता में गति द्वारा विकसित होते हुए कालातीत हैं।

हमारे एकमात्र परमार्थ तत्त्व में समस्त असीम, एकमेव, भगवान्, शाश्वत और अनंत सब आ जाते हैं—**एकमेवाद्वितीयम्**।

वह अनंत है! लेकिन सांत सत् भी वही एक सत्ता है, वही अनंत सत्ता है! उसकी कोई भिन्न वास्तविकता नहीं है: वह शाश्वत है परंतु कालिक भी उसी शाश्वत की गति के सिवा कुछ नहीं है। काल की कोई स्वतंत्र आत्म-निर्भरता नहीं है! वह भागवत सत्ता है लेकिन वह सब जो अभागवत दीखता है, उसके देवत्व का छद्मवेश है। यह किसी रहस्यमय भागवत विरोधी तत्त्व से बनी हुई सृष्टि नहीं है।

भागवत परम तत्त्व गुण और आकार से बंधा हुआ नहीं है लेकिन गुण और आकार भी उसीके हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनंत गुण, अनगिनत आकार, वह मिट्टी का पात्र, वह सोने का सिक्का, उस लोकातीत शुभ्रता में निहित रंग उसीके हैं। सब कुछ शाश्वत और अनंत भगवान् है।

निर्गुण और सगुण विरोधी आभास या दोहरे पहलू नहीं हैं, न ही सगुण सदा निर्गुण रहनेवाली सत्ता की सुखद कल्पना है, बल्कि दोनों सदा के लिये एक हैं।

सब कुछ भागवत सत्ता है, वह भी जो अभागवत दीखता है। कोई अनात्म नहीं है। यह सब शाश्वत आत्मा है। यह समस्त विश्व और अन्य सभी विश्व कालातीत आत्मा की काल सत्ता हैं।

केवल एक परम सद्वस्तु है, कोई दूसरी नहीं हो सकती। एकमेव, भगवान्, शाश्वत और अनंत। **एकमेवाद्वितीयम् ब्रह्म।**

एकमेव साथ-ही-साथ सर्व भी है क्योंकि वह सबके अंदर है, सर्व उसीसे अस्तित्व रखता है, वही सर्व है। सत्ता का कोई भी स्तर क्यों न हो, कोई भी जगत् क्यों न हो, कोई भी व्यक्ति क्यों न हो उसके अस्तित्व का सत्य एक ही है यानी वह एक ही है क्योंकि कोई दूसरा न है न हो सकता है। परात्पर भगवान् है, वैश्व भगवान् है, व्यष्टि भगवान् है। सब एक ही परम सद्वस्तु है।

केवल वही नहीं जिसे हम अनंत के रूप में देखते हैं बल्कि सांत भी वही एक सत्ता है, उसकी कोई अलग या स्वतंत्र वास्तविकता नहीं है। केवल शाश्वत ही वह नहीं है बल्कि कालिक भी वही है क्योंकि कालिक शाश्वत की एक परिस्थिति मात्र है जिससे अलग काल की अपनी कोई सत्ता नहीं है। केवल वही नहीं जिसे हम भागवत सत्ता के रूप में देखते हैं बल्कि अभागवत भी, उसी एक भगवान् के छद्मवेश से बढ़कर कुछ नहीं है। वह किसी रहस्यमय भागवत विरोधी तत्त्व से बनी सृष्टि नहीं है।

समस्त सत् एक है। वह एकमेव, भगवान्, अनंत, शाश्वत, निरपेक्ष की सत्ता है।

हम जिसे बहु के रूप में देखते हैं वह एकमेव की बहुलता है। ऊपर से भिन्न-भिन्न दीखनेवाले ये प्राणी और सभी वस्तुएं भी एक ही सत् हैं। वे एकमेव सत्ता की सत्ताएं हैं। क्योंकि तत् ही उनकी एकमात्र आत्मा है। अपने आध्यात्मिक सार-तत्त्व में वे वही तत् हैं, अपनी लीला और अपनी सत्ता के आकार में भी वे तत् हैं। वे एक ही सगुण पुरुष के व्यक्तित्व हैं। वे एक ही सत् की अभिव्यक्तियां हैं। वे एकमात्र परम सद्वस्तु की विभिन्न सद्वस्तुएं हैं, वे किसी भी तरह उससे अलग या स्वतंत्र नहीं हैं बल्कि हर तरह उसीसे जीती हैं, उसीकी हैं, और कुछ हो ही नहीं सकतीं। सभी सामर्थ्य एक परम सामर्थ्य की शक्तियां हैं जो एकमेव सत्ता की एकमात्र शक्ति हैं। इसके सिवा और कोई शक्ति नहीं है, सभी वस्तुएं एक अस्तित्व के रूप हैं, ऐसी कोई चीज नहीं है जो तत् से अलग अपना अस्तित्व रखती हो। ऐसी कोई चीज नहीं है जो विश्व के सारतत्त्व से भिन्न व्यष्टिगत सारतत्त्व हो।

हम जिसे सांत देखते हैं वह अनंत से भिन्न नहीं है। सब कुछ अनंत में है, सब कुछ अनंत में जीवन धारण करता है। सब कुछ अनंत का ही द्रव्य है। कोई भी वस्तु या व्यक्ति अपनी ही सांत और व्यक्तिगत शक्ति द्वारा न सत्ता धारण कर सकता है, न उसमें बना ही रह सकता है। न कोई अपने ही सीमित पदार्थ और सत्त्व द्वारा औरों के पदार्थ और सत्त्व से अलग ही रह सकता है। अपनी तली में सब ही एक हैं, जिन्हें अलग नहीं किया जा सकता। विश्व में प्रभावकारी संकल्प, निश्चय, सीमांकन और विभिन्न गठन तो है पर कोई तात्त्विक विभेद या विभाजन नहीं है। वृक्ष एक वस्तु या गोचर तथ्य के रूप में अलग है परंतु वह अपने चारों ओर से कटी हुई कोई अलग सत्ता नहीं है। एकमेव सत्ता और एकमेव ऊर्जा ने वृक्ष का रूप धारण किया है, उसीसे उसका हर अणु, परमाणु और तंतु बना है। वही उसमें व्यापक है और वही उसकी समस्त सत्ता का गठन और समस्त अस्तित्व है। यह ऊर्जा न सिर्फ उस सारे में समायी रहती है और उसमें प्रवाहित होती है बल्कि उसके चारों ओर हर जगह फैली है। उसीसे विश्व की सभी वस्तुएं बनी हैं और ऊर्जा पाती हैं । वस्तुतः हर सांत अनंत है, बाहर से पृथक्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या विभक्त दीखनेवाला अस्तित्व अविभाज्य का एक चेहरा मात्र है।

वह सब जिसे हम कालिक या ऐहिक रूप में देखते हैं वह शाश्वत के सिवा और कुछ नहीं है, तत् का वह रूप जो काल में है वह क्षणिक है या प्रतीत होता है। परंतु आत्मा, पदार्थ, वह सत्ता जो रूप धारण करती है ये सब शाश्वत हैं और एक ही आत्मा, एक ही पदार्थ हैं। जो कुछ है, जो कुछ था और जो कुछ होगा उसके साथ एकात्म है लेकिन रूप भी अपने-आपमें कालिक नहीं शाश्वत है। वह शाश्वत के अंदर उसकी चेतना, उसकी शक्ति और संभावना के रूप में हमेशा बना रहता है। रूप अभिव्यक्त होता है और अभिव्यक्ति में से पीछे खींच लिया जाता है; वह तुरंत प्रकट होकर अभिव्यक्त हो सकता है या वह रचना द्वारा अभिव्यक्त हो सकता है और विनाश या विलयन द्वारा खींच लिया जाता है। लेकिन दोनों अवस्थाओं में वह पहले ही से शाश्वत की चेतना और सत्ता में उपस्थित रहता है। यदि वह पहले से ही शक्ति और संभावना में मौजूद न रहा होता तो यथार्थता में उसका निर्माण न किया जा सकता क्योंकि यथार्थ हमेशा संभव से उत्पन्न होता है और संभव हमेशा शाश्वत के सत्य की एक संभावना होता है।

('मानव से अतिमानव' की ओर से) —श्रीअरविंद

''भारतीय संस्कृति के आधार'' पर आधारित :

भारत की राजनीतिक अक्षमता

भारतीय शासन-प्रणाली के बारे में इतनी चर्चा करने के बाद हम इस परिणामतक पहुंच सकते हैं कि भारतीय सामाजिक-राजनीतिक प्रणाली का उचित ज्ञान तथा इसके स्वरूप और सिद्धांत का उचित बोध पश्चिम के आलोचकों के इस तर्क को तुरंत रद्द कर देता है कि भारतीय मन दर्शन, धर्म, कला और साहित्य में विलक्षण होते हुए भी जीवन की व्यवस्था करने में अक्षम था, व्यावहारिक बुद्धि के कार्यों में हीन था और विशेष रूप से वह राजनीतिक परीक्षण में असफल रहा और उसका इतिहास सुदृढ़ राजनीतिक निर्माण, चिंतन तथा कर्म से खाली रहा। इसके विपरीत, भारतीय सभ्यता ने एक उच्च कोटि की प्रशंसनीय राजनैतिक प्रणाली को विकसित किया जो ठोस रूप में तथा स्थायी दृढ़ता के साथ निर्मित की गयी थी; उसने राजतंत्र, जनतंत्र तथा अन्य प्रणालियों और प्रवृत्तियों को अद्भुत कौशल के साथ एक-दूसरे के साथ जोड़कर उनका पूरक बनाया, ये सभी प्रणालियां आपस में घुली-मिली थीं, जीवंत थीं और इसी कारण वे यूरोप की उस यंत्रीकरण की प्रवृत्ति से हमेशा दूर रहीं जो आधुनिक यूरोपीय व्यवस्था का दोष है।

लेकिन राजनीति का एक और पहलू है जिसके बारे में यह कहा जा सकता है कि भारतीय मन ने असफलता के अलावा और कुछ अंकित नहीं किया। उसने जिस राष्ट्र-व्यवस्था का विकास किया वह प्राचीन अवस्थाओं में स्थिरता तथा प्रभावशाली प्रशासन के लिये और सामाजिक व्यवस्था तथा स्वाधीनता तथा लोगों के कल्याण के लिये भले ही प्रशंसनीय रही हो—यद्यपि इस देश की अनेक जातियों में से हर एक पृथक्-पृथक् आत्म-शासित, सुशासित तथा समृद्ध थी, सारा देश व्यापक रूप में उच्च रूप से विकसित सभ्यता तथा संस्कृति को स्थिरता के साथ चलाने में समर्थ था—फिर भी वह राष्ट्र-व्यवस्था भारत की राष्ट्रीय तथा राजनीतिक एकता को लाने में असफल रही और अंत में विदेशी आक्रमण से, इसकी संस्थाओं के विघटन तथा युगव्यापी दासता से भी इसकी रक्षा करने में असमर्थ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही। निःसंदेह किसी भी समाज की राजनीतिक प्रणाली का मूल्य सबसे पहले इस बात से आंकना होगा कि वह जनता को स्थिरता, समृद्धि, आंतरिक स्वाधीनता तथा व्यवस्था किस हदतक प्रदान करती है लेकिन साथ ही इसके द्वारा भी कि वह दूसरे राज्यों के विरुद्ध सुरक्षा की कितनी ऊंची दीवार खड़ी कर सकती है तथा बाहरी शत्रुओं तथा प्रतिद्वंद्वियों से लड़ने तथा उनका सामना करने के लिये उसके अंदर कितनी एकता और शक्ति है। संभवतः यह मानवजाति के लिये पूर्ण रूप से प्रशंसा की बात नहीं है कि राजनीतिक प्रणाली ऐसी ही होनी चाहिये और जो राष्ट्र या जाति इस प्रकार के राजनीतिक बल में हीन हैं, जिस तरह प्राचीन ग्रीक तथा मध्ययुगीन इतालवी थे, वे हो सकता है कि आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से उन जातियों से कहीं अधिक श्रेष्ठ हों जिन्होंने उनपर विजय पायी और सच्ची मानवजाति की प्रगति में आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से विकसित जातियों का योगदान उन जातियों से कहीं अधिक महान् हो सकता है जिन्होंने सफल सैनिक राज्यों, आक्रमणशील समाजों तथा लूटमार करनेवाले साम्राज्यों की स्थापना की। लेकिन मनुष्य का जीवन अबतक मुख्य रूप से प्राणिक जीवन है अतः वह विस्तार करने, दूसरे पर अधिकार करने, आक्रमण करने, दूसरों को निगलने, उन्हें जीतकर अपना सिक्का जमाने की परस्पर संघर्षमय वृत्ति से शासित होता है—सचमुच ये ही हैं जीवन के प्रथम नियम। और जो सामूहिक मन तथा चेतना संघर्ष तथा आत्मरक्षा में सतत अक्षमता का प्रमाण देती है तथा स्वयं अपनी सुरक्षा के लिये आवश्यक केंद्रीभूत तथा कार्यक्षम एकता को व्यवस्थित नहीं करती वह स्पष्ट रूप से राजनैतिक क्षेत्र में प्रथम श्रेणी से बहुत नीचे रह जाती है। भारत कभी राष्ट्रीय या राजनीतिक रूप से एक नहीं रहा। करीब एक हजार वर्षतक भारत बर्बर आक्रमणों से आक्रांत रहा और करीब एक हजार वर्षतक एक के बाद एक विदेशी प्रभुओं का दास रहा। अतः यह स्पष्ट है कि भारतीय जाति के विरुद्ध यह निर्णय देना होगा कि वह राजनीतिक दृष्टि से अक्षम थी।

—वंदना

सांध्य वार्ताएं :

सौंदर्य

१४-८-१९२६

शिष्य—क्या सौंदर्यबोधात्मक सत्ता और चैत्य में कोई संबंध है ?

श्रीअरविंद—सौंदर्यात्मक सत्ता में सौंदर्य-बोध होता है और चैत्य सत्ता में भी सौंदर्य-बोध होता है। इसके सिवा इन दोनों में कोई खास संबंध जरूरी नहीं है।

सौंदर्यात्मक सत्ता प्राणमय लोक की चीज है। अगर मनुष्य केवल रूप और रेखा का स्वामी नहीं है तो सौंदयात्मक सत्ता रूप के सौंदर्य से कुछ और चीज अभिव्यक्त कर सकती है। सौंदर्यात्मक सत्ता रूप और रेखा के सौंदर्य को देखती है और साथ ही किसी ऐसी चीज के सौंदर्य को देखती है जो अभिव्यक्त की गयी है जब कि चैत्य सत्ता अंतरात्मा की मनोहरता को देखती है।

चैत्य सत्ता में उस तरह की सुंदरता नहीं होती जैसी कि सामान्यतः समझी जाती है। वह एक 'मोहकता' है—एक आंतरिक सुंदरता, अंतरात्मा की सुंदरता। लेकिन यह जरूरी नहीं है कि उसमें रूप की सुंदरता भी हो—यद्यपि यह भी हो सकती है। हो सकता है कि जिस व्यक्ति में सुंदर अंतरात्मा है वह सुंदर न हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्य—क्या अंतरात्मा की उदात्तता को भौतिक सुंदरता में प्रकट न होना चाहिये ?

श्रीअरविंद—होना तो यही चाहिये लेकिन जीवन में हमेशा ऐसा नहीं होता। हो सकता है कि किसी की अंतरात्मा सुकरात के जैसी उदात्त हो और देखने में वह उसीके जैसा कुरूप हो !

शिष्य—सभी बच्चे हमेशा सुंदर होते हैं।

श्रीअरविंद—उनमें प्राणिक चमक होती है।

शिष्य—क्या चैत्य सुंदरता में रंग, रेखा या ऐसी कोई विशेषता होती है ?

श्रीअरविंद—चैत्य सुंदरता अपने-आपको, सौंदर्यात्मक बोध की सुंदरता की तरह रंग और रेखा में प्रकट करे यह जरूरी नहीं है। यह उन सबसे एकदम भिन्न है यद्यपि यह अपने-आपको उनके द्वारा भी प्रकट कर सकती है। यह एक तरह की अनिर्वचनीय मोहकता और सुकुमारता है।

शिष्य—इसका मतलब यह हुआ कि चैत्य सौंदर्य में कोमलता और सुकुमारता होती है।

श्रीअरविंद—अगर तुम शब्दों को इस तरह पकड़ो तो तुम मेरे अर्थ का अनर्थ करते हो। प्राणिक सुंदरता में भी कोमलता होती है लेकिन यह वही नहीं है। कभी-कभी एक दृष्टि या मुस्कान प्राणिक नहीं चैत्य सुंदरता व्यक्त करती है।

कुछ फूलों में चैत्य सुंदरता होती है। उदाहरण के लिये चमेली बहुत चैत्य फूल है।

शिष्य—फूलों में सुंदरता तो होती है पर मेरे लिये यह नयी बात है कि फूलों में चैत्य सुंदरता होती है।

श्रीअरविंद—हां, यह फूल की अंतरात्मा की सुंदरता है।

शिष्य—फूल की अंतरात्मा !

श्रीअरविंद—मैं जानता था कि इससे तुम चौंक पड़ोगे। तुम्हारा ख्याल है कि फूलों में आत्मा नहीं होती ? मनुष्य का अज्ञान ही उसे यह विचार देता है कि वह सृष्टि में सबसे ऊंचा है। बहुत-से कुत्तों में बहुत-से मनुष्यों की अपेक्षा अधिक सुंदर चैत्य होता है।

शिष्य—तब फिर मनुष्य को सृष्टि में सबसे ऊंचा क्यों माना जाता है ?

श्रीअरविंद—मनुष्य का अहंकारात्मक अज्ञान ही उसे यह सोचने की प्रेरणा देता है। वह ऊंचा है क्योंकि उसमें दिव्य जीवन विकसित करने की संभावना है। तुम यह भी कह सकते हो कि वह ऊंचा है क्योंकि उसमें मन विकसित हुआ है और मन उसे सचेतन विकास का अवसर देता है। लेकिन इसका यह जरूरी निष्कर्ष नहीं है कि चूंकि मनुष्य मानसिक प्राणी है अतः उसने अपने मन का उपयोग विकास के लिये किया है। चूंकि मनुष्य में मन है ठीक इसीलिये उसके अंदर दानवी होने की भी अनंत क्षमता है। वह अपने दानव की सहायता के लिये मन को प्रस्तुत कर देता है। स्वयं दानव इतना बुरा नहीं हो सकता जितना वह मनुष्य जो अपने मन को इस प्राणिक सत्ता की सेवा में लगा देता है।

शिष्य—अनंत संभावनाएं ! दैवी और दानवी दोनों !!

श्रीअरविंद—मनुष्य के अंदर अहंकारमय अज्ञान उसे यह भाव देता है कि वह सृष्टि में सबसे ऊंचा है।

शिष्य—लेकिन मनुष्य के शरीर और पशु के शरीर में कितना अधिक फर्क है।

श्रीअरविंद—बस इतना ही। और वह भी इतना अधिक नहीं है जितना तुम मान लेते हो।

आखिर पशु के शरीर और मनुष्य के शरीर में क्या फर्क है। अगर सावधानी से देखो तो तुमने पूंछ को छोड़ दिया है और चार पैर पर चलने की जगह दो पर चलते हो और दो को हाथ बना दिया है। मस्तिष्क में कुछ थोड़े-से परंतु बहुत महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं और इधर-उधर ब्यौरों में कुछ हेर-फेर। तुमने अपने लोम और सींग को उतार फेंका है।

शिष्य—सभी मनुष्यों ने नहीं। 'क' में प्रचुर लोम हैं। (हंसी)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीअरविंद—हां, देखो ये भौतिक में इतने बड़े परिवर्तन नहीं हैं जो मनुष्य और पशु के बीच खाई खड़ी कर दें।

बेवकूफी, यह सारी आदमी की बेवकूफी है! मनुष्य इसलिये बड़ा है क्योंकि वह किसी उच्चतर की ओर खुल सकता है और सचेतन रूप से मन के परे जा सकता है और पृथ्वी पर दिव्य जीवन जी सकता है।

शिष्य—अभी आपने कहा कि चमेली चैत्य फूल है—यह आकार-प्रकार में, रंग में या सुगंध में चैत्य है?

श्रीअरविंद—नहीं, मेरा यह मतलब बिल्कुल नहीं था कि फूलों की चैत्य सुंदरता इन बाहरी चीजों में है, उनकी इस सुंदरता के विचार को मन को समझाना बहुत कठिन है।

शिष्य—और गुलाब कैसा है?

श्रीअरविंद—गुलाब प्रबल रूप से प्राणिक है। वहां उसके रूप में आंतरिक आत्मा खो गयी है।

शिष्य—और कमल?

श्रीअरविंद—कमल निश्चय ही प्रतीकात्मक फूल है। वह आंतरिक सत्ता के उच्चतर सत्य की ओर खुलने का प्रतीक है। तुम देख सकते हो कि कमल एक गुह्य फूल है।

शिष्य—क्या आप भारतीय चित्रकला में कुछ ऐसे चित्रों को याद कर सकते हैं जिनमें चैत्य सुंदरता हो?

श्रीअरविंद—अभी तो मुझे याद नहीं है पर मैंने ऐसे कुछ चित्र देखे जरूर हैं, बहुत नहीं।

तुमने नंदलाल बसु का चित्र 'पथहारा' (गायका) देखा है?

शिष्य—जी हां।

श्रीअरविंद—उसमें कुछ चैत्य स्पर्श है, एक और चित्र अवनींद्रनाथ का था। लेकिन साधारणतः अवनींद्रनाथ की प्रेरणा प्राण से आती है।

शिष्य—क्या उसका मानसिक सुंदरता से कोई संबंध नहीं होता?

श्रीअरविंद—नहीं। इसीलिये जबतक तुम अपनी अंतरात्मा से अनुभव न कर लो यह कहना मुश्किल है कि यह चैत्य सौंदर्य है। उदाहरण के लिये तुम किसी पुस्तक में एक प्रसंग पढ़ते हो और कह उठते हो, ''आह, क्या सुंदर है!'' यह मानसिक सुंदरता होगी चैत्य नहीं। किसी मनुष्य के चेहरे पर बुद्धिमत्ता की चमक दीख सकती है लेकिन वह बुद्धिमत्ता के कारण होगी, चैत्य के कारण नहीं।

शिष्य—क्या जिस व्यक्ति में चैत्य सत्ता विकसित न हुई हो वह चैत्य सुंदरता को सराह सकता है?

श्रीअरविंद—तुम्हारा मतलब क्या है? हर एक में चैत्य सत्ता होती है।

शिष्य—लेकिन अगर चैत्य सत्ता मजबूत न हो?

श्रीअरविंद—हो सकता है कि चैत्य इतना मजबूत न हो कि वह मानसिक और प्राणिक सत्ता पर अपनी छाप डाल सके फिर भी उसमें चैत्य भाव हो। ऐसे लोग हैं जिनमें ये चैत्य भाव उनके जीवन पर प्रभाव डालते हैं।

शिष्य—सौंदर्य की चीजें मनुष्य के आध्यात्मिक विकास को कैसे प्रभावित करती हैं?

श्रीअरविंद—यह इसपर निर्भर है कि आध्यात्मिक विकास से तुम्हारा क्या मतलब है, वह मनुष्य के विकास में उसी तरह सहायक है जैसे हर चीज सहायक होती है। सौंदर्य-बोध को बढ़ाने से स्वभाव परिष्कृत होता है। परिष्कृत स्वभाव की शुद्धि अपरिष्कृत की शुद्धि से बहुत ज्यादा आसान होती है। महात्मा गांधी इस चीज को नहीं समझ पाये कि सौंदर्य-बोध का विकास पूर्णता का उतना ही अंग है जितना कोई और। केवल इतना ही नहीं, अगर आदमी में सौंदर्य-बोध विकसित नहीं हुआ है तो वह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परम पुरुष की ओर जाने का वह मार्ग न पा सकेगा जो सौंदर्य से होकर जाता है।

शिष्य—आपने कुछ समय पहले कहा था कि अतिमानव हमेशा अठारह वर्ष का युवक लगेगा।

श्रीअरविंद—क्या मैंने ऐसा कहा था? मैं तो यह कहना चाहूंगा कि उसकी कोई उम्र न मालूम होगी—यानी उसके शरीर पर उम्र की कोई छाप न होगी।

(पुराणीकृत श्रीअरविंद की 'ईवनिंग टॉक्स' से)

'कुछ माताजी के बारे में' :

ध्यान

क्या ध्यान करने के लिये अधिकाधिक प्रयत्न करने की आवश्यकता नहीं है? क्या यह सच नहीं है कि जितनी अधिक देरतक कोई ध्यान करता है उतनी अधिक प्रगति होती है?

ध्यान में बिताये गये घंटे आध्यात्मिक प्रगति का प्रमाण नहीं हैं। आध्यात्मिक प्रगति का प्रमाण तो तब होगा जब यह अवस्था आ जाये कि ध्यान करने के लिये तुम्हें किसी प्रकार का प्रयास ही न करना पड़े, ध्यान को रोकने के लिये भले ही प्रयास की आवश्यकता हो। तब ऐसी अवस्था हो जाती है कि ध्यान को रोकना कठिन हो जाता है। भगवान् के चिंतन को रोकना, साधारण चेतना में नीचे उतरना कठिन हो जाता है। जब भगवान् में एकाग्रता तुम्हारे जीवन की परम आवश्यकता बन जाये, जब तुम उसके बिना रह ही न सको, तुम चाहे किसी काम में क्यों न लगे रहो, जब यह अवस्था स्वाभाविक रूप से रात-दिन बनी रहे—तब समझना चाहिये कि निश्चित रूप से तुम्हारी प्रगति हुई है, तुमने वास्तविक उन्नति की है। चाहे तुम ध्यान लगाकर बैठो, या घूमो-फिरो और काम-काज करो, जिस बात की तुमसे अपेक्षा की जाती है वह है चेतना। यही एकमात्र आवश्यकता है—भगवान् के बारे में सदा सचेतन रहना।

परंतु क्या ध्यान में बैठना अनिवार्य संयम नहीं है और क्या इससे भगवान् के साथ अधिक प्रगाढ़ और केंद्रित एकता नहीं आती?

हो सकता है। परंतु हमें कोरा संयम अभीष्ट नहीं है। हम चाहते हैं कि प्रत्येक कर्म करते समय, प्रत्येक क्षण, हमारी समस्त क्रियाओं और प्रत्येक गति में, हमारी चेतना भगवान् में केंद्रित रहे। यहां कुछ साधक ऐसे हैं जिनसे ध्यान करने को कहा गया है, किंतु ऐसे साधक भी हैं जिन्हें किसी प्रकार का ध्यान करने को नहीं कहा गया। परंतु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि ध्यान न करनेवालों की प्रगति नहीं हो रही है। वे भी एक साधना करते हैं, किंतु वह दूसरे प्रकार की साधना है। भक्ति और आत्मोत्सर्ग के भाव के साथ कर्म करना, कार्य करना आध्यात्मिक साधना है। अंतिम उद्देश्य यह है कि केवल ध्यान में ही नहीं, बल्कि प्रत्येक अवस्था में, जीवन की प्रत्येक क्रिया में भगवान् के साथ सतत एकता का अनुभव किया जाये।

कुछ लोग ऐसे हैं जो ध्यान में बैठते हैं तो एक ऐसी अवस्था में चले जाते हैं जिसे वे बहुत ही सुंदर और आनंदमय समझते हैं। वे इस अवस्था में आत्म-संतोषपूर्वक बैठे रहते हैं और जगत् को भूल जाते हैं; किंतु यदि उनके ध्यान में कोई बाधा पहुंचे तो वे उस अवस्था में से क्षुब्ध और क्रुद्ध होकर निकलते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं, क्योंकि उनके ध्यान में बाधा पड़ी। यह किसी आध्यात्मिक प्रगति या साधना का लक्षण नहीं है। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो ऐसा आचरण करते हैं मानों उन्हें लगता हो कि ध्यान कर्जा चुकाने के लिये है। ये उन लोगों की तरह हैं जो सप्ताह में एक बार गिरजाघर हो आते हैं और समझते हैं कि उन्होंने भगवान् का सारा पावना चुका दिया।

यदि तुम्हें ध्यान करने के लिये प्रयत्न करना पड़ता है तो अभी तुम आध्यात्मिक जीवन जी सकने की अवस्था से बहुत दूर हो। जब ध्यानावस्था से बाहर निकलने के लिये प्रयत्न करने की आवश्यकता हो तब तुम्हारा ध्यान इस बात का संकेत हो सकेगा कि तुम आध्यात्मिक जीवन जी रहे हो। हठयोग और राजयोग जैसी कुछ ऐसी साधनाएं भी हैं जिनका अभ्यास करते हुए भी, हो सकता है कि साधक का आध्यात्मिक जीवन से कोई संबंध न हो। अधिकतर हठयोग द्वारा शरीर पर और राजयोग द्वारा मन पर संयम हो जाता है। परंतु आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करने का अर्थ है भगवान् में गोता लगाना, ठीक उसी तरह जैसे कोई समुद्र में कूद पड़े। और यह भी केवल आरंभ है, अंत नहीं। क्योंकि गोता लगाने के बाद तुम्हें भगवान् में निवास करना सीखना होगा। इसका क्या उपाय है? तुम्हें सीधे कूद पड़ना चाहिये, यह सोचे बिना कि "मैं कहां गिरूंगा, मेरी क्या दशा होगी।" तुम्हारे मन की झिझक ही है जो तुम्हें रोकती है। तुम्हें अपने-आपको छोड़ देना चाहिये। यदि तुम समुद्र में गोता लगाना चाहो और साथ-ही-साथ यह सोचते रहो कि कहीं आस-पास कोई पत्थर या चट्टान न हो, तो तुम गोता नहीं लगा सकोगे।

संयोग क्या है?

१४ मई, १९५१

"संयोग महज सुव्यवस्था और सामंजस्य का विपरीत भाव ही हो सकता है। बस, एक ही सच्चा सामंजस्य है और वह अतिमानसिक है—'सत्य' का राज्य, भागवत 'विधान' की अभिव्यक्ति। 'अतिमानस' में, इसलिये, संयोग के लिये कोई स्थान नहीं है। परंतु निम्नतर 'प्रकृति' में, परम 'सत्य' अंधकाराच्छन्न हो जाता है: अतएव वहां उद्देश्य और कर्म की उस दिव्य एकता का अभाव है जिस एकमात्र वस्तु के द्वारा व्यवस्था गठित होती है। इस एकता के अभाव के कारण, निम्नतर 'प्रकृति' का क्षेत्र उस चीज से शासित होता है जिसे हम "संयोग" कहते हैं, कहने का तात्पर्य, यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें विभिन्न विरोधी शक्तियां परस्पर मिलती-जुलती हैं और उनका कोई एक निश्चित लक्ष्य नहीं होता . . .।"

—'श्रीमातृवाणी' (तृतीय खंड)

यदि संयोग निम्नतर जगतों में अव्यवस्था की अभिव्यक्ति है, तो भी "सुखद" संयोग भी तो हैं जो आवश्यक रूप से अव्यवस्था की अभिव्यक्ति नहीं हैं, क्या नहीं हैं?

सुखद किसके लिये? कारण, सामान्यतया इस जगत् में जैसा कि हम इसे देखते हैं, जो कुछ एक के लिये सुखद है वह दूसरे के लिये दुःखद है; जो कुछ एक प्रसंग में सुखद है वह दूसरे में दुःखद है, और वह भी अव्यवस्था की एक अभिव्यक्ति है। मैं यह नहीं कहती कि संयोगवश घटित घटना ही तुम्हें आवश्यक रूप से दुःखी बनाती है, मैं कहती हूं कि सत्यों की व्यवस्था के साथ वह संगत नहीं है जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत भिन्न बात है। मनुष्य अव्यवस्था के बीच भी बहुत सुखी रह सकता है! ऐसे बहुत-से लोग हैं जो अपनी अव्यवस्था से पूर्णतः संतुष्ट हैं और उसे बदलना वे पसंद नहीं करेंगे।

कोई सुखद संयोग ऐसी परिस्थितियों के मेल से भी तो आ सकता है जो किसी को हानि नहीं पहुंचातीं।

हम उन्हें किसी व्यक्ति या वस्तु को हानि पहुंचाते महज इस कारण नहीं देखते कि हमारे पास पर्याप्त तथ्य नहीं होते। हम परिस्थितियों का विचार नहीं कर सकते, क्योंकि हम संसार को नहीं जानते। हम उसके विषय में भला क्या जानते हैं? हमारी दृष्टि बहुत ही छोटी और बहुत ही सीमित है। जरा सोचो तो, मनुष्य यह कभी नहीं जान सकता कि उसके अधिक-से-अधिक एक सौ बीस वर्ष पहले क्या था, और मैं एक बहुत बड़ी सीमा रख रही हूं, और मैं उसके जीवन के प्रथम वर्षों को भी गिन रही हूं, यद्यपि साधारण तौर पर उसे यह याद नहीं रहता कि उस समय क्या घटित हुआ था। भला मनुष्य इतने थोड़े समय में जगत् के विषय में क्या जानता है? और घटनाओं के परिणामों के विषय में? बिल्कुल कुछ नहीं। और यदि हम यह मान भी लें कि मनुष्य किसी तथाकथित "संयोग" के परिणाम या पूर्वगत परिस्थिति को पूरे अच्छे रूप में याद कर सकता है तो भी वह बिल्कुल एकदेशीय ज्ञान होता है। मनुष्य उस चीज के विषय में क्या जानता है जो विपरीत ध्रुवों पर या पृथ्वी के लाखों-करोड़ों अन्य स्थानों में उसी मुहूर्त्त में होती है? हम उसके विषय में कुछ नहीं जानते। और जैसा कि हम जानते हैं कि जो कुछ होता है वह सब एक साथ जुड़ा हुआ होता है, सभी वस्तुएं घनिष्ठ रूप में, सचेतन रूप में युक्त हैं, एक स्थान में ऐसा कोई प्रकंपन नहीं हो सकता जिसके परिणाम दूसरे स्थान में न उत्पन्न होते हों, तो फिर हम कैसे कह सकते हैं कि हमारा संयोग किसी दूसरे व्यक्ति के लिये हानिकारक है या नहीं, भले ही वह हमारे लिये अनुकूल ही क्यों न हो? मैं समझती हूं कि इस विषय में निर्णय करना असंभव है... इसे कैसे मैं कहूं? वस्तुओं के विषय में सही निर्णय करना असंभव है, क्योंकि हम नहीं जानते कि संसार में क्या हो रहा है। हम संपूर्ण को नहीं जानते, हम शक्तियों की क्रीड़ा के विषय में कुछ भी नहीं जानते। और हम कहते हैं कि संयोग शक्तियों की क्रीड़ा का परिणाम है; केवल, यह दिव्य सामंजस्य की अभिव्यक्ति होने के बदले, यह परस्पर-विरोधी इच्छाओं की अभिव्यक्ति है। ये इच्छाएं अनिवार्य रूप से सब-की-सब बुरी या विरोधिनी नहीं होतीं पर वे सर्वदा ही अज्ञानपूर्ण होती हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी निजी इच्छा पूर्ण करने की कोशिश करता है और विजय सबसे अधिक शक्तिशाली को मिलती है—सबसे अधिक शक्तिशाली ही इस क्षेत्र में सबसे अधिक उत्तम नहीं होता। जब एक चीज संसिद्ध हो गयी है, कितनी दूसरी चीजें भी संसिद्ध हो सकती थीं जो नहीं हुईं, क्योंकि वह संसिद्ध हो गयी थी? और इन सभी चीजों को हम नहीं जानते। हम जो कुछ हैं उसकी तुलना उस चीज से नहीं कर सकते जो हुई होती...। नहीं, मैंने यह कभी नहीं कहा है कि संयोग निश्चित रूप से विरोधी शक्तियों का कार्य होता है, पर यह निःसंदेह अज्ञानपूर्ण शक्तियों का कार्य होता है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से संयोग को बिना कारण होनेवाली कोई चीज अथवा ऐसे कई छोटे-छोटे कारणों का परिणाम माना जाता है जो हस्तक्षेप करते हैं और कम या अधिक एक-दूसरे से स्वतंत्र होते हैं और अव्यवस्था की धारणा उत्पन्न करते हैं। परंतु यह कैसे जाना जाये कि कोई चीज, कोई घटना आदि संयोग के कारण है या नहीं? "संयोग" शब्द एक प्रकार से कहने का एक ढंग है, है न?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परंतु ठीक यही बात मैं कह रही हूं ! मैंने कभी नहीं कहा कि संयोग का कोई कारण नहीं होता। तुम कहते हो कि कोई वस्तु ''संयोग'' के कारण होती है क्योंकि तुम उन सभी कारणों को नहीं समझ सकते जिन्होंने उस वस्तु को उत्पन्न किया है। परंतु जो व्यक्ति दिव्य सत्य के साथ संपर्क स्थापित कर चुका है वह यह भली-भांति जान सकता है कि वह चीज वहांसे आयी या नहीं—बिल्कुल आसानी के साथ।

परंतु जो व्यक्ति कार्यों और कारणों का अनुसरण करता है उसके लिये . . .।

मुझे क्षमा करो, हमने एक परिभाषा दी है, हमने कहा है कि जबतक कोई घटना बिना किसी मिश्रण के अभिव्यक्त भागवत 'संकल्पशक्ति' के हस्तक्षेप का परिणाम नहीं होती, तबतक वह उस वस्तु से संबंधित होती है जिसे हम ''संयोग'' कहते हैं।

तब साधारण जगत् में बहुत-सी वस्तुएं संयोग के कारण होती हैं।

पर निःसंदेह, मैंने अन्य कोई बात नहीं कही है ! साधारण जगत् में सर्वत्र संयोग का राज्य है; अवश्य ही, कभी-कभी, कोई ऐसी चीज हो जाती है जिसका कारण जनता की समझ से बाहर होता है पर उस व्यक्ति के लिये ज्ञेय होता है जो भागवत 'संकल्पशक्ति' के संपर्क में होता है। बस यही चीज संयोग से बचती है—यह चीज बहुत, बहुत बार नहीं होती, इसी कारण यह कहना अत्यधिक खतरनाक नहीं है कि इस जगत् में सभी वस्तुएं संयोग के द्वारा ही होती हैं।

तो फिर हम यहां संयोगवश ही हैं ?

हम कोई साधारण नियम नहीं बना सकते। और न कोई व्यक्तिगत प्रश्न पूछ सकता है। सो, हम अस्पष्ट रूप में यह कहेंगे कि कुछ लोगों के लिये यह एक सांयोगिक घटना है, पर दूसरों के लिये यह एक भागवत इच्छा है।

साधारण जगत् में भी वास्तव में केवल संयोग ही कार्य नहीं करता। इस प्रकार, गर्म वायु के परमाणुओं के लिये दो गतियां हैं जो अध्यारोपित प्रतीत होती हैं : एक तो है अव्यवस्थित गति और एक है संयुक्त गति। इसलिये संभवतः हम कह सकते हैं कि साधारण जगत् की घटनाएं इन दोनों गतियों का मिश्रण होती हैं : अव्यवस्थित गति और सम्मिलित गति जिसका एक निश्चित लक्ष्य होता है ?

यह सब तुमने स्वयं अपने-आप जाना है !

(श्रीमातृवाणी खंड, ४ से)

—*—

जो कार्य आज नहीं हो पा रहा, वह कुछ समय बाद अवश्य होगा। प्रगति के लिये किया गया कोई भी प्रयास व्यर्थ नहीं हुआ है।

—श्रीमां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोजन में संतुलन

''क्या बहुत कम आहार लेना इन्द्रियों को नियंत्रित करने में सहायता देता है ?

नहीं, वह उनको केवल भड़का देता है—मिताहार सबसे अच्छा है। जो लोग उपवास करते हैं वे आसानी से बहुत उत्तेजित हो जाते हैं और संतुलन खो सकते हैं।

अगर व्यक्ति केवल निरामिष आहार ले तो क्या इससे इन्द्रियों के संयम में सहायता मिल सकती है ?

इससे तुम मांस खानेवालों की कुछ कठिनाइयों से बच सकते हो, लेकिन अपने-आपमें यह पर्याप्त नहीं है।''

कोई प्रश्न ?

अगर व्यक्ति मांस खाये तो क्या होता है ?

क्या तुम चाहते हो कि मैं तुम्हें एक कहानी सुनाऊं ? मैं एक महिला को, स्वीडन की एक युवती को जानती थी जो साधना करती थी। वह आदत और पसंद, दोनों के अनुसार निरामिषभोजी थी। एक दिन उसे कुछ मित्रों ने निमंत्रण दिया और भोजन में चूजा परोसा गया। वह बात का बतंगड़ न बनाना चाहती थी, उसने चुपचाप चूजा खा लिया। लेकिन बाद में, रात के समय अचानक उसने अपने-आपको एक टोकरी में पाया, उसका सिर तीलियों के बीच अटक गया था और उसे बहुत जोर से झकझोरा, झकझोरा, झकझोरा जा रहा था। सचमुच उसकी अवस्था दयनीय और दुःखदायक थी। फिर उसने अपने-आपको सिर नीचे और पैर हवा में पाया, और उसे झकझोरा, झकझोरा, झकझोरा जा रहा था। (हंसी) वह बड़ी दयनीय दशा में थी। फिर अचानक किसीने उसके शरीर में से कुछ चीजें खींचकर निकालनी शुरू कीं। इससे उसे बहुत अधिक दर्द हो रहा था; कुछ देर बाद हाथ में चक्कू लिये कोई आया और उसकी गर्दन काट दी; और फिर वह जाग पड़ी। खुद उसने मुझे यह सब सुनाया था। उसने कहा कि इतना भयावह दुःस्वप्न उसने कभी नहीं देखा था। सोने से पहले उसने कुछ नहीं सोचा था। उस बेचारे चूजे की चेतना उसमें पैठ गयी थी और उसने स्वप्न में जो कुछ अनुभव किया था वह वही पीड़ा थी जो चूजे ने अनुभव की थी जब उसे बाजार ले जाया गया, बेचा गया, उसके पंख निकाले गये और उसकी गर्दन काटी गयी ! (हंसी)

यही होता है ! यानी, कम या अधिक मात्रा में तुम मांस के साथ उस पशु की थोड़ी-बहुत चेतना भी निगल जाते हो जिसे तुम खाते हो। यह बहुत गंभीर बात नहीं है, लेकिन यह हमेशा बहुत सुखद नहीं होती। और यह स्पष्ट है कि पशु से ज्यादा मनुष्य की तरफ होने में यह तुम्हारी बहुत सहायता नहीं करती ! यह सुस्पष्ट है कि आदिम मानव, जो आत्मा की अपेक्षा पशु के ज्यादा नजदीक थे, ऐसा लगता है कि वे कच्चा मांस खाते थे जो पके मांस की अपेक्षा कहीं अधिक पौष्टिक होता है। वे जानवर को मार डालते थे, उसे फाड़कर टुकड़े-टुकड़े करके खा लेते थे, और वे बहुत शक्तिशाली होते थे। और इसके अलावा, इसी कारण उन दिनों उनकी आंतों में आंत्रपुच्छ का वह टुकड़ा ज्यादा बड़ा होता था जो इस कच्चे मांस को हजम करने में सहायता देता था। उसके बाद आदमी ने पकाना शुरू किया। उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखा कि इस तरह चीजें ज्यादा स्वादिष्ट लगती हैं, और उसने पका मांस खाना शुरू कर दिया और क्रमशः वह आंत्रपुच्छ छोटा होता गया और बेकार हो गया। इसलिये अब तो वह बोझमात्र रह गया है जो कभी-कभी बीमारी पैदा करता है।

कहने का मतलब यह कि अब शायद भोजन बदलकर कुछ कम पाशविक चीज की ओर जाने का समय आ गया है! यह नितांत रूप से प्रत्येक व्यक्ति की चेतना की अवस्था पर निर्भर है। लेकिन साधारण आदमी के लिये, जो साधारण जीवन बिताता हो, जिसके क्रिया-कलाप साधारण हों, जो अपनी रोटी कमाने के बारे में, अपने-आपको स्वस्थ रखने और शायद अपने कुटुंब की देखभाल करने के सिवाय और किसी चीज के बारे में न सोचता हो, उसके लिये मांस खाना अच्छा है, उसके लिये कुछ भी खा लेना ठीक है, जो कुछ उसके अनुकूल हो, जिस चीज से उसे लाभ होता हो।

लेकिन यदि कोई व्यक्ति इस साधारण जीवन से उच्चतर जीवन में जाना चाहता हो तो समस्या मजेदार बनने लगती है; और यदि, उच्चतर जीवनतक पहुंचने के पश्चात् वह अपने-आपको रूपांतर के लिये तैयार करने की कोशिश करे तो वह बहुत महत्त्वपूर्ण बन जाती है। क्योंकि ऐसे आहार अवश्य हैं जो शरीर को सूक्ष्म बनने में मदद कर सकते हैं और ऐसे भी हैं जो उसे पशुता की अवस्था में ही रखते हैं। लेकिन यह चीज केवल उसी विशिष्ट समय पर बहुत महत्त्वपूर्ण बनती है, उससे पहले नहीं; और उस क्षणतक पहुंचने से पहले और बहुत चीजें करनी हैं। निश्चय ही अपने शरीर को शुद्ध बनाने की सोचने से पहले अपने मन को शुद्ध करना और अपने प्राण को शुद्ध करना अधिक अच्छा है। क्योंकि तुम चाहे शारीरिक दृष्टि से इस बात की पूरी-पूरी सावधानी बरतो कि किसी ऐसी चीज को आत्मसात् न किया जाये जो शरीर को सूक्ष्म बनाने में सहायता न देती हो, फिर भी अगर तुम्हारा मन और प्राण कामना, निश्चेतना, अंधकार और काम इत्यादि की अवस्था में ही रहे तो इससे कोई लाभ न होगा। केवल होगा यह कि तुम्हारा शरीर दुर्बल बन जायेगा, आंतरिक जीवन से बिल्कुल विच्छिन्न, और एक दिन बीमार पड़ जायेगा।

तुम्हें शुरू करना चाहिये अंदर से। मैं तुम्हें पहले भी एक बार बता चुकी हूं। तुम्हें ऊपर से शुरू करना चाहिये। सबसे पहले उच्चतर को शुद्ध बनाओ, और फिर निचले को शुद्ध करो। मैं यह नहीं कह रही कि तुम्हें शरीर की सब तुच्छ चीजों में डूबे रहना चाहिये। नहीं, मैं तुमसे यह नहीं कह रही। यह मत समझ बैठो कि यह कामनाओं पर नियंत्रण न रखने की एक सलाह है! नहीं, बात ऐसी बिल्कुल नहीं है। मेरे कहने का मतलब यह है कि अगर तुम अपने मन और प्राण में पहले से ही छोटे-से देवदूत नहीं हो तो शरीर में देवदूत बनने की कोशिश मत करो; क्योंकि इससे शरीर साधारण ढंग से अलग, और ही ढंग से अस्तव्यस्त हो जायेगा। लेकिन यह अधिक अच्छे ढंग का न होगा। हमने उस दिन कहा था न, कि सबसे महत्त्वपूर्ण चीज है संतुलन को बनाये रखना। अच्छा, तो संतुलन को बनाये रखने के लिये यह जरूरी है कि हर चीज साथ-साथ प्रगति करे। तुम्हें अपनी सत्ता के एक अंश को अंधकार में छोड़कर दूसरे को प्रकाश में लाने की कोशिश नहीं करनी चाहिये। तुम्हें इस बात के लिये बहुत सावधानी बरतनी चाहिये कि कोई कोना अंधकार में न रह जाये। तो, बस।

—श्रीमातृवाणी, खंड ६ से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मनिवेदन और समर्पण

२० मई, १९५३

आपने कहा है : "जिनमें निकल भागने का संकल्प है, वे भी, जब वे ऊपर, दूसरी दिशा में पहुंच जाते हैं तो उन्हें पता चल सकता है कि यह भागना, आखिर बहुत लाभदायक नहीं हुआ।"

प्रश्न और उत्तर १९२९ (२८ अप्रैल)

"दूसरी दिशा" से आपका क्या मतलब है ?

हमारा मतलब होता है परदे के उस पार, अस्तित्व का दूसरा पार्श्व। यह भौतिक में न रहकर, उदाहरण के लिये, प्राण में रहना या प्राण के सचेतन भाग में रहना है। व्यक्ति दो पार्श्वों के बारे में सचेतन हो जाता है इसलिये जानता है कि क्या हो रहा है। ऐसे लोग हैं जो दोनों के विभेद का अनुभव प्राप्त करने के लिये विधिवत् शरीर से बाहर जाते हैं। लेकिन इसके लिये, तुम्हें मालूम होना चाहिये कि यह कैसे किया जाता है। और इसे एकदम अकेले नहीं करना चाहिये। वहां कोई आदमी शरीर की देखभाल और निगरानी के लिये होना चाहिये।

क्या भगवान् के प्रति आत्म-निवेदन और समर्पण एक ही चीज हैं?

ये एक ही चीज के दो पहलू हैं। लेकिन बिल्कुल एक नहीं हैं। एक दूसरे से ज्यादा सक्रिय है। वे सत्ता के एक ही स्तर की चीजें नहीं हैं।

उदाहरण के लिये, तुमने अपना जीवन भगवान् को निवेदित करने का निश्चय कर लिया। लेकिन अचानक तुम्हारे साथ कोई बहुत ही अप्रिय, अप्रत्याशित घटना होती है और तुम्हारी पहली क्रिया होती है प्रतिक्रिया की, विरोध की, फिर भी तुमने अर्पण तो किया ही है, तुमने एक बार में ही कह दिया है : "मेरा जीवन भगवान् का है।" और अचानक कोई बहुत ही अप्रिय घटना होती है (ऐसा हो सकता है), और तुम्हारे अंदर कोई चीज है जो प्रतिक्रिया करती है, जो उसे नहीं चाहती। लेकिन यहां, अगर तुम अपने निवेदन में युक्तिसंगत होना चाहो तो तुम्हें इस अप्रिय घटना को सामने लाकर भगवान् के आगे निवेदित कर देना चाहिये और बहुत निष्कपट भाव से उनसे कहना चाहिये : "भगवान्, तुम्हारी इच्छा पूरी हो। अगर तुमने इस तरह किया है तो यह इसी तरह होगा।" और यह एक स्वेच्छापूर्वक किया गया सहज लगाव होना चाहिये। और यह बहुत कठिन है।

छोटी-से-छोटी चीज के लिये भी, जो चीज उससे मेल नहीं खाती जिसकी तुमने आशा की थी, जिसके लिये तुमने काम किया है, एक विरोधी प्रतिक्रिया होने की जगह, तुम सहज भाव से, अप्रतिरोध्य रूप से पीछे हटते हो : "नहीं, नहीं, यह नहीं"—,अगर तुमने पूर्ण समर्पण किया है, तो यह नहीं हो सकता, तुम एक अवस्था में भी उतने ही अचंचल, शांत, स्थिर बने रहो जितनी दूसरी अवस्था में। शायद तुम्हारा ख्याल था कि चीज अगर एक तरह से हो तो ज्यादा अच्छा होगा, लेकिन अगर वह दूसरी तरह से हो तो तुम्हें वह भी ठीक लगता है। उदाहरण के लिये, तुमने किसी चीज के लिये बहुत मेहनत की होगी ताकि अमुक परिणाम आये, तुमने बहुत समय लगाया होगा, बहुत शक्ति, बहुत इच्छा-शक्ति लगायी होगी—और यह सब अपने लिये नहीं, बल्कि मान लो, भगवान् के लिये (यह आत्म-निवेदन है); अब मान लो कि इतना कष्ट उठाने के बाद, इतना काम करने के बाद, इतने प्रयास

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बाद, सारी चीज उल्टी दिशा में चली जाये, सफलता न मिले। अगर तुम सचमुच समर्पित हो तो तुम कहते हो : "यह अच्छा है, यह सब अच्छा है, यह बिल्कुल ठीक है। मैं जो कुछ कर सकता था कर चुका, जितना अच्छा कर सकता था किया। अब यह मेरा निर्णय नहीं है, यह भगवान् का निर्णय है, वे जो कुछ निर्णय करें वह मुझे पूरी तरह स्वीकार है।" दूसरी ओर अगर तुम्हारे अंदर यह गहरा और सहज समर्पण नहीं है तो तुम अपने-आपसे कहते हो : "यह कैसे ! मैंने यह करने के लिये इतना कष्ट उठाया, यह मेरे स्वार्थ के लिये नहीं भगवान् के काम के लिये है—और परिणाम यह आया। यह असफल रहा।" सौ में से निन्यानवे बार यही होता है।

सच्चा समर्पण बहुत कठिन चीज है।

क्या आत्म-समर्पण के लिये व्यक्ति को वह काम जारी रखना चाहिये जो उसे करना चाहिये?

जो करना चाहिये उसे जारी रखना चाहिये, जो तुम्हें स्पष्ट रूप से कर्तव्य कर्म के रूप में दिखाया गया है उसे करना ही चाहिये—चाहे सफलता मिले या न मिले, चाहे परिणाम वैसा हो जैसा तुम सोचते हो और जिसकी आशा करते हो या वैसा न हो—उसका कोई महत्त्व नहीं—तुम काम जारी रखते हो।

लेकिन जब हम कोशिश करते हैं, तब बिना जाने हम जो भूलें करते हैं उन्हें कैसे जाना जाये?

अगर तुम पूरी तरह सच्चे हो तो तुम जान जाते हो। अपनी भूल को न जानना कहीं-न-कहीं कपट के होने का चिह्न है। और प्रायः वह प्राण में छिपा रहता है। जब प्राण सहयोग देना स्वीकार कर लेता है (जो अपने-आपमें एक बड़ा कदम है), जब वह निश्चय कर लेता है कि वह काम करेगा, अपना सारा प्रयास, अपनी सारी ऊर्जा काम सिद्ध करने में लगा देगा, तब भी कहीं नीचे अच्छी तरह छिपी हुई एक प्रकार की—उसे क्या कहें?—एक प्रत्याशा रहती है कि चीजें ठीक ढर्रे पर चलेंगी और परिणाम अनुकूल होगा। और यह चीज पूर्ण निष्कपटता पर परदा डाल देती है। क्योंकि यह प्रत्याशा एक अहंकारपूर्ण, व्यक्तिगत चीज है जो पूर्ण सच्चाई को छिपा देती है। और तब तुम नहीं जानते।

लेकिन अगर कोई पूरा-पूरा सच्चा हो तो जैसे ही जो कुछ वह कर रहा है वह ठीक वैसा न हो जैसा होना चाहिये तो वह उसे बहुत स्पष्ट रूप से अनुभव करता है—उग्र रूप में नहीं, स्पष्ट रूप से, बहुत यथार्थ रूप से : "नहीं, नहीं, यह नहीं।" और तब यदि व्यक्ति में कोई आसक्ति नहीं है तो व्यक्ति काम को उस तरह करना एकदम बंद कर देता है।

लेकिन व्यक्ति में निष्काम कर्म के लिये भी आसक्ति होती है। तुम्हें यह समझ लेना चाहिये। तुमने अपना जीवन किसी ऐसे काम के लिये दे दिया है जो अहंकारमय नहीं है, फिर भी अहं तो है ही। और काम करने का तुम्हारा एक विशेष और व्यक्तिगत तरीका है, और तुम्हारे अंदर एक आशा है (हम कामना की बात नहीं करते) कि परिणाम ऐसा होगा, कि तुम्हें यह मिलेगा और यह हो जायेगा। उस काम के लिये भी जो तुम्हारे अपने लिये नहीं है, जिसे तुमने अपने हाथ में लिया है, तुम प्रत्याशा करते हो कि उसमें सफलता मिलेगी, कि तुम्हें—व्यक्तिगत रूप में नहीं—सफलता मिलेगी। जो काम तुम कर रहे हो, जिस लिये कर रहे हो उसमें सफलता मिलेगी। हां, यह उस तरह की किसी चीज का जरा-सा टुकड़ा ले आती है, बिल्कुल नीचे, बिल्कुल छिपी हुई, जरा-सी चीज जो जरा . . . बिल्कुल सीधी नहीं है, जरा टेढ़ी, ऐंठी हुई है। और तब तुम नहीं जानते। लेकिन अगर वह न होती तो जैसे ही तुम जो करना चाहिये वह करने से चूकते हो तो तुम्हें पता लग जायेगा। तुम उसे ठीक-ठीक पूरे यथार्थ रूप

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में जान लोगे। यह एक बहुत ही सूक्ष्म गति है, एक मिलीमीटर के हजारवें भाग जैसी। हां, वह है, और यह काफी है। तुम जानते हो : "मेरी भूल थी।" तुम्हारे अंदर वह परम निष्कपटता होनी चाहिये जो यथार्थ रूप में, किसी कीमत पर भी भूल नहीं होने देना चाहती, जो कुछ भी कर सकती है, किसी भी चीज को त्याग सकती है। किसी प्रकार के भ्रम में रहने की अपेक्षा हर चीज को त्याग सकती है। परंतु यह बहुत कठिन है, इसमें बहुत समय और बहुत श्रम लगता है। जब तुम कुछ चीज करते हो तो वे दो, मन और प्राण, हमेशा मौजूद होते हैं और तुम जो कर रहे हो उससे कुछ लाभ उठाना चाहते हैं, आत्म-संतोष का लाभ, सुख का लाभ, अपने बारे में अच्छी राय का लाभ। अपने-आपको धोखा न देना मुश्किल है।

—श्रीमातृवाणी, खंड ५ से

"गैर्वाणी" :

अतिथिः

अस्मिन् मासे उपस्थिताहं 'रीडर्स डाइजेस्ट' इति पत्रिकायां पठितया कथया सह।

आकृत्या ग्राम्यः इव सः जनः प्रतिमध्याह्नं गिरिजालयम् आगत्य पलद्वयं स्थित्वा प्रतिगच्छति स्म। तस्य ईदृशीं चर्यां दृष्ट्वा ईशालयस्य प्रतिपालकः ईषत् शङ्काकुलः जातः, "कोऽयं, किमर्थं च पलमेकमेव स्थित्वा गच्छति ? मया सावधानं स्थातव्यं . . ." इति विचिन्त्य सः अपि नियमितं द्वादशवादने तत्रैव भवति स्म।

दिनानां, सप्ताहानां का कथा, मासाः व्यतीताः, तस्य जनस्य दिनचर्यायां ईषदपि परिवर्तनं न वीक्ष्य प्रतिपालकः अन्ततः एकदा तमेवपृच्छत्—"महोदय, किमर्थं आगच्छति भवान् प्रतिदिनं सर्वथा मध्याह्ने द्वादशवादने अत्र ?"

"प्रार्थयितुम्" साश्चर्यं सः उदतरत्।

"अहो ! परिहासं मुञ्चतु, पलद्वयेन किं कथं च कोऽपि प्रार्थयितुं शक्नुयात् !! सत्यं वदतु किम् . . ." इति कथयन् सः विरतः।

सः जनः बालवत् स्मित्वा अकथयत्—सत्यं वदसि मित्र ! अहं दीर्घप्रार्थना कर्तुं नैव जानामि, प्रतिदिनं नेत्रे निमील्य कथयामि, "यीशो ! एषः आगतः जिम्" एतावदेव। अस्यां लघुप्रार्थनायां त्वमेव कथय कियान् समयः गच्छेत् ? यद्यपि अस्ति मे प्रार्थना लघुः किन्तु मे दृढविश्वासः वर्तते यत् मदीया प्रार्थना यीशुं प्रति निस्सन्देहं गच्छति।

प्रतिपालकः निरुत्तरः जातः। अस्मिन् क्रमे न किमपि परिवर्तनं जातम्। एकस्मिन् दिने ईशालयम् आगच्छतः तस्य दुर्घटना जाता। अस्थिभङ्गेन 'जिम्' चिकित्सालयमानीतः। दुर्भाग्येन तस्य परितः अन्ये रोगिणः तथा आसन् यथा कश्चित् रात्रिन्दिवं क्रन्दति स्म, अन्यः केवलमन्यैः सह कलहमेव करोति स्म, कश्चित् तृतीयः स्ववेदनायाः कारणात् न स्वयं स्वपिति न च अन्यान् स्वप्तुं ददाति। ईदृशे वातावरणे वराक्यः परिचारिकाः अपि न सोत्साहमागच्छन्। कर्तव्यं कर्म इति बुद्ध्या ताः आगत्य स्वकार्यमकुर्वन्। एतेषु मध्ये 'जिम्' आगतः। किन्तु किं पश्यन्ति परिचारिकाः ! नूतनरोगी स्वयं महावेदनया पीडितः सन् अपि स्वयं हसति अन्यान् च हासयति। एकस्मिन् एव दिने तत् स्थानं रूपान्तरितम्। यतः दुःखस्य तरङ्गाः अहर्निशं प्रसरन्ति स्म ततः हासस्य उत्साः उद्भवन्ति। आश्चर्यचकिताः परिचारिकाः न कथमपि विश्वसितुम् अशक्नवन् यत् एतत् तदेव स्थानं यतः समीपादपि गन्तुं कस्यापि कदापि उत्साहं न भवति स्म।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभ्यन्तरे प्रविश्य सा किं पश्यति ? सर्वदा अव्यवस्थितः कक्षः स्वच्छः, सुन्दरः च दृश्यते। क्रोधस्य, विषण्णतायाः, दुःखस्य अप्रीतिकर-प्रतिच्छायाः हासस्य मधुरातपेन विलीनाः। प्रसन्नतया सा अवदत्—किं प्रचलति अद्यत्वे अत्र ? कथं प्रत्येकं एव अभिनवः, प्रसन्नः च दृश्यते ?

तस्याः वचनं श्रुत्वा कश्चित् रोगी अवदत्—अहो ! वयमपि न बोधामः किन्तु अस्ति एषः कश्चित् सङ्क्रामकः रोगः येन आक्रान्ताः वयं सर्वे। एषः 'जिम्' एव अस्ति अस्य मूलम्। स्वयं तथा पीडाक्रान्तः किन्तु चिन्तामुक्तः एषः न कदापि दुःखितः तिष्ठति, अन्यान् क्रन्दनपरान् च हासयति।

परिचारिका मन्दं मन्दं नूतनरोगिणः खट्वायाः समीपमागता, स्वर्णाभ-केशः देवदूतः इव 'जिम्' तां दृष्ट्वा विहसितः।

परिचारिका अदगत्—'जिम्'! एते सर्वे कथयन्ति यत् त्वया अस्य कक्षस्य रूपान्तरं कृतम्। कथं त्वया एतत् स्थानं स्वर्गः कृतः ? एते कथयन्ति यत् त्वया एव हासस्य एषः सङ्क्रामकः रोगः सर्वेभ्यः दत्तः।

'जिम्' सुमन्दम् अवदत्—अहं प्रसन्नः तिष्ठामि यतो हि मम सकाशे आगच्छन् अतिथिः मह्यं प्रसन्नतां ददाति।

'अतिथिः'! परिचारिका साश्चर्यमकथयत्—यतो हि एतावत्सु दिनेषु तया तस्य सकाशे कोऽपि न दृष्टः, सा अवदत्—किन्तु 'जिम्' कदा आगच्छति तव अतिथिः, अतिथीनामर्थे एतत् यत् आसनं वर्तते तत् तु सर्वदा मया शून्यम् एव दृष्टम्।

"अहो! मम अतिथिः प्रतिदिनं नियतम् आगच्छति। सः आसने न उपविशति। प्रतिदिनं मध्याह्नद्वादशवादनस्य घण्टानादेन सह अत्र मे खट्वायाः सम्मुखे स्थित्वा मां केवलम् एतावदेव कथयति—'जिम्, एषः आगतः यीशुः।"

—वन्दना

————

सांसारिक लोग हरि का नाम जपते हैं और भौतिक पुरस्कार की आशा के साथ बहुत-से धार्मिक और परोपकारी काम करते हैं। लेकिन जब दुर्भाग्य, दुःख, गरीबी, मृत्यु उनके ऊपर जा पड़ती है तो वे तुरंत सब कुछ भूल जाते हैं। वे सब उस तोते के समान हैं जो दिन-भर "राधा-कृष्ण", "राधा-कृष्ण" की रट लगाये रहता है। लेकिन जब कोई बिल्ली उसपर झपट पड़ती है तो तुरत भगवान् का नाम भूलकर "टें-टें" करने लगता है।

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक प्रश्न

क्या एक चैत्य पुरुष दो शरीरों में जन्म ले सकता है ?

यह इतना ज्यादा सरल नहीं है . . . । चैत्य पुरुष एक विकासक्रम का परिणाम है, यानी, उस दिव्य चेतना के विकासक्रम का जो जड़-तत्त्व में फैल गयी और धीरे-धीरे उसे उठाने लगी। उसे भगवान्‌तक लौटने के लिये विकसित करने लगी। इस दिव्य केंद्र ने बहुत सारे जन्मों में उत्तरोत्तर इस चैत्य पुरुष की रचना की। एक समय आता है जब वह एक प्रकार की पूर्णतातक जा पहुंचता है, अपनी वृद्धि और रचना की पूर्णतातक। तब बहुधा, चूंकि उसमें उपलब्धि के लिये अभीप्सा होती है, भगवान् को और ज्यादा अच्छी तरह अभिव्यक्त करने के लिये अधिक पूर्णता की अभीप्सा होती है, इसलिये साधारणतः वह अपनी ओर अंतर्लयन की किसी सत्ता को खींच लेता है, अर्थात्, उन सत्ताओं में से किसीको, श्रीअरविंद जिसे अधिमानस कहते हैं, वह सत्ता जन्म लेने के लिये चैत्य पुरुष में आती है। यह उस प्रकार की सत्ताओं में से हो सकती है जिन्हें मनुष्य देव कहते हैं, किसी प्रकार के देवता। और जब यह मेल होता है तो स्वभावतः चैत्य पुरुष बड़ा हो जाता है और अवतरित होनेवाली सत्ता के स्वभाव का भागीदार बनता है और तब उसमें अपने अंदर से निर्गम अंश पैदा करने की शक्ति होती है। इन सत्ताओं में निर्गम अंश तैयार करने की क्षमता होती है, यानी, वे अपने अंदर से अपना एक भाग प्रक्षिप्त कर सकती हैं जो स्वतंत्र होकर दूसरों में जन्म लेने के लिये चला जाता है। तो इस तरह केवल दो नहीं, तीन, चार, पांच निर्गम अंश हो सकते हैं। यह उदाहरणों पर निर्भर है, लेकिन इस तरह हो सकता है। अर्थात् उनका एक ही उद्‌गम हो सकता है। जिसे हम चैत्य-भागवत कह सकते हैं। और साधारणतः जब कई निर्गम अंश हों तो भिन्न-भिन्न व्यक्ति सकारण अपने-आपको वह व्यक्ति मानते हैं क्योंकि उनके अंदर उस देव का कुछ अंश होता है : यह ऐसा होता है मानों किसी के एक भाग ने अपने-आपको स्वयं अपने अंदर से बाहर फेंका है और वह अन्य स्वतंत्र व्यक्ति बन गया है। यह अपने-आपको दोहराना नहीं है, बल्कि एक प्रकार का आत्म-निक्षेप है। (प्रश्न करनेवाली लड़की तारा से) दोहराने में कुछ ऐसा भाव आता है कि जिस चीज को दोहराया गया है उसने अपनी क्षमता का कुछ अंश खो दिया। अगर तुम अपने शरीर को दो भागों में बांट दो तो उसका आधा हिस्सा ही "तुम" रहेगा, लेकिन अगर तुम्हारे अंदर यह क्षमता हो कि तुम अपने में से कुछ निर्गम कर सको तो तुम पूर्ण रहते हो, जैसे हो ठीक वैसे ही, और साथ ही एक और तारा बन जाती है जो एक और व्यक्ति है। आया समझ में ? बात ऐसी है।

(श्रीमातृवाणी, खंड ५ से)

स्फुट वचन

एक सुविख्यात ब्रह्मसमाजी उपदेशक ने कहा कि परमहंस पागल हैं और निरंतर एक ही विषय पर सोचते-सोचते उनका दिमाग बिगड़ गया है। परमहंस ने उपदेशक से कहा : "आप कहते हैं कि यूरोप में भी बुद्धिमान् लोग एक ही विषय पर सोचते रहने के कारण पागल हो जाते हैं। परंतु वह विषय क्या है, जड़ या आत्मा ? इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है कि जड़ के बारे में निरंतर सोचने के कारण आदमी पागल हो जाये ? लेकिन उस बुद्धि का ध्यान धरने से कोई कैसे पागल हो सकता है जिससे सारा विश्व बुद्धिमान् बना है ?"

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनंत सांत के द्वारा सिखाया जाना चाहिये, वास्तविक अवास्तविकता के द्वारा और तात्त्विक प्रतीयमान की सहायता से।

*

शरीर क्षणजीवी और नगण्य है। तो फिर भी क्यों उसकी इतनी देखभाल की जाती है ? कोई खाली डब्बे की परवाह नहीं करता। लेकिन जिस डब्बे में धन या कोई बहुमूल्य संपत्ति है उसे बहुत संभालकर रखा जाता है। जो धार्मिक हैं वे अपने शरीर की देखभाल किये बिना नहीं रह सकते, शरीर जो आत्मा का मंदिर है और जिसमें भगवान् अवतरित हुए हैं या जो भगवान् के आगमन से धन्य हुआ है।

*

जिसका मन भगवान् के लिये तरस रहा है वह खाने-पीने जैसे नगण्य मामलों को महत्त्व नहीं दे सकता।

*

जो देवों का भोजन खाता है, यानी, जो सादा, उत्तेजनारहित, निरामिष भोजन करता है, लेकिन भगवान् को प्राप्त करने की अभीप्सा नहीं करता, उसके लिये वह निरामिष भोजन गो-मांस के समान बुरा है। लेकिन जो गो-मांस खाता है और भगवान् के लिये अभीप्सा करता है उसके लिये गो-मांस उतना ही अच्छा है जितना देवों का भोजन।

*

सच्चा मनुष्य वह है जो धन को अपना दास बनाता है। जिनको धन का उपयोग करना नहीं आता वे मनुष्य कहलाने योग्य नहीं।

*

जो दूसरों के भले-बुरे गुणों के बारे में बहस करते हुए समय बिताता है वह अपना समय बरबाद करता है। क्योंकि वह समय न तो अपने बारे में सोचते हुए कटता है, न परम सत्ता के बारे में, वह दूसरों के बारे में सोचते हुए निकल जाता है।

*

मानवजाति की प्रशंसा या निंदा को कौओं की ''कांव-कांव'' समझकर उसके बारे में उदासीन रहो।

*

साधुओं का सच्चा स्वरूप है सद्‌भावना। लोहा जबतक आग में रहता है तबतक लाल रहता है। आग से हटाते ही काला पड़ जाता है। उसी प्रकार मनुष्य जबतक भगवान् के संपर्क में रहता है तबतक दिव्य बना रहता है।

*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जबतक अहंकार बना रहता है तबतक न ज्ञान संभव होता है, न मुक्ति और न ही जन्म-मरण से छुटकारा।

*

अगर व्यक्ति यह विश्वास प्राप्त कर ले कि सब कुछ भगवान् की इच्छा से ही होता है, कि वह भगवान् के हाथों में एक औजार से बढ़कर कुछ नहीं है, तो इसी जीवन में वह मुक्त हो जाता है।

भविष्य उन लोगों के लिये संभावनाओं से भरा होता है जो अपने-आपको उसके लिये तैयार करना जानते हैं।

—श्रीमां

एस. एन. सण्डरसन एण्ड कम्पनी

१ देशबन्धु गुप्त रोड

नयी दिल्ली-११००५५

उच्च कोटि की बिजली की सामग्रियों के लिए सम्पर्क करें :

आनस्टी इलेक्ट्रिक स्टोर्स

२२, रवीन्द्र सरनी
कलकत्ता—७०००७३
फोन—२७-७९१८

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"Work done in the right spirit is meditation."

— THE MOTHER

With Best Wishes from:

MRS. KOYAL DEORAH CHARITABLE TRUST,

28, VARSHA, 69/B, NEPEANSEA ROAD,

BOMBAY - 400 006

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही वह युगपुरुष थे

जिन्होंने भारत और भारत के लोगों को असीम प्यार दिया और उनसे वैसा ही प्यार पाया।

वह पिछड़ेपन तथा उत्पीड़न के शिकार और मानवीय अधिकारों से वंचित लोगों के लिए मुक्ति के मसीहा थे।

उनका विश्वास था कि कोई भी देश तभी तरक्की कर सकता है जब उसकी महिलाएं आगे बढ़ें। और इसी विश्वास के साथ उन्होंने भारतीय महिलाओं के उत्थान के लिए अनवरत कार्य किया

पंडित जवाहर लाल नेहरू एक असाधारण कर्मयोगी थे। स्वयं भी कार्य में जी-जान से जुट जाते थे तथा औरों से भी यही अपेक्षा रखते थे।

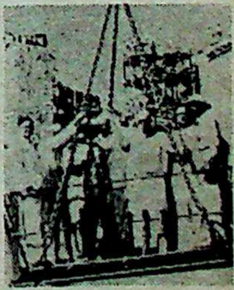

भारत आगे बढ़े, यही उनका ध्येय था

davp 89/739

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Assam Tea Warehousing Corporation
Indian Tea Storage Agency

The most tried & trusted warehouse of
Tea Trade at Gauhati and Calcutta

3-B, Lal Bazar Street
R.N.M. House, 4th Floor
CALCUTTA : 700 001.

Phone: 28-1287 & 28-1290 Gram: INTEASTORE
Tlx No.: 21-7889 DORA IN

Nothing but a radical change of consciousness can save humanity from the terrible plight into which it is plunged.

THE MOTHER

With the Compliments of:

Sri Mahalaxmi Oil Mills

RANIGANJ, Burdwan (W. Bengal)

M/S New Horizon Agencies

BITUMEN & P.O.L. PRODUCTS
TRANSPORT CONTRACTOR
H.O. RANIGANJ – 713 347 (W. Bengal)

With Best Compliments of:

deorah Seva Nidhi

(Charitable Trust Dedicated to Service)

25 Ballyganj Park
Rajnigandha 13 E
CALCUTTA 700 019

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी भी बाधा पर एकाग्रचित्त न हो, वह उसमें अधिक बल भर देती है।

— श्रीमां

इण्डियन आयल के निम्नलिखित डीलर्स आपकी सेवा में

कुमार आयल्स
केरोसिन व मोबिल आयल डीलर्स
राम तीर्थ मार्ग, सहारनपुर — २४७००१
फोन ४०६५

कुमार आयल्स
केरोसिन व मोबिल आयल डीलर्स
देवबन्द
पी पी फोन ३७७

बन्सल एण्ड कम्पनी
पैट्रोल पम्प, उत्तर काशी
फोन ४५

हेड आफिस :

बन्सल निकेतन
लक्ष्मण झूला मार्ग
ऋषिकेश
फोन १२५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R. N. 8837/65

Regd. No. M/8127

For us there is only one thing that counts. We aspire for the Divine, live for the Divine, act for the Divine.

The Mother

INLAND CARRIERS
(BOMBAY)

Head Office:
Takhatmal Estate
AMRAVATI - 444 601

Phone: 2228 and 2236 Gram: INACARS

Booking Offices:

i) 112, Sarang Street, BOMBAY-400 003 (Phone: 327710)
ii) 312, Nana Peth, Laxmi Road, PUNE-441 002 (Phone: 28027)
iii) Inside Panchkuwa, Bhistiwad, AHMEDABAD-1 (Phone: 384081)
iv) Tin-Nal Chowk, Gandhi Chowk, NAGPUR-444 002 (Phone: 42643)
v) 15-8-292, Ghoshamahal Road, HYDERABAD (Phone: 41685)
vi) Opp. Old Magistrate's Court, Gheekanta, BARODA (Phone: 51919)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनवरी १९९०

पुरोधा

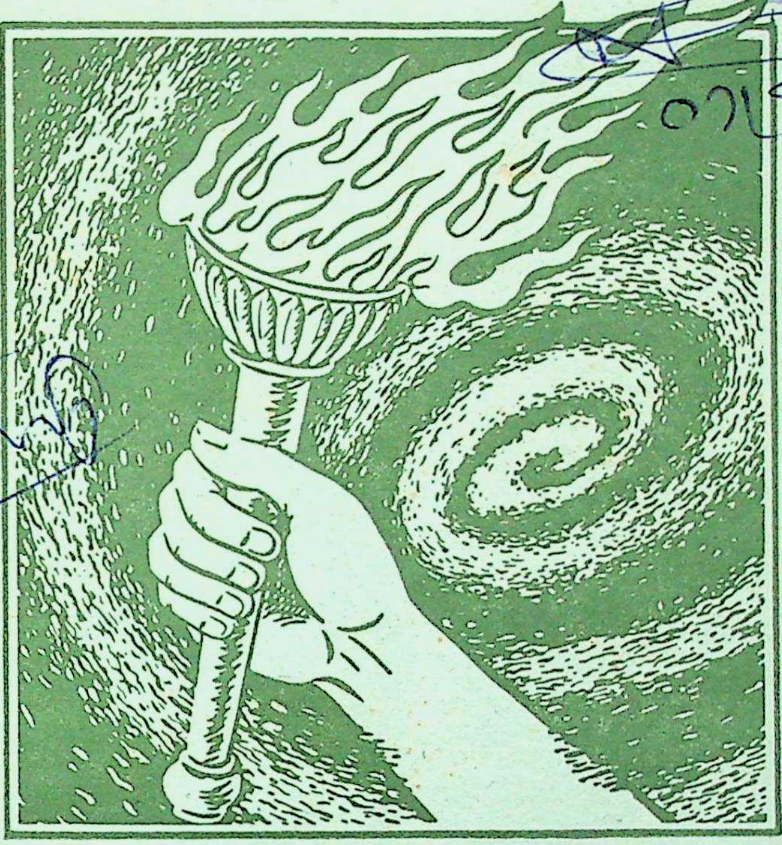

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

All sincere prayers
are granted, but it
may take some time
to realise materially.

with my blessings

M.—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, राजस्थान, मध्य प्रदेश, हरियाना,
गुजरात, ओड़िसा, आंध्र प्रदेश, पंजाब और मैसूर सरकार द्वारा
सरकारी पुस्तकालयों, विद्यालयों और महाविद्यालयों आदि के लिये स्वीकृत

पुरोधा जनवरी १९९० **वर्ष २८, अंक ४, पूर्णांक २७८**

विषय-सूची

प्रार्थना और ध्यान		२
काम	श्रीअरविंद	३
दैनन्दिनी		५
महान् कर्म	श्रीअरविंद	८
'भारतीय संस्कृति के आधार' पर आधारित : अवनति का कारण		९
'सांध्य-वार्ताएं' : अतिमानसिक स्तर इत्यादि के बारे में		१०
'कुछ माताजी के बारे में' : योग में प्रगति		१२
सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा	श्रीअरविंद	१३
जाबाल सत्यकाम		१६
स्मृति—मानसिक और चैतन्य	श्रीमातृवाणी से	१७
अनोखा अतिथि	अनुबेन	१९
श्रीअरविंद का कार्य और उनकी शिक्षा		२५
'गैर्वाणी' : सरस-शिक्षा		२७
पुस्तक-परिचय		२९

आपका अग्निशिखा/पुरोधा का चंदा . . . में समाप्त हो रहा है। कृपया अग्निशिखा के १० और पुरोधा के १४ शीघ्र भेजें अन्यथा अगला अंक वी.पी.पी. से जायेगा। वी.पी.पी. लौट आने से हमें बहुत हानि होती है। अलग अनुस्मारक नहीं भेजा जायेगा। कृपया चेक न भेजें। चाहें तो २२५ या २७५ एक साथ या किस्तों में देकर अग्निशिखा और पुरोधा के ५०० देकर आजीवन सदस्य बन सकते हैं।

	पुरोधा	अग्निशिखा	दोनों मिलाकर
आजीवन सदस्यता शुल्क	२७५	२२५	५००
वार्षिक शुल्क	१४	१०	२४

सम्पर्क-सूत्र—सम्पादक पुरोधा एवं अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी—६०५००२

सम्पादक : रवीन्द्र, वन्दना
प्रकाशक : अनिरुद्ध सरकार, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२
मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थना और ध्यान

२६ नवम्बर १९१२

मैं हर क्षण तेरी ओर कृतज्ञता-प्रकाशन के गीत कैसे न गाऊं ! हर जगह और मेरे चारों ओर हर चीज में तू अपने-आपको प्रकट करता है और मेरे अंदर तेरी इच्छा और तेरी चेतना अपने-आपको अधिकाधिक स्पष्टता से प्रकट करती हैं, यहांतक कि मैं लगभग पूरी तरह ''मैं'' और ''मेरे'' का स्थूल भ्रम खो बैठती हूं। अगर उस महान् प्रकाश में, जो तुझे अभिव्यक्त करता है, कुछ छायाएं और कुछ त्रुटियां दिखायी दें, तो वे तेरे देदीप्यमान प्रेम की अद्भुत दीप्ति को लम्बे समय तक कैसे सह सकेंगी ? तू जिस तरह से उस सत्ता को गढ़ रहा है जो ''मैं'' थी; आज सवेरे उसकी जो चेतना मुझे प्राप्त हुई, मोटे तौरपर उसे यूं कहा जा सकता है कि वह एक बड़ा हीरा था जिसे नियमित ज्यामिति के आकारों में तराशा गया था, जो संसक्ति, दृढ़ता, शुद्ध स्वच्छता, पारदर्शकता की दृष्टि से तो हीरा था लेकिन अपनी तीव्र, सदा प्रगतिशील जीवन की दृष्टि से तेजस्वी, कान्तिमय ज्वाला है। लेकिन वह था उससे भी कुछ अधिक, उस सबसे अधिक अच्छा था; बाहरी और भीतरी प्रायः सभी संवेदनों का अतिक्रमण हो गया और जब मैं बाहरी जगत् के साथ सचेतन संपर्क की ओर लौटी तो मेरे मन में केवल वही एक छवि बनी रही।

तू ही अनुभूति को उर्वर, तू ही जीवन को प्रगतिशील बनाता है, तू ही प्रकाश के आगे अंधकार को निमिषमात्र में विलीन हो जाने के लिये बाधित करता है, तू ही प्रेम को उसकी सारी शक्ति प्रदान करता है। तू ही हर जगह जड़ पदार्थ को इस तीव्र और अद्भुत अभीप्सा में अनंतता की इस लोकोत्तर तृष्णा में जगाता है।

''तू'' ही सब जगह और सदा है; सारतत्त्व में हो या अभिव्यक्ति में ''तेरे'' सिवा कुछ भी नहीं।

हे छाया और भ्रम-भ्रांति, घुल जाओ ! हे दुःख-कष्ट, मुरझाते हुए अदृश्य हो जाओ ! हे परम प्रभो, क्या तुम नहीं हो ?

—श्रीमां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम

प्रस्तुत कविता के बारे में कवि की टिप्पणी : "एक धारणा के अनुसार काम स्रष्टा है और पदार्थों अथवा विषयों का प्रतिपालक भी—काम और अज्ञान। काम-रहित होने पर व्यक्ति अज्ञान से परे चले जाता है, वैसे ही अज्ञान से परे जाने पर व्यक्ति काम-रहित हो जाता है, इस स्थिति में यह सृष्ट संसार अतिक्रांत हो जाता है और आत्मा दिव्य सत्ता में प्रवेश करती है। प्रस्तुत कविता में काम स्रष्टा 'कामशक्ति' का प्रतीक है, जो उस दिव्य सत्ता के आनंद से बहिर्गमन कर रही है, जिसके पास व्यक्ति, कामना का त्याग कर, ब्रह्मानन्द को धारण करता हुआ लौटता है—'आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्'।"

ओ विशाल वीरानो, ओ जनविहीन
आकाशी समुद्रो, अनुर्वरा ज्योति के प्रदेशो,
जीवन्त रूपाकारों के साथ बन जाओ बहुविध अनेक
काम मोहित ! मैं प्रेषित करता अपना श्वास-समीर
सत्ता के हृत्-केन्द्र में और मधुर आकर्षण का झंझावात
भग्न कर देता इसकी प्रशांत स्थिरता
कम्पित भावाकुल प्रगाढ़ता से,
और निश्चल नीरवता बन जाती एक सुरीली पुकार,
और सारा जगत् उठ खड़ा होता। मेरे हृदय से
सूर्य प्रदीप्त हो उठते निर्दय रिक्त शून्यता के अंदर
और नक्षत्र चमत्कारी नृत्यों में करते परिक्रमा
मर्त्य जीवन का जाला बुनते हुए। क्योंकि मैं
प्रेम हूं, कामना हूं। मैं रचता संसार।
केवल मैं ब्रह्मा हूं। मेरी इच्छा
लेती अनेक रूप; मैं बदलता, घूमता, दौड़ता
और मेरे साथ दौड़ती यह सारी संसृष्टि। मैं परिरक्षित रखता
क्योंकि मैं प्रेम हूं। मैं स्वयं से हो जाता श्रान्त,
और तब जगत् पीछे चक्राकार लौटता विराट् के भीतर।
हर्ष और हास्य हाथ में हाथ डाले संचरण करते
चलते मेरे साथ, और मैं खेलता शोक और पीड़ा के संग।
मैं कृष्ण का नृत्य हूं, मैं नृत्य हूं
काली का, बल और प्रभुत्व मेरे हैं।
मैं रच सकता क्रीड़ारत बालक के हृदय को,
हर वस्तु की आत्मरूप आनन्दमयी नारी को।
बुभुक्षा और पिपासा, उठो और रचो यह संसार।
आनन्दभाव, नीचे जाओ और इसे शक्ति दो जीने की।
ओ आकाश, बदलो ! ओ विषय-वस्तुओं के प्रश्वास, परिपूर्ण बनो
निरन्तर घूर्णन से। फूट निकलो, ओ अग्नि,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जादुई वर्ण के समुद्रों में, अनन्त तरंगें
इन्द्रधनुषी ज्योति की। ओ तरल तत्त्व, तुम
बन जाओ रस, बन जाओ स्वाद हर सृष्ट वस्तु में
इन्द्रियों के सुख के लिये। तू, ओ ठोस धरा,
जीवन के कण-कण में प्रवेश कर, लोकों का आधार बन।
मैं संप्रेषित करता हर्ष जन-मानस को प्रमुदित करने के लिये,
मैं संप्रेषित करता विधान सुव्यवस्था और प्रशासन के लिये।
और जब ये कार्य संपन्न हो जायें, जब मनुष्य जान लें
मेरा सौंदर्य, मेरी वांछनीयता, मेरा आनंद,
मैं स्वयं को तिरोहित कर लूंगा उनकी कामना से
और इस चिरन्तन अनुधावन का यह नियम बना दूंगा,
"वे जो मेरा त्याग करेंगे, ग्रहण और धारण करेंगे
सर्वकाल तक; और जो मेरे अनुगामी-अनुसेवी होंगें, सब खो देंगे।"

अनु० —अमृता भारती —श्रीअरविन्द

————

सारी प्रकृति मूक भाषा में उसे ही पुकारती है ताकि वह अपने चरणों से उसके जीवन की दुखती हुई धड़कनों को मुक्त कर सके और मानव की धुंधली आत्मा पर लगी मुहरों को तोड़ सके और वस्तुओं के बंद हृदय में अपनी ज्वाला धधका दे। एक दिन यहां जो कुछ है वह सब उसकी मधुरता का आवास होगा, सभी परस्पर विरोधी बातें उसके सामंजस्य को तैयार करेंगी। हमारा ज्ञान उसकी ओर आरोहण करता है। हमारे आवेश उसी ओर टटोलते हैं। हम उसके चमत्कारी आनंद में निवास करेंगे। उसका आलिंगन हमारे कष्टों को आनंद में बदल देगा। हमारी आत्मा उसके द्वारा सबके साथ एक-आत्मा होगी, उसके अंदर रूपांतरित होकर उसीमें अनुमोदित होगी। हमारा जीवन उसके पूर्ण प्रत्युत्तर में ऊपर असीम नीरव आनंद और नीचे दिव्य आलिंगन का चमत्कार पायेगा।

इस गोचर और दृश्य जगत् का गुप्त कारण है निश्चेतन भौतिक द्रव्य में अतिचेतन आत्मा का अंतर्लयन। धरती की पहेली का संकेत शब्द है, एक छिपी हुई असीम चेतना और शक्ति का—जड़ दीखनेवाली परंतु भयंकर रूप से चालित संज्ञाहीन प्रकृति में से—क्रमशः विकास। पार्थिव जीवन महान् देव का अपना चुना हुआ आवास है और उनकी चिरकालिक इच्छा है कि उसे अंधे कारागार से भव्य भवन और स्वर्गतक पहुंचनेवाले उच्च मंदिर में बदल दे।

*

मैं इस तर्क को नहीं समझ पाता जो कहता है कि चूंकि एक चीज पांच सौ वर्षों से चली जा रही है अतः उसे युगोंतक बनाये रखना चाहिये। न तो प्राचीनता और न अर्वाचीनता ही सत्य की कसौटी या उपयोगिता की कसौटी हो सकती हैं। सभी ऋषि भूतकाल के ही नहीं थे, अवतार अब भी आते हैं, अंतःप्रकाश अब भी जारी है।

—श्रीअरविंद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दैनन्दिनी

जनवरी

१. वर दे, नव वर्ष की उषा हमारे लिये भी एक नये और अधिक अच्छे जीवन की उषा हो।

२. भगवान् के लिये स्नेह : एक मधुर, विश्वासपूर्ण कोमलता जो अपने-आपको अविरत रूप से भगवान् के अर्पण करती है।
भगवान् को उग्रता द्वारा नहीं लिया जा सकता। केवल प्रेम और सामंजस्य द्वारा ही तुम भगवान्तक पहुंच सकते हो।

३. जैसे-जैसे हम प्रगति करते और अपने-आपको अहंकार से शुद्ध कर लेते हैं, वैसे-वैसे भगवान् के साथ हमारी मैत्री अधिकाधिक स्पष्ट और सचेतन हो जाती है।
चेतना, समता और प्रेम के विकास के साथ भगवान् की समीपता हमेशा बढ़ेगी।

४. हमेशा अपनी पूर्णतम और सत्यम पूर्णता को चरितार्थ करने की अभीप्सा में रहो।
और आरंभ के लिये स्वयं अपने ऊपर लगाये गये नियंत्रण में ईमानदार, सच्चे, सीधे-सादे, उदात्त और पवित्र होने की चेष्टा करो।
मैं हमेशा सहायता करने और राह दिखाने के लिये तुम्हारे साथ रहूंगी।

५. जब तुम्हारा भागवत प्रेम के साथ संपर्क हो जाये तो तुम हर चीज में, हर परिस्थिति में इस प्रेम को देखते हो।
भागवत प्रेम और ज्ञान को हमेशा हमारे विचारों और क्रियाओं पर शासन करना चाहिये।

६. सारी शरारत संतुलन के अभाव से आती है।
अतः हम सर्वदा, सभी परिस्थियों में अपना संतुलन बनाये रखें।
धन की हानि कम महत्त्व रखती है परंतु संतुलन की हानि बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण चीज है।

७. शूरता है सभी परिस्थितियों में परम सत्य के लिये डटे रह सकना, विरोध में भी उसकी घोषणा करना और जब कभी आवश्यकता हो तो उसके लिये युद्ध करना।
और हमेशा अपनी ऊंची-से-ऊंची चेतना के द्वारा काम करना।

८. **प्रश्न**—मानसिक जड़ता से कैसे पिंड छुड़ाया जाये ?
उत्तर—इसका इलाज मन को जगाने का प्रयास नहीं है। उसे अचल, नीरव अवस्था में ऊपर की ओर अन्तर्भासिक ज्योति के क्षेत्र की ओर स्थिर, शान्त अभीप्सा में मोड़ो और नीरवता में प्रतीक्षा करो ताकि ज्योति नीचे उतरे और तुम्हारे मस्तिष्क में बाढ़ ला दे। इससे मस्तिष्क थोड़ा-थोड़ा करके इस प्रभाव की ओर खुलेगा और अन्तर्भास को ग्रहण और प्रकट करने योग्य बनेगा।

९. बच्चा अपने विकास के बारे में चिंता नहीं करता, वह बस बढ़ता जाता है।
बच्चे के सरल विश्वास में बड़ी शक्ति होती है।

१०. सफलता को लक्ष्य न बनाओ, हमारा लक्ष्य है पूर्णता। याद रखो तुम नये जगत् की देहली पर हो, उसके जन्म में भाग ले रहे हो और उसके सृजन में सहायक हो। रूपांतर से अधिक महत्त्वपूर्ण कुछ भी नहीं है। इससे अधिक मूल्यवान् कोई हित नहीं है।

११. सत्य ही तुम्हारा स्वामी और तुम्हारा पथ-प्रदर्शक हो।
हम अपनी सत्ता और अपने क्रिया-कलाप में सत्य और उसकी विजय के लिये अभीप्सा करते हैं।
सत्य के लिये अभीप्सा ही हमारे प्रयासों की गति और ऊर्जा हो।
हे सत्य ! हम तेरा पथ-प्रदर्शन चाहते हैं। धरती पर तेरा ही राज्य आये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१२. जब कोई सत्य में निवास करता है तो वह सभी विरोधों के ऊपर होता है।

१३. हमारे साहस और हमारी सहनशीलता को हमारी आशा के जितना महान् होना चाहिये और हमारी आशा की कोई सीमा नहीं।
हमारी आशाएं कभी इतनी बड़ी नहीं होतीं कि वे अभिव्यक्त न हो सकें।
हम किसी ऐसी चीज की कल्पना नहीं कर सकते जो हो न सके।

१४. प्रसन्न हो मेरे वत्स, प्रगति का यह सबसे अधिक निश्चित मार्ग है।

१५. हमेशा अच्छे बने रहो तो तुम हमेशा खुश रहोगे।
हम हमेशा उचित वस्तु करें तो हमेशा शांत और सुखी रहेंगे।
हम अपनी खुशी केवल भगवान् में ही खोजें।

१६. निश्चय ही हमें शांति और सामंजस्य की चाह करनी चाहिये और उसके लिये यथासंभव अधिक-से-अधिक काम करना चाहिये—लेकिन उसके लिये उत्तम कार्य-क्षेत्र हमेशा हमारे अंदर होता है।
एक गहरी और सत्य चेतना है जिसमें सभी प्रेम तथा सामंजस्य के साथ मिल सकते हैं।

१७. भगवान् से प्रेम करने और धरती पर उनकी सेवा करने का सबसे अच्छा तरीका है अथक, स्पष्टदर्शी और व्यापक शुभ-चिन्ता जो सभी व्यक्तिगत प्रतिक्रियाओं से मुक्त हो।
मेरा मतलब है विचारों और वाणी में सच्ची, निष्कपट और सहज शुभ-चिन्ता, क्रिया में वह दिखावटी शुभ-चिन्ता नहीं जिसके साथ कृपालुता दिखानेवाली श्रेष्ठता का भयंकर भाव होता है जो मुख्य रूप से मानव दर्प के लिये मंच का काम देता है।

१८. स्वाधीनता बाहरी परिस्थितियों से नहीं, आंतरिक मुक्ति से आती है।
अपनी अंतरात्मा को खोजो, उसके साथ एक हो, उसे अपने जीवन पर शासन करने दो तो तुम **स्वाधीन** हो जाओगे।

१९. सद्भावना रखनेवाले हर व्यक्ति में सत्य के लिये प्रयास होना चाहिये।
हमारे जीवन को सत्य के लिये "प्रेम" और "प्रकाश" की प्यास द्वारा शासित होना चाहिये।
अगर व्यक्ति भगवान् के समीप रहना चाहता है तो उसके जीवन पर पूर्ण सत्य का शासन होना चाहिये।

२०. सत्य का प्रकाश जगत् के ऊपर मंडरा रहा है ताकि उसमें व्याप्त होकर भविष्य को गढ़े।
सत्य को अपनी शक्ति मानो, सत्य को अपना आश्रय मानो।
सत्य हमारे अंदर है, हमें केवल उसके बारे में अवगत होना है।

२१. सत्य मिथ्यात्व से कहीं अधिक बलवान् है। एक अमर शक्ति जगत् का शासन करती है। उसके निश्चय हमेशा सफल होते हैं। उसके साथ हो जाओ तो तुम अंतिम विजय के बारे में निश्चित रहोगे।
जब मनुष्य मिथ्यात्व से ऊब जायेंगे, जिसमें वे निवास करते हैं, तब संसार सत्य के राज्य के लिये तैयार होगा।

२२. सत्य मन से ऊपर है, नीरवता में ही मनुष्य उसके साथ नाता जोड़ सकता है।
भगवान् से प्रार्थना करना और अपने-आपको पूरी तरह पूरी सचाई के साथ उनके अर्पण कर देना आवश्यक प्राथमिक शर्तें हैं।
जो सचाई के साथ सत्य की सेवा करना चाहता है वह सत्य को जान जायेगा।

२३. बाह्य अनुशासन की दृष्टि से यह अनिवार्य है कि जब तुम्हारी कोई राय हो और तुम उसे प्रकट करो तो याद रखो कि यह केवल एक राय, देखने और अनुभव करने का एक तरीका है तथा अन्य लोगों की राय और उनके देखने और अनुभव करने के तरीके भी तुम्हारे तरीकों के जितने ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यायसंगत हैं और उनका विरोध करने की जगह तुम्हें उन सबको **जोड़कर** एक अधिक सत्य और व्यापक समन्वय पाने की कोशिश करनी चाहिये।

२४. सभी रायों में कुछ सत्य होता है और कुछ असत्य। वस्तुतः क्रोध किये बिना औरों की राय सुनना एक बड़ी और उपयोगी चीज है।

२५. ईमानदारी सबसे अच्छी सुरक्षा है।
सच्चे और ईमानदार बनो तो तुम्हारा मन चैन से रहेगा।
हमेशा सच बोलना आभिजात्य का सबसे ऊंचा पद है।

२६. सबसे अधिक आवश्यक बात है ज्योति की ओर मुड़ने का निरन्तर प्रयास करते रहना। हम जितना समझते हैं उसकी अपेक्षा ज्योति हमसे अधिक नजदीक है और कभी भी उसका समय आ सकता है।
एकमात्र वही जीवन जीने योग्य है जो भगवान् के साथ एकात्मता के लिये निवेदित हो।

२७. पर, जो हो, भागवत शक्ति पीछे निरन्तर कार्य कर रही है और एक दिन, जब कोई शायद ही आशा करता हो, बाधाएं भंग हो जाती हैं, बादल विलीन हो जाते हैं और फिर से प्रकाश और धूप छा जाती है। ऐसे समयों में सबसे अच्छी बात, यदि कोई कर सके तो, यह है कि उद्विग्न न हुआ जाये, हतोत्साह न हुआ जाये, बल्कि चुपचाप अड़े रहा जाये और श्रद्धा के साथ उसके आने की प्रतीक्षा की जाये : मैंने देखा है कि यही चीज इन अग्निपरीक्षाओं को हल्का बना देती है।
(श्रीअरविंद)

२८. अपने धार्मिक चिंतन और अनुभव में से निकाल फेंको समस्त नीचता, संकीर्णता और स्थूलदर्शिता। विशालतम क्षितिजों से भी अधिक विशाल बनो, उच्चतम कांचनजंगा से भी अधिक उच्च, गभीरतम समुद्र से भी अधिक गभीर बनो।
तथाकथित मानवीय बुद्धिमत्ता की समस्त जटिलताओं से ऊपर भागवत कृपा की ज्योतिर्मयी सरलता विद्यमान है और वह कार्य करने के लिये तैयार है—यदि हम उसे करने दें।

२९. वह समय आ गया है जब हमें एक चुनाव—मौलिक और सुनिश्चित चुनाव करना होगा।
हे प्रभु ! हमें ऐसी शक्ति दे कि हम मिथ्यात्व का त्याग करके तेरे सत्य में ऊपर उठ सकें, विशुद्ध और तेरी विजय के उपयुक्त पात्र बनकर उठ सकें।

३०. हे प्रभु ! समस्त मानवजाति तुझसे प्रार्थना करती है कि तू उसे बार-बार समान मूर्खताओं में जा गिरने से बचा।
ऐसी कृपा कर कि जो भूलें पहचानी जा चुकी हैं वे फिर से नये सिरे से दुहरायी न जायें।
अंत में वर दे कि मनुष्यजाति के कर्म उन आदर्शों को ठीक-ठीक और सच्चे तौर पर प्रकट करें जिनकी उसने घोषणा की है।

३१. अचंचल रहना और एकाग्र होना, ऊपर से शक्ति को अपना काम करने देना, यह किसी भी बीमारी और हर एक बीमारी को ठीक करने का सबसे निश्चित तरीका है। अविचल श्रद्धा और मजबूत संकल्प के साथ अगर इसे समय पर और पर्याप्त समय के लिये किया जाये तो ऐसी कोई भी बीमारी नहीं जो इसका प्रतिरोध कर सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महान् कर्म

वास्तविक कठिनाई हमारे परिवेश में नहीं, हमेशा हमारे अंदर होती है। मनुष्य को अजेय बनाने के लिये तीन चीजें जरूरी हैं, इच्छा, अनासक्ति और श्रद्धा। हमारे अंदर अपना उद्धार करने की इच्छा तो हो सकती है पर पर्याप्त श्रद्धा की कमी हो सकती है। हमें अपने चरम उद्धार पर श्रद्धा हो सकती है, पर आवश्यक साधनों के उपयोग के लिये इच्छा की कमी हो सकती है; और अगर इच्छा और श्रद्धा भी हों तो हम उनका उपयोग अपने काम के फल के प्रति उग्र आसक्ति के साथ घृणा के आवेशों, अंधी उत्तेजना या जल्दबाजी में बल लगाकर कर सकते हैं जिससे बुरी प्रतिक्रियाएं आ सकती हैं। इसी कारण इतने महत्त्वपूर्ण कार्य के लिये यह जरूरी है कि अभूतपूर्व बाधाओं को जीतने के लिये हम शरीर और मन से अधिक ऊंची शक्ति का आश्रय लें। साधना की इसीलिये आवश्यकता है।

भगवान् हमारे अंदर हैं, वे सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ शक्ति हैं। हम और वे एक ही प्रकृति के हैं और अगर हम उनके साथ संपर्क स्थापित करें और अपने-आपको उनके हाथों में सौंप दें तो वे हमारे अंदर अपनी शक्ति उड़ेलेंगे और हम अनुभव करेंगे कि हमारे अंदर भी देवत्व का, सर्वशक्तिमत्ता का, सर्वव्यापकता का और सर्वज्ञता का अपना भाग है। मार्ग लंबा है, परंतु आत्म-समर्पण उसे छोटा बना देता है, रास्ता कठिन है परंतु पूर्ण विश्वास उसे सरल बना देता है।

इच्छा सर्वशक्तिमान् है परंतु होनी चाहिये वह भागवत इच्छा, निःस्वार्थ, शांत और परिणामों के बारे में निश्चिन्त। ईसा ने कहा था, "अगर तुम्हारे अंदर राई जितनी श्रद्धा भी हो तो तुम इस पहाड़ से कहोगे आओ और वह तुम्हारे पास आ जायेगा।" यहां श्रद्धा शब्द का अर्थ पूर्ण श्रद्धा के साथ संकल्प से था। श्रद्धा तर्क नहीं करती, वह जानती है, क्योंकि उसका दृष्टि पर अधिकार होता है। वह जानती है कि भगवान् क्या चाहते हैं और वह जानती है कि भगवान् जो चाहते हैं वह होकर रहेगा। श्रद्धा—वह अंधी नहीं होती बल्कि आध्यात्मिक दृष्टि का उपयोग करती हुई सर्वज्ञ बन सकती है।

इच्छा सर्वव्यापक भी है। वह जिनके संपर्क में आती है उनके अंदर अपने-आपको निक्षिप्त कर सकती है और उन्हें सामयिक या स्थायी रूप से अपनी शक्ति, अपने विचार और अपने उत्साह का एक भाग दे सकती है। निःस्वार्थ और आश्वस्त इच्छा के प्रयोग से एक अकेले आदमी का विचार एक राष्ट्र का विचार बन सकता है। एकमात्र शूर की इच्छा करोड़ों भीरुओं के हृदयों में साहस फूंक सकती है।

हमें यही साधना चरितार्थ करनी है। हमारे उद्धार की यही शर्त है। हम अपूर्ण इच्छा का अपूर्ण श्रद्धा और अपूर्ण निःस्वार्थता के साथ उपयोग करते आये हैं। लेकिन हमारे आगे जो कार्य है वह पहाड़ को हिलाने से कम कठिन नहीं है।

जो शक्ति यह कर सकती है वह उपस्थित है लेकिन वह हमारे अंदर एक गुप्त कक्ष में छिपी है और उसकी चाबी भगवान् के हाथ में है। चलो, हम उन्हें खोजें और उसकी मांग करें।

—श्रीअरविंद

अपनी सत्ता को जानो और तुम असत् को और सबके ईश्वर को जान जाओगे। बहुत गंभीरता से चिंतन करो और तुम्हें पता चल जायेगा कि "मैं" नाम की कोई चीज है ही नहीं। हर प्रकार के विश्लेषण का अंतिम परिणाम है भगवान्। जब अहंभाव विलीन हो जाता है तब भगवान् अभिव्यक्त होते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"भारतीय संस्कृति के आधार" पर आधारित :

अवनति का कारण

हमने अपने पिछले लेख में इस बात की चर्चा की थी कि चूंकि राष्ट्रीय और राजनीतिक रूप में भारत कभी एक नहीं रहा, करीब सौ वर्षोंतक विदेशी जूए के अधीन रहा, उसने अन्य देशों की तरह अपना साम्राज्य बढ़ाने के लिये लूट-पाट की नीति अपनाने की चेष्टा कभी नहीं की, राजनीतिक दृष्टि से एक-राष्ट्र होकर जीने में बहुत सफल नहीं हो पाया, अतः, राजनीतिक दृष्टि से उसके हाथ असफलता के सिवाय और कुछ न लगा। भारतीय आलोचकों ने इसी बात को बहुत महत्त्वपूर्ण मानकर भारत को एकदम निचली श्रेणी में ला बिठाया लेकिन अगर हम अतिशयोक्तियों को त्यागकर यथार्थ तथ्यों को देखें, भारतीय मानस की प्रवृत्तियों तथा सिद्धांतों पर दृष्टिपात करें तो चीज अधिक स्पष्ट होगी। जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं कि यदि किसी जाति या सभ्यता की महानता का मूल्य उसके राज्य-विस्तार, दूसरे राष्ट्रों के साथ युद्ध में सफलता इत्यादि से आंकना हो तो भारत महान् जातियों में कहीं नहीं टिक सकता क्योंकि ऐसा लगता है कि भारत अपनी सीमाओं के परे आक्रमण द्वारा अपना राजनीतिक विस्तार करने के लिये कभी प्रवृत्त नहीं हुआ, भारतीय सफलता के इतिहास में इस तरह के आक्रमणों इत्यादि की महान् गाथाएं नहीं लिखी गयीं। जिस विस्तार, आक्रमण या विजय के लिये उसने एकमात्र महान् प्रयास किया वह था अपनी संस्कृति का विस्तार, बौद्ध विचार तथा अपनी आध्यात्मिकता, कला तथा विचार-शक्तियों के प्रवेश द्वारा पूर्वीय जगत् पर आक्रमण तथा विजय। और यह युद्ध का नहीं बल्कि शांति का आक्रमण था क्योंकि बल का प्रयोग करके तथा भौतिक विजय के द्वारा—जैसी कि अन्य राष्ट्रों की सामान्य नीति रही है—आध्यात्मिक सभ्यता का प्रसार करना भारत के मन और स्वभाव की रचना तथा धर्म के आधारभूत विचार के विपरीत होता। धर्म के प्रसार के लिये उसने बहुत चेष्टा की, साम्राज्य का, यहांतक कि जगत्-साम्राज्य के विचार का भी भारतीय मन में अभाव न था लेकिन उसका जगत् था भारतीय जगत् तथा उसका उद्देश्य था धर्म द्वारा एकता की स्थापना।

यह विचार, इस आवश्यकता का बोध, इसकी पूर्ति के लिये निरन्तर आवेग भारत के इतिहास में आद्योपान्त झलकता है। ये विचार प्राचीन वैदिक युग से आरंभ हुए और रामायण तथा महाभारत की परंपराओं द्वारा तथा मौर्य और गुप्तवंशीय सम्राटों से होते हुए मुगलोंतक आये जबतक कि अंतिम असफलता ने न आ घेरा, अर्थात् सभी संघर्षरत शक्तियां विदेशी जूए के नीचे एक ही स्तर पर न पहुंच गयीं यानी एक स्वतंत्र जाति की स्वतंत्र एकता के स्थान पर परतंत्रता की शिकार न हो गयीं। प्रश्न यह है कि क्या एकीकरण की प्रक्रिया की मन्दता तथा विफलता का कारण यह था कि भारतवासियों की सभ्यता या राजनीतिक चेतना में कोई मौलिक दुर्बलता थी या इसके मूल में कोई और ही शक्तियां काम कर रही थीं। इधर भारतवासियों के एक होने की अयोग्यता उधर यूरोप की कुशल राजनीति के बारे में बहुत कुछ कहा गया है लेकिन प्रश्न है कि क्या यूरोप में सचमुच इतनी कुशल राजनीति थी ? क्या वह सचमुच एक था ? सच पूछा जाये तो यूरोप की सच्ची एकता को क्रियात्मक रूप में सिद्ध करना आजतक असंभव रहा है जब कि भारत ऊपरी दृष्टि से हमेशा छोटे-छोटे राष्ट्रों में पृथक् होने पर भी एकसूत्र में काफी हदतक बंधा रहा। इसका मुख्य कारण यह है कि भारत और यूरोप दोनों की अवस्थाएं एकदम से अलग ढंग की थीं। यूरोप की जातियां ऐसी जातियां हैं जो अपने व्यक्तित्व में एक-दूसरे से बहुत तीव्र रूप से भिन्न हैं और ईसाई धर्म में उनकी आध्यात्मिक एकता या यहांतक कि उनकी सांस्कृतिक एकता भी कभी इतनी वास्तविक या पूर्ण नहीं थी जितनी भारत की प्राचीन आध्यात्मिक एवं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांस्कृतिक एकता, यूरोप की वह एकता उनके जीवन का वास्तविक केन्द्र भी न थी, उसके अस्तित्व का दृढ़ आधार भी न थी बल्कि एक तरह से ऊपरी तौर की सतही एकता थी—सतही इस कारण क्योंकि यूरोप के देश राजनीतिक और आर्थिक जीवन की डोरों से ही आपस में बंधे थे, और चूंकि राजनीतिक तथा आर्थिक चेतना हमेशा बदलती रहती है अतः उन डोरों का खिंचना, तड़कना और टूटना भी हमेशा बना रहा। लेकिन भारत में अत्यंत प्राचीन काल में ही आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक अर्थात् आंतरिक एकता पूरी तरह से स्थापित हो चुकी थी और वही जन-जीवन में व्याप्त थी। प्राचीन भारत की जातियां यूरोप की जातियों की तरह ऐसी विभिन्न जातियां कभी न रहीं ज़ो पृथक् राजनीतिक तथा आर्थिक जीवन के द्वारा एक-दूसरे से तीव्र रूप में विभक्त हों बल्कि वे एक महान् आध्यात्मिक और सांस्कृतिक राष्ट्र की उपजातियां थीं। इतना सब होते हुए भी कहा जा सकता है कि भारत राजनीतिक दृष्टि से लम्बे समयतक अपनी एकता को स्थापित न कर पाया और अवनति में जा गिरा। वह असफल क्यों रहा इसके कारण को अधिक गहराई में जाकर ढूंढ़ना होगा जिसकी चर्चा हम फिर कभी करेंगे।

—वन्दना

सांध्य वार्ताएं :

अतिमानसिक स्तर इत्यादि के बारे में

२८-९-१९२६

शिष्य—सत्ता के प्रत्येक स्तर, भौतिक, प्राणिक और मानसिक पर से जगत् को देखते हुए पुरुष के विशेष लक्षण क्या होते हैं?

श्रीअरविंद—पुरुष जगत् को उसी तरह से देखता है जैसे प्रकृति उसे उपस्थित करती है। मानसिक स्तर पर प्रकृति विचारों, भावों, संक्षेप में कहें तो सभी मानसिक गतिविधियों के रूप में प्रस्तुत करती है। प्राणिक स्तर पर प्रकृति स्वयं को कामनाओं के द्वारा, संक्षेप में कहें तो प्राण-शक्ति की क्रिया के रूप में प्रस्तुत करती है। भौतिक स्तर पर वह अपने-आपको भौतिक जीवन के अपरिवर्तनशील विधान के रूप में प्रस्तुत करती है।

शिष्य—जब पुरुष अपने-आपको प्रकृति से अलग करता है तो उसके लिये किसी उच्चतर चीज के लिये अभीप्सा करना कैसे संभव होता है?

श्रीअरविंद—पुरुष नहीं प्रकृति द्वारा अभीप्सा करवानी चाहिये और उसे उपयुक्त बनाना चाहिये। पुरुष तो नीरव, निष्क्रिय होता है और प्रकृति को देखता रहता है।

शिष्य—अतिमानस से पृथ्वी को देखने का पुरुष का विशिष्ट तरीका क्या है?

श्रीअरविंद—अतिमानस पुरुष उसी तरह देखता है जैसे सत्य देखता है।

शिष्य—और सत्य कैसे देखता है इस जगत् को?

श्रीअरविंद—(हाथ ऊपर उठाकर) तुम वहांतक उठ जाओ तो देख लोगे।

शिष्य—तैत्तिरीय उपनिषद् में कहा है—विज्ञान यज्ञ को प्रसारित करता है। जो वस्तु प्रिय है वह उसका शिर है, आनंद उसका दाहिना पार्श्व है और अति आनंद बांया पार्श्व। आनंद शरीर है और ब्रह्म निचला भाग, आधार। (*तस्य प्रियमेव शिरः। मोदो दक्षिणः पक्षः। प्रमोदः उत्तरः पक्षः। आनन्द आत्मा। ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा*)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीअरविंद—यहां पुच्छम् या पूंछ का अर्थ है छोर या आधार। उसका अर्थ है कि आनंद का आधार अनंत है, ब्रह्म है।

शिष्य—और आगे कहा है, "उससे भरा हुआ है, श्रद्धा उसका सिर है, गति का सत्य दांया पार्श्व, सत्ता का सत्य बांया पार्श्व। ऐक्य, शरीर है; महर्लोक, निचला भाग है—आधार।"

(तेनैव पूर्णः . . . तस्य श्रद्धैव शिरः। ऋतं दक्षिणः पक्षः।
सत्यमुत्तरः पक्षः। योग आत्मा। महः पुच्छं प्रतिष्ठा।)

श्रीअरविंद—इसका मतलब यह हुआ कि अगर तुम अतिमानसतक उठना चाहो तो तुम्हें महस् को प्राप्त करना होगा—बृहत्, अनंत और वैश्व चेतना जो उसका आधार है। ऋतम् का अर्थ है गति का सत्य, सत्यम् है सत्ता का सत्य, श्रद्धा है जब सत्य उपस्थित हो तो उसकी स्वीकृति।

शिष्य—जब सत्य अतिमानस स्तर पर मौजूद है तो श्रद्धा की क्या जरूरत?

श्रीअरविंद—श्रद्धा का यहां मतलब यह है कि जब तुम सत्य को देखो तो उसे स्वीकार करने के लिये तैयार रहो। योगात्मा का मतलब है कि निम्नतर सत्ता को उच्चतर सत्ता के साथ ऐक्य पाने की जरूरत है ताकि मन से उच्चतर स्तरतक पहुंच सके।

शिष्य—उसमें प्राणायाम के बारे में भी कहा गया है और यह भी कि इसीके द्वारा वह संपन्न होता है।

श्रीअरविंद—इसमें कहा गया है कि मनोमय प्राण से अधिक ऊंचा है और इसके द्वारा संपन्न होता है।

शिष्य—उसमें यह भी कहा गया है कि यज्ञ शिर है, ऋक् दक्षिण पार्श्व है, साम वाम पार्श्व है, आज्ञा अंतरात्मा है और अथर्वांगिरस पुच्छ या आधार है।

श्रीअरविंद—ऋक् का मतलब है, 'मन में अंतर्भासात्मक गति', साम हैं, 'गति और सामंजस्य की लय', अथर्व का अर्थ है, 'भौतिक स्तर का प्रभावोत्पादक कर्म', कम-से-कम वेद में अंगिरस का अर्थ है अग्नि की शक्ति जो गौओं को मुक्त करती है पणियों की गुफा से, यानी प्रकाश को अंधकार से और यह **शब्द** तथा इंद्र और अन्य देवों की सहायता से होता है।

शिष्य—क्या ईसाइयों की त्रयी ब्रह्मा, विष्णु, महेश से मेल खाती है?

श्रीअरविंद—नहीं, भारतीय त्रयी वे वैश्व शक्तियां हैं जो विश्व की अमुक गतिविधियों का नियंत्रण करती है जैसे ब्रह्मा सृजन का, जब कि ईसाई 'पुत्र' शायद 'मनुष्य के अंदर भगवान्' है, 'पवित्रात्मा' शायद 'दिव्य चेतना' है।

३-१०-१९२६

श्रीअरविंद—सच्ची (ह्यूमिलिटी) दीनता या विनय वह है जब तुम अपने दोषों को स्वीकारने के लिये तैयार हो लेकिन इसके लिये अपने-आपको अधम मानने की जरूरत नहीं। तुम अनुभव करते हो कि तुम्हारे अंदर वे सब दोष हैं जो वैश्व प्रकृति में हैं और व्यक्तिगत रूप से तुम किसी से भी श्रेष्ठतर नहीं हो। तुम्हें यह भाव तक नहीं बनाये रखना चाहिये कि ये दोष चले जायें और यह न रटते रहना चाहिये, "मैं कुछ नहीं हूं। मैं पापों से भरा हूं"—सांथ ही उसके बारे में तुम्हारा सिर फूला न होना चाहिये, सचमुच यह घमंड का अभाव है। ह्यूमिलिटी अच्छा शब्द नहीं है।

शिष्य—क्या आध्यात्मिक पूर्णता में विनोद-भाव का कोई स्थान है?

श्रीअरविंद—अगर सिद्ध कभी नहीं हंसता तो यह एक अपूर्णता है।

(पुराणीकृत श्रीअरविन्द की 'ईवनिंग टॉक्स' से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'कुछ माताजी के बारे में' :

योग में प्रगति

कहा गया है कि योग में प्रगति करने के लिये साधक को अपने जीवन की छोटी-से-छोटी चीज और अपनी छोटी-से-छोटी क्रिया भी भगवान् को समर्पित कर देनी चाहिये। इसका ठीक-ठीक अर्थ क्या है ?

योग का अर्थ है भगवान् से एकता, और यह एकता आत्मोत्सर्ग द्वारा आती है—इसका आधार है अपने-आपको भगवान् के हाथों में दे देना। आरंभ में तुम साधारण रूप से अपने-आपको देना शुरू करते हो मानों सदा के लिये तुम्हारा यह काम पूरा हो गया। तुम कहते हो : ''मैं भगवान् का सेवक हूं, मेरा जीवन पूर्ण रूप से भगवान् को दिया गया है, मेरे सब प्रयत्न दिव्य जीवन की प्राप्ति के लिये हैं।'' पर यह तो केवल पहला कदम है; केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है। इस संकल्प के बाद भी, इस निश्चय के बाद भी कि तुम अपने समग्र जीवन को भगवान् के अर्पण कर दोगे, तुम्हें यह बात अपने जीवन में प्रत्येक क्षण याद रखनी होगी और इसे अपने प्रत्येक ब्योरे में चरितार्थ करना होगा। तुम्हें प्रत्येक पग पर यह अनुभव होना चाहिये कि तुम भगवान् के हो, तुम्हें हमेशा यह अनुभूति होनी चाहिये कि तुम जो कुछ सोचते या करते हो, उसमें हमेशा भागवत चेतना ही तुम्हारे द्वारा कार्य करती है। तुम्हारे पास ऐसी कोई चीज न होनी चाहिये जिसे तुम अपना कह सको, जो कुछ तुम्हारे पास आये उसे भगवान् के यहां से आया हुआ अनुभव करो और उसे उसके मूल स्रोत की भेंट कर दो। इस अनुभूति को प्राप्त कर लेने पर अत्यंत सामान्य-से-सामान्य चीज, जिसपर तुम ध्यान नहीं देते या जिसकी साधारणतः परवाह नहीं करते, वह भी अकिंचन या तुच्छ नहीं रह जाती, वह अर्थपूर्ण हो जाती है और तुम्हारी दृष्टि के सामने दूरतक देख सकने के लिये एक विशाल क्षितिज खोल देती है।

सामान्य रूप से किये गये उत्सर्ग को जीवन के प्रत्येक ब्योरे में लाने का तरीका यह है : हमेशा भगवान् की उपस्थिति में ही निवास करो; इस अनुभूति में रहो कि यह उपस्थिति ही तुम्हारी प्रत्येक क्रिया को गति देती है और जो कुछ तुम करते हो उसे वही कर रही है। अपनी समस्त चेष्टाओं का इसीके प्रति उत्सर्ग करो, केवल प्रत्येक मानसिक क्रिया, प्रत्येक विचार और भाव का ही नहीं, बल्कि अत्यंत साधारण और बाह्य क्रियाओं का भी, उदाहरणार्थ, भोजन भी उसी को अर्पित कर दो; जब तुम भोजन करो तो तुम्हें अनुभव होना चाहिये कि इस क्रिया में तुम्हारे द्वारा भगवान् ही खा रहे हैं। जब तुम इस प्रकार अपनी समस्त प्रवृत्तियों को एक अखण्ड जीवन में एकत्रित कर सकोगे तब तुम्हारे अंदर भेद-भाव की जगह एकता होगी। तब यह अवस्था न रहेगी कि तुम्हारी प्रकृति का एक भाग तो भगवान् के अर्पित हो और बाकी भाग अपनी साधारण वृत्तियों में पड़े रहें और साधारण चीजों में लिप्त रहें, बल्कि तब तुम्हारे संपूर्ण जीवन को भगवान् अपने हाथ में ले लेंगे और क्रमशः तुम्हारी प्रकृति का संपूर्ण रूपांतर होने लगेगा।

पूर्ण योग में पूरे ब्योरे के साथ संपूर्ण जीवन का रूपांतर करना होगा, उसे दिव्य बनाना होगा। यहां कोई चीज नगण्य या तुच्छ नहीं है। तुम यह नहीं कह सकते : ''जब मैं ध्यान करता हूं, दर्शनशास्त्र-संबंधी पुस्तकें पढ़ता हूं या इस वार्तालाप को सुनता हूं तब तो मैं भागवत ज्योति की ओर खुलने और उसे बुलाने की अवस्था में रहूंगा। किंतु जब मैं टहलने जाऊं या किसी मित्र से मिलूं तब मैं इन बातों को भुला सकता हूं।'' इस भाव को बनाये रखने का अर्थ होगा कि तुम्हारा रूपांतर कभी न हो सकेगा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और तुम्हें भगवान् के साथ सच्ची एकता कभी प्राप्त न होगी। तुम्हारे सदा दो भाग बने रहेंगे, अधिक-से-अधिक तुम्हें इस महत्तर जीवन की कुछ झांकियां मिल सकेंगी। हो सकता है कि ध्यान के समय तुम्हारी आंतर चेतना में कतिपय अनुभूतियां और साक्षात्कार मिल जायें, पर तुम्हारा स्थूल शरीर और तुम्हारा बाह्य जीवन तो रूपांतरित हुए बिना ही रह जायेगा। जिस आंतर प्रकाश का शरीर और बाह्य जीवन पर कोई असर नहीं होता वह किसी विशेष उपयोग का नहीं होता, क्योंकि वह इससे जगत् को जैसा-का-तैसा छोड़ देता है। अभीतक लगातार यही होता आया है। वे लोग भी जिन्हें अतिमहान् और शक्तिशाली उपलब्धियां हुई थीं, वे अपनी आंतर स्थिरता और शांति में अक्षुब्ध रूप से रहने के लिये जगत् से अलग हट गये। और जगत् को अपने ही मार्ग पर चलते रहने के लिये छोड़ दिया। परिणाम यह हुआ कि विश्व-सत्ता की इस भौतिक भूमिका पर दुःख और जड़ता, मृत्यु और अज्ञान का राज्य पहले की तरह अबाध गति से जारी रहा। जो लोग इस प्रकार किनारा कर लेते हैं उनके लिये इस उपद्रव से त्राण पाना, इन कठिनाइयों से दूर भागना और दूसरे लोक में अपने लिये एक सुखी अवस्था पा लेना भले ही सुखकर हो, किंतु इसमें संदेह नहीं कि वे इस जगत् और जीवन को अमार्जित और अरूपांतरित अवस्था में छोड़ जाते हैं; यही नहीं, वे अपनी बाहरी चेतना को भी अपरिवर्तित अवस्था में और अपने शरीर को सदा की न्याई असंस्कृत अवस्था में छोड़ देते हैं। भौतिक जगत् में वापस लौटने पर संभव है कि इनकी दशा साधारण मनुष्य से भी बुरी हो, क्योंकि ये लोग स्थूल वस्तुओं पर प्रभुता प्राप्त करने की शक्ति गंवा देते हैं, अतः संभव है कि भौतिक जीवन के साथ इनके व्यवहार में फूहड़पन हो और इनकी गतिविधि बिलकुल असहाय और हर गुजरती हुई शक्ति की दया पर निर्भर हो।

इस प्रकार का आदर्श उनके लिये भले ठीक हो जो इसे चाहते हैं, किंतु यह हमारा योग नहीं है। क्योंकि हम इस जगत् पर तथा इसकी समस्त गतियों पर भगवान् की विजय चाहते हैं और यहीं, इस पार्थिव जगत् में ही भगवान् की उपलब्धि चाहते हैं। परंतु यदि हम भगवान् के राज्य के लिये इच्छुक हों तो हम जो कुछ हैं, जो कुछ हमारे पास है और हम जो कुछ करते हैं, उस सबको हमें भगवान् के अर्पण कर देना चाहिये। यह सोचने से काम नहीं चलेगा कि कोई बात गौण है अथवा बाह्य जीवन और उसकी आवश्यकताओं से दिव्य जीवन का कोई संबंध नहीं है। यदि हम ऐसा मानें तो हम वहीं पड़े रहेंगे जहां सदा से पड़े रहे हैं और इस बाह्य जगत् पर कभी विजय नहीं मिलेगी, उसमें कोई चिरस्थायी काम न हो पायेगा।

सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा

सबसे पहले आवश्यकता इस बात की है कि सच्ची शिक्षा के संबंध में जितनी भी अस्पष्ट धारणाएं हैं उनसे छुटकारा पाकर हम ठीक-ठीक यह समझें कि सच्ची शिक्षा क्या है, उसका यथार्थ अर्थ क्या है, उसका मूल उद्देश्य और गभीर तात्पर्य क्या है? तभी हम इस विषय में निश्चित हो सकते हैं कि हमारा आरंभ ठीक है और हम जो शिक्षा शब्द के साथ 'राष्ट्रीय' विशेषण जोड़ रहे हैं उसके यथार्थ स्थान और संपूर्ण तात्पर्य को सुनिश्चित रूप में स्थिर करने के लिये अग्रसर हो सकते हैं। बल्कि यहां हमें निस्संदिग्ध रूप में यह जान लेना चाहिये कि स्वयं शिक्षा क्या चीज है अथवा वह कैसी होनी चाहिये। उसके बाद ही हम सुनिश्चित रूप में यह जान सकते हैं कि राष्ट्रीय शिक्षा क्या चीज है, अथवा कैसी होनी चाहिये।

अब, हम अपने आरंभिक कथन से आरंभ करें जिसके विषय में शायद बहुत अधिक मतभेद नहीं हो सकता। हम समझते हैं कि सच्ची और सजीव शिक्षा का विचार करते समय हमें तीन बातों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार अवश्य करना चाहिये—(१) मनुष्य, अपने सामान्य रूप में तथा अपनी विशेषता के साथ व्यक्ति, (२) जाति या राष्ट्र और (३) समस्त मानव-जाति। इससे स्वतः ही यह निष्कर्ष निकलता है कि सच्ची और सजीव शिक्षा केवल वही कही जा सकती है जो मनुष्य को इस तरह सहायता दे कि उसके अंदर जो भी शक्ति-सामर्थ्य निहित है वह बाहर अभिव्यक्त होकर उसके जीवन में अपना पूरा लाभ प्रदान करे तथा मनुष्य-जीवन का जो भी संपूर्ण उद्देश्य और संभावना है उसकी संसिद्धि के लिये उसे तैयार करे। इसके बाद उसे ऐसी सहायता दे जिससे मनुष्य अपनी जाति या राष्ट्र के जीवन, विचारधारा और अंतरात्मा के साथ और उसके साथ-ही-साथ उस मनुष्यजाति के महान् समष्टि-जीवन, विचारधारा और अंतरात्मा के साथ, जिसकी कि वह स्वयं एक इकाई है और उनकी जाति या राष्ट्र एक सजीव और पृथक्, पर फिर भी अविच्छेद्य अंग है, अपना यथार्थ संबंध स्थापित कर सके।

जब हम इस विशाल और संपूर्ण सिद्धांत के प्रकाश में इस समूचे प्रश्न पर विचार करेंगे, तभी हम इस सुस्पष्ट भावना को अच्छी तरह पकड़ पायेंगे कि हम अपनी शिक्षा को क्या पूरा रूप देना चाहेंगे और राष्ट्रीय शिक्षा के द्वारा कौन-सा उद्देश्य सिद्ध करने का प्रयास करेंगे। आज भारत में इस विशाल दृष्टिकोण और आधार की बहुत अधिक आवश्यकता है। आज भारत अपनी भवितव्यता के एक संगीन मोड़ पर खड़ा है, इसलिये उसके जीवन-कार्य को संपन्न करनेवाली संपूर्ण शक्ति को उसकी एकमात्र महान् आवश्यकता की पूर्ति में ही नियोजित कर देना होगा और वह आवश्यकता है व्यष्टि और जाति के अंदर विद्यमान उसकी सच्ची आत्मा को ढूंढ़ना और नये रूप में गठित करना तथा इस प्रकार अपनी आंतरिक महानता को फिर से पाकर मानवजाति के जीवन में अपना समुचित और स्वाभाविक अंश और स्थान फिर से प्राप्त करना।

मनुष्य और उसके जीवन के संबंध में, राष्ट्र और उसके जीवन के संबंध में, मनुष्यजाति और उसके जीवन के संबंध में बहुत-सी अलग-अलग धारणाओं का होना संभव है और उस विभिन्नता के अनुसार शिक्षा-संबंधी हमारी भावना और प्रयास में काफी विभिन्नता आ सकती है। इन चीजों के विषय में भारत की अपनी निजी विशिष्ट धारणा और दृष्टि रही है और हमें यह देखना होगा कि क्या वही चीज वास्तव में, हमारी शिक्षा के मूल में रहेगी या नहीं, रहनी चाहिये या नहीं और वही एकमात्र वस्तु है या नहीं जो कि उसे वास्तव में राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करेगी।

भारतीय विचारधारा में मनुष्य को इस रूप में नहीं देखा गया है कि वह भौतिक प्रकृति द्वारा विकसित किया हुआ एक जीवंत शरीर है जिसने कुछ प्राणिक प्रवृत्तियों को विकसित कर लिया है, एक अहंभाव, मन और बुद्धि को उत्पन्न कर लिया है, जो एक वर्ग का पशु है और हमारी श्रेणी की दृष्टि से मानव-पशु है; इसके समूचे जीवन और शिक्षा को इन्हीं प्रवृत्तियों की तृप्ति की दिशा में मोड़ देना चाहिये और एक सुशिक्षित मन के शासन के अधीन रखकर व्यक्तिगत और राष्ट्रीय अहं के अधिक-से-अधिक हित में नियुक्त करना चाहिये। फिर भारत के मन का झुकाव इस तरह का भी नहीं रहा है कि वह मनुष्य को प्रधानतया एक तर्कशील पशु समझे, अथवा सुपरिचित परिभाषा को विस्तृत करके यों कहें कि चिंतनशील, अनुभवशील और इच्छा-संपन्न एक प्राकृत सत्ता समझे, भौतिक प्रकृति का मनोमय पुत्र माने, और उसकी शिक्षा को मानसिक क्षमताओं का ही अनुशीलन समझे अथवा मनुष्य का वर्णन एक राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक सत्ता के रूप में करे तथा उसकी शिक्षा को एक ऐसी शिक्षा माने जो उसे समाज और राज्य का एक सुयोग्य, उत्पादनशील और श्रेष्ठ अनुशासित सदस्य बना दे। निःसंदेह ये सब चीजें मानव-प्राणी के ही अलग-अलग स्वरूप हैं और भारत ने अपनी विशाल दृष्टि के अधीन इन सबको भी यथेष्ट प्रधानता दी है, पर ये सब बाहरी चीजें हैं, मनुष्य के मन, जीवन और कर्म के उपकरण समूह के अंग हैं, सच्चे मानव का संपूर्ण स्वरूप नहीं हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत ने सदा ही व्यष्टि-मानव के अंदर एक अंतरात्मा को, भगवान् के एक अंश को देखा है जो मन और शरीर से आवृत है, प्रकृति के अंदर विश्वात्मा परम देव का सज्ञान प्रकाश है। सर्वदा ही उसने मनुष्य के अंदर एक मानसिक, एक बौद्धिक, एक सक्रिय और व्यावहारिक नैतिक पुरुष, एक सौंदर्यप्रेमी और सुखोपभोगवादी पुरुष, एक प्राणिक और भौतिक पुरुष को अलग-अलग देखा और उनका विकास किया है, परंतु इन सबको उसने एक अंतरात्मा की शक्तियों के रूप में देखा है जो इनके द्वारा अभिव्यक्त होती और इनके विकास के साथ विकसित होती है, और फिर भी ये सब चीजें संपूर्ण अंतरात्मा नहीं हैं। क्योंकि यह अंतरात्मा अपने आरोहण के अंतिम शिखर पर पहुंचकर इन सबसे कहीं अधिक महान् एक चीजतक पहुंच जाती है, एक आध्यात्मिक सत्ता में चली जाती है, और इस महत्तर आध्यात्मिक सत्ता में ही भारत ने मानव आत्मा की सर्वोच्च अभिव्यक्ति तथा उसके सर्वोच्च दिव्य मानवत्व को, उसके 'परमार्थ' तथा उच्चतम 'पुरुषार्थ' को देखा है।

ठीक इसी तरह भारत ने राष्ट्र या जाति का अर्थ कोई सुव्यवस्थित राजतंत्र अथवा कोई सशस्त्र और कार्यक्षम समाज नहीं माना है जो जीवन-संघर्ष के लिये और राष्ट्रीय अहंकार की सेवा में सब कुछ बलिदान कर देने के लिये अच्छी तरह तैयार हो; सच पूछो तो वह अहं तो केवल लौह-कवच का एक छद्मवेश होता है जो राष्ट्रीय पुरुष को छिपाये रखता तथा भाराक्रांत कर रखता है। भारत तो राष्ट्र या जाति को इस रूप में देखता है कि एक महान् समष्टि-आत्मा और समष्टि-जीवन संपूर्ण समाज के अंदर प्रकट हुआ है तथा उसने अपना एक निजी स्वभाव और अपने स्वभाव का एक धर्म—स्वभाव और स्व-धर्म—अभिव्यक्त किया है एवं उसे अपने बौद्धिक, सौंदर्यबोधात्मक, नैतिक, सक्रिय सामाजिक और राजनीतिक आकारों और संस्कृति के अंदर मूर्तिमान किया है।

फिर इसी तरह भारत की प्राचीन दृष्टि के अनुरूप मनुष्यजाति के विषय में हमें एक उच्च धारणा बनानी चाहिये। भारतीय दृष्टि में मनुष्यजाति के रूप में स्वयं विश्वात्मा ही प्रकट हुआ है, प्राण और मन के भीतर से होकर वही एक परम उच्च आध्यात्मिक उद्देश्य को सिद्ध करने के लिये धीरे-धीरे विकसित हो रहा है : इसे हम इस प्रकार कह सकते हैं कि मनुष्यजाति की भी एक अंतरात्मा है, उसका विराट् आत्मा है और वह संघर्ष और सहकारिता के द्वारा एकत्व की ओर बढ़ रहा है, अपनी अनेक जातियों की विभिन्न संस्कृतियों तथा जीवनोद्देश्यों के द्वारा अपने अनुभव को बढ़ा रहा है तथा आवश्यक बहुत्व को बनाये रखता है, व्यक्ति की शक्तियों के विकास के द्वारा तथा एक दिव्यतर स्वरूप और जीवन की ओर होनेवाली उसकी प्रगति के द्वारा पूर्णता की खोज करता है, पर साथ ही जाति के जीवन में भी, यद्यपि बहुत धीरे-धीरे, उसी प्रकार की परिपूर्णता लाने का प्रयास करता है।

यहांपर यह तर्क उठाया जा सकता है कि क्या यह मनुष्य या राष्ट्रीय सत्ता का सच्चा वर्णन है, पर यदि एक बार इसे सच्चा वर्णन स्वीकार कर लिया जाये तो यह स्पष्ट हो जाना चाहिये कि केवल वही शिक्षा सच्ची शिक्षा होगी जो व्यक्ति और राष्ट्र के मन और शरीर में होनेवाली आत्मा की इस सच्ची क्रिया का यंत्र बनेगी। यही वह सिद्धांत है जिसपर हमें निर्माण करना होगा, यही होगा हमारा केन्द्रीय हेतु और मार्गदर्शक आदर्श। हमारी शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जो व्यक्ति के प्रसंग में अपना प्रधान लक्ष्य बनायेगी मानवात्मा और उसकी शक्तियों और संभावनाओं का विकास करना, राष्ट्र के प्रसंग में पहले अपनी दृष्टि में रखेगी राष्ट्रीय आत्मा और उसके धर्म की रक्षा करना, उसे शक्तिशाली और समृद्ध बनाने का कार्य तथा उसके बाद इन दोनों को मानवजाति की जीवनी शक्तियों में, उसके आरोहणकारी मन और आत्मा में उठा ले जायेगी। और वह मनुष्य के उच्चतम उद्देश्य को, उसकी आध्यात्मिक सत्ता के जागरण और विकास को कभी अपनी आंखों से ओझल नहीं करेगी।

—श्रीअरविंद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाबाल सत्यकाम

जाबाल सत्यकाम की कहानी उपनिषदों की विशिष्ट कहानियों में से है। वह वेदान्त की शिक्षा से भरी है। लेखक यह आशा करता है कि श्रोता पहले से ही बहुत कुछ जानता है यहांतक कि जिसने अपने-आप योगाभ्यास न किया हो वह इसकी मोटी-मोटी बातों को छोड़कर और कुछ न समझ सकेगा। शंकर से लेकर अन्य सभी भाष्यकारों ने इसका उपयोग अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन करने के लिये किया है। श्रीअरविंद ने ऐसी बातों की ओर ध्यान दिया है जिन्हें यूरोपीय विद्वान् बच्चों की बड़बड़ाहट मानते हैं परंतु जो योगियों की दृष्टि में अनंत सत्य हैं।

सत्यकाम जाबाल ने अपनी मां जबाला से कहा, "मैं ब्रह्मचर्य का जीवन बिताना चाहता हूं । बोलो, मेरा गोत्र क्या है ?" मां ने कहा, "बेटे मैं नहीं जानती कि तुम कौन से गोत्र के हो लेकिन मेरा नाम है जबाला और तुम्हारा सत्यकाम इसलिये तुम हुए जाबाल सत्यकाम।"

सत्यकाम गौतम ऋषि के पास आकर बोला, "भगवन्, मैं आपका अन्तेवासी बनना चाहता हूं। मुझे अपने यहां शरण दीजिये।" गुरु ने नाम-गोत्र पूछा तो उसने कहा, "मेरी मां कहती है अपने यौवन में उसने कइयों की सेवा की है अतः वह नहीं कह सकती कि मेरा गोत्र क्या है, हां उसका नाम जबाला है और मेरा सत्यकाम।" गुरु इस उत्तर से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, "ब्राह्मण के सिवा किसी और में यह बात कहने का साहस नहीं होता। जाओ वत्स, समिधाएं इकट्ठी करो। तुम सत्य से नहीं डिगे इसलिये मैं तुम्हें अपनाता हूं।"

गुरु ने सत्यकाम की प्रशंसा की और उसे चार सौ दुबली-पतली मरियल-सी गाएं सौंपते हुए कहा, "लो वत्स, तुम जंगल में जाकर इनकी देखभाल करो और जबतक इनकी संख्या एक हजारतक न पहुंच जाये तबतक मत लौटना।"

कहानी बड़ी सरल-सी मालूम होती है लेकिन इतने से अंश में ही उस समय के वेदान्त के कई गूढ़ रहस्य छिपे हैं। अन्य कई स्थल पढ़ने से मालूम होता है कि छांदोग्य उपनिषद् की रचना से कुछ ही पहले सत्यकाम एक बहुत बड़ा गुरु हो गया था। लेकिन उसका जन्म बहुत ही नीच स्तर पर हुआ था। उसकी मां किसी एक की दासी न थी कि वह मां के स्वामी का गोत्र ले सकता। वह तो भाड़े की परिचारिका थी, उसका कोई गोत्र न था।

इस कहानी से और अन्य संदर्भों से भी पता चलता है कि यद्यपि वर्ण-व्यवस्था प्रचलित थी लेकिन वह किसी की आध्यात्मिक प्रगति में बाधक न होती थी। क्षत्रिय ब्राह्मणों को शिक्षा दे सकते थे, बिना पिता की अनेक संतान उच्चतम और शुद्धतम लोगों के गुरु के आसन पर बैठ सकती थीं। यह कोई अनोखी या असंभव बात नहीं है क्योंकि पुराकाल का इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा है। जात-पांत के आधार पर किसी के लिये आध्यात्मिक जीवन के द्वार बंद करना बहुत पीछे की बात है। सामान्य प्रथा के अनुसार बड़े-बड़े आध्यात्मिक गुरु अधिकतर उच्चतर कुलों के होते थे परंतु यह बात स्वाभाविक परिस्थितियों के अनुसार थी किसी विधिनिषेध के कारण नहीं। इस उदाहरण से हमें मालूम होता है कि पुत्र की स्थिति निश्चित करने में मां का नहीं, बाप की स्थिति का अधिक महत्त्व था। शायद गोत्र का महत्त्व दीक्षा-संबंधी अनुष्ठानों के कारण अधिक था, शायद सत्यकाम भली-भांति जानता होगा कि वह एक परिचारिका का अवैध पुत्र था फिर भी गुरु के आगे सच्ची बात कहने के लिये वह मां से अपने बाप का नाम पूछता है। निकृष्टतम बात जानकर भी वह उच्चतम आध्यात्मिक जीवन के लिये आग्रह करता रहा। उसे इस नीच आधार के कारण उस उच्च पद से वंचित किये जाने का कोई भय न था। गुरु भी उसकी स्पष्टता और सच्चाई से प्रभावित हुए। उन्होंने कह दिया ब्राह्मण के सिवा कोई और ऐसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सच्ची बात स्वीकारने की हिम्मत न करेगा। यह स्पष्ट है कि गुरु का मतलब यह नहीं हो सकता कि सत्यकाम का पिता ब्राह्मण रहा होगा बल्कि यह कि सत्यकाम की सत्यवादिता उसे ब्राह्मणत्व प्रदान करती है। क्षत्रिय ऐसी बात खुलकर कहने से सकुचाता क्योंकि स्वभावतः क्षत्रिय मान-मर्यादा प्रिय होता है और अपमानजनक बात से दूर रहता है लेकिन सच्चा ब्राह्मण मान-अपमान को समान रूप में लेता है। वह केवल सत्य और उचित की परवाह करता है। गुरु इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि सत्यकाम सत्य से च्युत नहीं हुआ इसलिये वह साधक होने योग्य, उच्चकोटि का ब्राह्मण है।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि दीक्षा देने के तुरंत बाद गुरु ने अपने इस होनहार शिष्य को कोई शिक्षा देने की जगह चार सौ मरियल गाएं सौंप दी जिनके स्वस्थ होने की अपेक्षा मरने की संभावना ज्यादा थी। आखिर यह व्यवस्था क्यों? क्या यह परीक्षा थी? क्या यह अनुशासन था? लेकिन गुरु तो पहले ही परीक्षा ले चुके थे और शिष्य कसौटी पर खरा उतरा था। फिर यह नयी चीज क्या थी?

पूर्ण मनुष्य में चौमुखी सत्ता होती है और वैदान्तिक साधना पूर्ण या सिद्ध मानव तैयार करना चाहती है। जब ईसा ने कहा था "वैसे ही पूर्ण बनो जैसे स्वर्ग में रहनेवाले तुम्हारे पिता पूर्ण हैं" तो वे वेदान्त के साधर्म्य—भगवान् जैसे बनने—की शिक्षा को साधारण लोगों की भाषा में रख रहे थे।

(अपूर्ण)

(दिसम्बर ७९ आर्काइव्ज में छपे अपूर्ण लेख "वैदिक इंटरप्रेटेशन्स" के आधार पर)

स्मृति—मानसिक और चैतन्य

हम बातें भूल क्यों जाते हैं?

ओह! मेरे विचार में इसके कई कारण हैं। पहला, क्योंकि व्यक्ति याद रखने के लिये स्मरण-शक्ति का प्रयोग करता है। स्मृति एक मानसिक उपकरण है और मस्तिष्क की रचना पर निर्भर है। तुम्हारा मस्तिष्क लगातार विकसित होता रहता है, जबतक कि उसका ह्रास ही न शुरू हो जाये, किंतु तो भी उसका विकास बड़े लम्बे समयतक चलता रह सकता है, शरीर के विकास से कहीं अधिक लम्बे समयतक। और इस विकास में, आवश्यक रूप से कुछ वस्तुएं दूसरी वस्तुओं का स्थान लेंगी। और जैसे-जैसे मानसिक यंत्र विकसित होता जायेगा, वैसे-वैसे जिन वस्तुओं का काम या विकास की क्रिया में जिनका अस्थायी समय समाप्त हो गया है वे अपना स्थान इस सबके परिणाम को देकर मिट सकती हैं। इस प्रकार जो कुछ तुम जानते हो उस सबका परिणाम उसके अंदर, सजीव रूप में, रह जाता है, किंतु जिस मार्ग से उसतक पहुंचा गया है वह पूरी तरह से धुंधला पड़ जाता है। दूसरे शब्दों में, यदि स्मृति अच्छी तरह कार्य कर रही है तो इसका यह अर्थ होगा कि केवल परिणाम ही याद रहेगा ताकि वह आगे बढ़ने के लिये और नयी रचना के लिये आवश्यक तत्त्वों को सुरक्षित रख सके। यह बात मन में कठोर रूप से वस्तुओं को जमा रखने की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है।

अब, एक पक्ष इसका और भी है। मानसिक स्मृति दोषपूर्ण चीज है, उसके बाहर भी चेतना की अवस्थाएं हैं। व्यक्ति चेतना की जिस किसी अवस्था में हो, वह अवस्था उस समय के देखे हुए विषयों को, वे चाहे जो क्यों न हों, अंकित कर लेती है। यदि तुम्हारी चेतना पारदर्शी, विशाल एवं सशक्त रहती है, तो तुम किसी भी समय, एकाग्र होकर, उस सबको जो तुमने पहले कभी किया, सोचा, देखा, परखा है अपनी सक्रिय चेतना में ला सकते हो; अपने अंदर चेतना की उसी अवस्था को लाकर इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सबको याद कर सकते हो। और वह फिर कभी नहीं भूलता। हजारों वर्ष जीवित रहने पर भी तुम उन्हें याद रख सकते हो। अतएव, यदि तुम किसी वस्तु को भूलना नहीं चाहते, तो उसे तुम्हारी चेतना को याद रखना होगा, मानसिक स्मृति को नहीं। तुम्हारी मानसिक स्मृति तो मिट भी जायेगी, धुंधली भी पड़ जायेगी, और फिर नयी वस्तुएं पुरानी वस्तुओं का स्थान ले लेंगी। किंतु तुम जिन वस्तुओं के प्रति सचेतन हो, उन्हें कभी नहीं भूलते। तुम्हें केवल चेतना की उसी अवस्था को वापिस लाना होगा। और इस प्रकार तुम हजारों वर्ष पहले की बातें भी याद रख सकते हो, पर केवल तब यदि तुम चेतना की उसी अवस्था को लाना जानो। इसी प्रकार व्यक्ति अपने पूर्व जन्मों को याद रख सकता है। वे कभी नहीं मिटतीं, जब कि जो कुछ तुमने अपने बचपन में भौतिक रूप में किया था वह याद मिट जाती है, तुम्हें ऐसी कई बातें बतायी जायेंगी जो तुम्हें इस समय याद नहीं। वह सब तत्काल ही धुल-पुंछ जाता है। कारण, मस्तिष्क लगातार बदलता रहता है और कुछ निर्बल कोषाणुओं के स्थान पर नये अधिक सशक्त कोषाणु आ जाते हैं, और अन्य संयोग एवं मस्तिष्क-संबंधी रचनाएं आती हैं। इस प्रकार, जो पहले था वह मिट जाता है या विकृत हो जाता है।

हजारों वर्ष पहले जो हुआ था वह भी याद रह सकता है!

हां, यदि तुम उस विशेष स्थान पर जाओ, यदि तुम हजारों वर्षों पहले के स्थान के संपर्क में आने में सफल हो सको। एक बात और है (मेरा ख्याल है मैंने यह कहीं लिखा भी है), पृथ्वी की चेतना का अपना लिखित अभिलेख है, और यदि तुम उस स्थान पर पहुंचना जान जाओ, तो तुम केवल अपने जीवन को ही नहीं बल्कि उस सबको भी जान सकते हो जो पृथ्वी पर घट चुका है। वहां सब अंकित रहता है, और यह चेतना का तथ्य है।

किंतु, मां, व्यक्ति यह सब कैसे याद रखता है, क्योंकि जब वह अपना शरीर बदल लेता है, तो मन . . .

मैंने अभी तो बताया है, मेरे बच्चे, शायद तुमने सुना नहीं कि मैंने क्या कहा। मैंने कहा था कि मानसिक स्मृति के साथ सब कुछ मिट जायेगा; अपने वर्तमान जीवन में भी तुम ऐसी कई बातों को जो बीस, तीस या चालीस वर्ष पहले हुई थीं, याद नहीं रख सकते। किंतु चेतना की अवस्था मानसिक अवस्था नहीं होती। इसका मन से कोई संबंध नहीं होता। यह सच है कि अधिकतर मन शरीर के विघटन के साथ ही समाप्त हो जाते हैं, सिवाय उस अवस्था के जब कोई भली-भांति निर्मित, बहुत अच्छी तरह से ''सुगठित'' एवं संघटित विशेष रचना हो जो टिक सकती है। किंतु ऐसा बहुत कम होता है। ये केवल अपवाद ही होते हैं। किंतु चेतना बिलकुल ही दूसरी चीज है। चेतना एक सनातन अवस्था है। चेतना की अवस्था एक शाश्वत अवस्था है। सृष्टि चेतना से ही उत्पन्न हुई है और यदि चेतना खींच ली जाये, तो सृष्टि भी न रहेगी। और यदि तुम चेतना के संपर्क में आ जाओ, तो तुम सृष्टि का पूरा इतिहास जान सकोगे, क्योंकि सृष्टि चेतना से ही आती है। चेतना सनातन वस्तु है।

(श्रीमातृवाणी खंड ६ से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनोखा अतिथि

बात एक अनोखे देश की है। वहां की हर चीज अनोखी थी। वहां के पेड़-पौधे, पशु-पक्षी सभी निराले थे। लेकिन सबसे अद्भुत और अनोखी थी एक हिरनी। उसकी बड़ी-बड़ी आंखें हीरों-सी चमकती थीं, उसका कोमल, सुन्दर शरीर सुनहरी झलक से झिलमिलाता था, छलांग मारती तो आकाश को भी नीचे छोड़ जाती। उस अनोखे प्रदेश की हरी-भरी सुगंधित दूब चरते-चरते एक दिन हिरनी ने नीचे झांका। अरे, यह क्या ? . . . नीले, हरे रंग का एक गोला सफेद बादलों के बीच नाच रहा था। हिरनी ने अपनी आंखों को फैलाकर अच्छी तरह देखा। टप . . . टप . . . उसकी विशाल आंखों से मोती टपकने लगे। हाय . . . नाचती गेंद दुःख के भार से दबी जा रही थी। कितने प्राणी रोते थे, चिल्लाते थे और बिलखते हुए टूट-टूट पड़ते थे। उसने देखा हिरनों के झुण्ड भागे जा रहे हैं। उनकी बदहवासी देखकर हिरनी का सिर चकरा उठा। जी में आया आखें बंद कर ले। लेकिन नहीं, वह कायर नहीं है। उसने फिर देखा, सुन्दर सुनहरे सिंह निरीह हिरनों का पीछा कर रहे थे और मौका पाते ही उनके सुकुमार शरीर को तोड़-मरोड़ कर कवलित कर लेते। दोपाये प्राणी तो और भी अजीब थे, बेबात के लड़ पड़ते और बिना कारण अपनी जाति को मारकर फेंक देते या धरती में गाड़ देते।

करुणा से आर्द्र हिरनी ने सोचा, "आह ! क्या जीवन है ! कष्ट, दुःख और आंसू, यही इस गोले की गाथा मालूम होती है। चलो, मैं उस गोले पर ही चलकर देखूं। उनके आंसू पोछूंगी, उनके दुःख-दर्द दूर करूंगी, यहां के जीवन का समाचार सुनाकर उनमें आशा का संचार करूंगी। बेचारे कैसे तड़प रहे हैं। इतने प्रकाश के होते हुए भी अंधों की तरह एक-दूसरे से टकराते रहते हैं, ठोकरें खाकर गिरते हैं और दूसरे उन्हें कुचलते हुए निकल जाते हैं। लेकिन आगे चलकर खुद उनकी भी तो यही दुर्दशा होती है। हाय, आंखें होते हुए भी ये अंधे दीखते हैं। हर एक दूसरे का दुःख बढ़ाने में लगा है। यह प्रकाश और जीवन फैलाता हुआ सूर्य, यह सुधा बरसाता हुआ चन्द्र, ये किरणों के रेशमी सोपान इनके लिये कुछ अर्थ नहीं रखते ? देखने में कितने सुन्दर हैं ये दोपाये ! पर इनके अंदर . . . "

हिरनी सिहर उठी। वह गोले की ओर आंखें गड़ाये देखती गयी, देखती ही गयी। अचानक एक जोर की चीख सुनायी दी। बहुत-से दोपाये मिलकर गोले को फोड़ने की कोशिश कर रहे थे। हिरनी से और न देखा गया। उसने बिजली की तरह छलांग मारी और एक कौंध के साथ धरती पर जा पहुंची। दोपायों में खलबली मच गयी। ऐसा सौंदर्य, ऐसा तेज और ऐसा माधुर्य उन्होंने कभी न देखा था। सौंदर्य पर उनकी आंखें न टिकती थीं, पास जाने का साहस न होता था। हिरनी का जबर्दस्त आकर्षण था लेकिन डर भी कम न था।

हिरनी घने जंगलं में इधर-से-उधर टहलने लगी। यहां के वन-वाटिका, यहां के पर्वत और उपत्यकाएं देखकर वह मग्न हो रही थी। जहां इतना सौंदर्य है, जहां की हवा में आनन्द भरा है वहां का जीवन कुत्सित कैसे हो गया ? यह दुर्गन्ध कहां से आ गई ? यह भय, यह दुःख, यह विलाप कैसे समा गया ? विचारमग्न हिरनी आगे बढ़ती गयी, बढ़ती, बढ़ती ही गयी। अब उसने अपने-आपको दोपायों के नहीं, चौपायों के बीच में पाया। थोड़ी-सी देर में उसके इर्द-गिर्द विस्मित प्राणियों का जमघट लग गया। हर प्राणी हिरणी को अपनी ओर बुलाता था। हिरनी अनायास आगे बढ़ती तो बुलानेवाले प्राणी भाग खड़े होते। हिरनी आश्चर्य में पड़ गयी : "क्या रहस्य है इसमें ? यहां की तो हर बात निराली है, हर चीज में विरोध दीखता है। ये जानवर मेरी ओर देखते हैं, मुग्ध दृष्टि से देखते हैं और फिर ऐसे भागते हैं मानों उनकी जान पर बन आयी हो।"

उस तरफ बहुत से जानवर भागे जा रहे थे। एक भागते सिंह को रोककर हाथी ने पूछा : "अरे !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वनराज ! भागते क्यों हो ?'' सिंह ठिठका, सकपकाया, फिर इधर-उधर देखकर बोला : ''अरे, देखते नहीं ? उसकी हीरों-सी आंखों में से ज्वाला निकल रही है। मुझे मरना थोड़े ही है, अपनी खैर चाहो तो तुम भी भाग चलो।''

सिंह से लेकर सियारतक सबका यही हाल था। हिरनी को बुरा तो लगा पर कर ही क्या सकती थी ? वह धीरे-धीरे जंगल के एक छोर पर आकर खड़ी हो गई। दूर से भयंकर कोलाहल जंगल की ओर आता हुआ सुनाई दिया। समान शत्रु की गंध पाकर सांप भी नेवले का डर भूल जाता है। दोपायों का कोलाहल सुनकर जानवर भी हिरनी का डर भूल गये। उससे भी भागने का आग्रह करने लगे। हिरनी ध्रुव बनी खड़ी रही। अपनी जान सभी को प्यारी होती है। हिरनी को उसके हठ के साथ छोड़कर सभी प्राणी अपने-अपने प्राण बचाने के लिये सिर पर पैर रखकर भागे। कोलाहल पास आता गया। जंगल के चौपाये इससे परिचित मालूम होते थे पर उसके लिये तो यह नया अनुभव था। झुंड में अनेक दोपाये थे। प्रत्येक का रंग अलग, रूप अलग और शरीर का गठन भी अलग था। कइयों के हाथ में विचित्र चीजें थीं जिनसे वे भयंकर आवाजें निकालते थे। दोपाये जिस प्राणी की ओर उस चीज को फेंकते वही ढेर हो जाता था। दोपाये खुशी-खुशी उसके पास जाते, उसे घसीटते, उसकी खाल खींचते और टुकड़े करके उसे चबा जाते।

हिरनी का हृदय मुंह को आने लगा। ओह! ये प्राणी अपने-आपमें काफी सुंदर थे किंतु इनके काम कैसे असुन्दर, असुन्दर ही नहीं, घिनौने थे ! हिरनी को देखते ही भीड़ ठिठक गयी। धीरे-धीरे कानाफूसी होने लगी। आपस में कुछ बात करके बहुत से प्राणी अदृश्य हो गये। फिर धीरे-धीरे एक दोपाया जरा-सी घास लेकर पुचकारता हुआ हिरनी के नजदीक आने लगा।

हिरनी को उसकी मूर्खता पर दया भी आयी और हंसी भी। सोचने लगी : ''सचमुच यह प्राणी आंखोंवाला होते हुए भी अंधा है। मेरे चारों ओर घास है, फिर भी वह मुझे घास दिखाकर ललचाने की कोशिश कर रहा है। क्या हर्ज है ? चलो, चली जाऊं उसके पास। मैं यहां मदद करने ही तो आयी हूं, उसे अपने इन्द्रधनुषी रंगों से झिलमिलाते सुन्दर प्रदेश और उसके प्राणियों की बातें सुनाने आयी हूं। पास न गयी तो बात कैसे होगी ? उसके दुःख को कैसे हल्का करूंगी ?''

अपनी नाजुक गर्दन को आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ाते हुए हिरनी दोपाये के पास आकर खड़ी हो गयी। दोपाये ने एक हाथ से कुछ इशारा किया और कहीं से एक प्राणी झटपट निकल आया। दोनों फुसफुसाने लगे। एक बोला : ''वाह ! देखा कैसा फंसाया !''

दूसरा गर्व से फूलकर बोला : आखिर मुझे समझ क्या रखा है ? उड़ती चिड़िया गिरानेवालों में से हूं।''

हिरनी ने उनकी बकवास सुनी तो मन-ही-मन मुस्कराई। ''सच, यह प्राणी है तो महामूर्ख, पर समझता है अपने-आपको बुद्धि का खजाना। सच यह प्राणी महामूर्ख है !'' हिरनी ने मन-ही-मन कहा। ''खैर, जैसा भी हो, मैं उसकी मदद करने आयी हूं, उसके दोष देखने नहीं।''

थोड़ी देर बाद हिरनी ने देखा कि धीरे-धीरे सारे दोपाये उसे घेरकर खड़े हो गये। हिरनी सबकी ओर बढ़ती, कोई उसका सिर सहला देता और कोई उसे घास खिला देता। हिरनी हर एक के पास बिना झिझक चली जाती थी। फिर से दोपाये आपस में कानाफूसी करने लगे।

हिरनी ने सोचा : ''हां, अब सबके साथ मेरी अच्छी दोस्ती हो गयी है। अब समय आ गया है कि मैं उनको उस प्रदेश की कहानी सुनाऊं और उस प्रदेश के प्राणियों की बात कहूं, लेकिन कैसे कहूं ?''

अचानक उसे ख्याल आया : ''मैं गाना गा सकती हूं। मैं इन्हें गाना गाकर सुनाऊंगी।''

और हिरनी ने बहुत ही मधुर मृदु कंठ में गाना गाना शुरू किया। और गाने-ही-गाने में सूर्य के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रदेश, इन्द्रधनुष के देश और अनोखे प्राणियों की बातें सुनाने लगी। सारे-के-सारे प्राणी एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे। उनमें से एक ने कहा :

"हूं ! भाई, गाना लगता तो बहुत अच्छा है, मधुर गला है उसका, लेकिन पता नहीं क्या बकर-बकर कर रही है।"

तो दूसरा बोला : "हां, भई, आखिर हम हैं मनुष्य, सबसे ऊंचे प्राणी। और वह ठहरी हिरनी। चाहे जितनी सुंदर क्यों न हो, चाहे जितनी अच्छी क्यों न हो, है तो हिरनी, यानी, जानवर। वह क्या बोलेगी हमारे सामने ?"

ये लोग अपने-आपको शिकारी कहते थे, शिकार इनका पेशा था। ये जानवरों को मारते और मारकर गर्व से फूल उठते थे। शिकार ही इनका मुख्य भोजन था। हमारी हिरनी शिकारियों से घिरी थी—क्रूर, जीभें लपलपाते, खून के प्यासे शिकारियों से। लेकिन उनमें एक शिकारी का चेहरा सौम्य था। इनमें से वही सबसे अच्छा और सहृदय दीखता था। उसने कहा :

"अरे, तुम समझ नहीं पा रहे हिरनी गाना गाकर क्या कह रही है ? जरा कान लगाकर सुनो, हिरनी कह रही है : 'हे दोपायो, मैं उस सूर्य के प्रदेश से आयी हूं जहां सब कुछ सुंदर है, सब कुछ प्रकाशमय है, जहां सिर्फ मैत्री-ही-मैत्री है। मैं तुम्हें उस देश की राह दिखाऊंगी; चलो, मेरे साथ चलो'।"

दूसरों ने कहा : वाह ! बनता है, इसे कैसे मालूम कि वह क्या कह रही है ? जानवरों की बोली समझता है यह ?

सौम्य दीखनेवाले शिकारी ने उत्तर दिया : "मैं भली-भांति समझता हूं इसकी भाषा। कभी-कभी जब मैं ऊपर देखता था तो मुझे यह हिरनी दिखायी देती थी। इसे धरती पर बुलाने की उत्कट इच्छा थी मेरे अंदर, आश्चर्य नहीं मेरी पुकार सुनकर ही धरती पर आयी हो।"

"हुं", एक ने कहा, "तू तो हमेशा कहानियां बनाता रहता है। हमें तो बिलकुल ढपोर शंख समझ लिया है तूने। अच्छा, बोल, वह और क्या कह रही है ?"

"वह कह रही है उस प्रदेश में तुमसे भी सुंदर प्राणी हैं।"

एक मोटे थुलथुले आदमी ने अपनी तोंद को बड़े अहोभाव से देखते हुए कहा : "मनुष्य से भी सुंदर प्राणी ! हां ! कभी सुना भी है ? गप, कोरी गप !"

सौम्य व्यक्ति ने कहा : "हमें बिना जाने निर्णय न करना चाहिये। मुझे उसकी बात असंभव नहीं लगती। देखो, जब धरती पर बंदरों का राज्य रहा होगा तो सभी सोचते होंगे : 'आहा ! बंदर कितना होशियार है ! कितना चपल है, कितना सुंदर है !' कहते हैं हम उसी बंदर से विकसित हुए हैं। उसी तरह हो सकता है कि मनुष्य से भी सुन्दर कोई और जाति बाद में आनेवाली हो।"

ये बातें चल ही रही थीं कि इनमें से किसी बुद्धिमान् ने कहा : "अरे, भई, हिरनी का क्या है ? वह तो जंगलों में मारी-मारी फिरती है। हम उसके पीछे-पीछे कहां खाक छानते फिरेंगे। और तू, भाई सौम्य, तू कहता है कि हिरनी किसी और प्रदेश की बात कर रही है। वह कह रही है, 'तुम सब सूर्य-किरणों द्वारा सूर्य के साथ जुड़े हुए हो। सूर्य के अंश हो। तुम लोग आपस में लड़-झगड़ कर क्या पाते हो ? तुम आपस में एक-दूसरे को पहचानो तो तुम्हारे दुःख-दर्द सब खतम हो जायेंगे।" यह सब तो ठीक है, लेकिन देखा किसने है कि सूर्य के साथ सचमुच हमारा नाता है भी ? देखा किसने है उस प्रदेश को जिसके बारे में हिरनी इतनी कहानियां सुनाती है ? ना, भई, मैं तो नहीं जाऊंगा वहां।"

दूसरा कहने लगा : हां, भई, तू ठीक कहता है। ऐसे इधर-उधर मारे-मारे घूमते रहने से कभी कुछ हुआ है ? हिरनी का क्या है ? वह तो एक छलांग मारकर यह जा वह जा। हम से कहती है, 'मेरे गले से लिपट जाओ, मैं खुद तुम्हें उठाकर ले जाऊंगी उस प्रदेश में।' उसका भरोसा क्या ? कहीं गिर गयी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो उसकी हड्डी-पसली एक हो जायेगी, शायद मरकर अपने प्रदेश में जा पहुंचे। उसका तो कुछ नहीं बिगड़ेगा, लेकिन हमारा क्या होगा? हं . . . हमारे घर हैं, द्वार हैं, कितने लोग हैं, कितने बच्चे हैं हमारे! कलप-कलप कर बेहाल हो जायेंगे। ना, बाबा, मुझे नहीं पड़ना इस झमेले में . . .। लेकिन हिरनी को छोड़ना भी तो मुश्किल है। ओह! कितनी मनोहर है! कितनी सुंदर है! कितने मीठे गले से गाना गाती है! भई, क्या कहूं, मुझे तो इस हिरनी ने फांस लिया है बुरी तरह से। कहीं इसके पीछे पागल न हो जाऊं। मैं न तो इसे छोड़ सकता हूं और न इसका साथ दे सकता हूं। वह जो बातें कर रही है वे मुझे सनक से भरी लगती हैं। न तो मेरे पल्ले पड़ती हैं और न मेरे गले से उतरती हैं। क्या करूं?"

एक और शिकारी बोल पड़ा : "अच्छा, हम ऐसा क्यों न करें? हिरनी के साथ जाने की जगह हिरनी को यहीं रख लें, इसे जाने ही न दें।"

एक और बोला : "ठीक बात है। लेकिन मेरे मन में एक और विचार आया है। आम के आम और गुठलियों के दाम। यह भी रहेगी और हमारी जेबें भी भारी हो जायेंगी। हिरनी को ले जाकर चक्रवर्ती महाराज मानसिंह के पास बेच देंगे। कैसी हीरों जैसी आंखें हैं उसकी, और कैसा सुनहरा रंग। कौन जाने, सचमुच सोने की बनी न हो। महाराज बहुत खुश होंगे इसे पाकर। मैं सोचता हूं एक करोड़ से कम तो क्या देंगे।"

दूसरे ने विरोध करते हुए कहा : "हं . . . हं . . . एक बार बेच दिया तो फिर हमे क्या मिलेगा? चलो, हम ऐसा करते हैं, जैसे सरकस में लोग जानवरों को पकड़कर चालाकियां करना, गुल्लाटियां खाना, कलाबाजियां करना, आग के चक्करों से कूदकर निकल जाना सिखाते हैं, वैसे ही हम भी हिरनी को ये सब तमाशे सिखायेंगे। और चारों ओर तमाशा दिखाते फिरेंगे, इससे खूब पैसा आयेगा और हम धनवान् बन जायेंगे। मेरा ख्याल है कि हिरनी को भी अच्छा ही लगेगा और न लगे तो हमारी बला से! चाबुक सब कुछ अच्छा लगवा देगा। कहो क्या राय है?"

हिरनी इन सब की ये स्वार्थ-भरी ऊटपटांग बातें सुन-सुन कर दुःखी होती और आश्चर्य से कभी इसकी ओर, कभी उसकी ओर ताकती थी। अबतक उसे पता लग चुका था कि इसी दोपाये प्राणी का नाम मनुष्य है, और ये सब शिकारी हैं। मन-ही-मन हिरनी कहने लगी : "ओहो, मनुष्य कितना भोला है, कितना मूर्ख है और साथ ही कितना अंध-विश्वासी! सत्य से तो वह बिदकता फिरता है। मेरे लिये इतना प्रेम दिखाता है, पर मेरी बात पर भी विश्वास नहीं करता।"

उसी समय सौम्य बोल पड़ा : "तुम लोग विश्वास करो या न करो, मुझे हिरनी की बात पर विश्वास है। मैं उस देश में जाने के लिये तैयार हूं।"

हिरनी बहुत खुश हो गई। चमकती हुई आंखों से उसने सौम्य की ओर देखा। सौम्य हिरनी की गरदन पर प्यार से हाथ फेरता हुआ बोला : "चलो, हम तुम्हारे पीछे-पीछे चलेंगे। तुम्हारे साथ पहाड़ चढ़ने पड़ें या नदियां फांदनी पड़ें, सभी में एक आनंद होगा। मुझे तो यहांतक विश्वास है कि तुम्हारे साथ रहकर गिरने में और चोट खाने में भी मजा आयेगा। बहुत हुआ तो किसी कगार से फिसल जायेंगे या नदी में जा डूबेंगे। यह भी कोई बड़ी बात न होगी।"

सौम्य के साथ-ही-साथ हिरनी का जादू और कइयों पर चल गया। न चाहते हुए भी कई उसके पीछे हो लिये। हिरनी उन सबको लेकर पहाड़ियों की ओर जाने लगी। बीच-बीच में जब शिकारी और मनुष्य थक जाते या शंकाएं करके उसे रोकने की कोशिश करते तो हिरनी अपने मधुर स्वर में गाना गाकर उनके अंदर नया उत्साह जगाती और आगे बढ़ने की प्रेरणा देती। इस तरह वे सब चलते, ठिठकते, रुकते और दौड़ते पहाड़ की एक ऊंची चोटी पर जा पहुंचे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहांतक पहुंचते-पहुंचते कई मनुष्य रास्ते में ढेर हो चुके थे। उनका स्थान लेने के लिये बहुत से नये लोग आ जुटे थे। भीड़ बढ़ती जाती थी, लेकिन उधर हिरनी का शरीर दुर्बल होता जा रहा था। आंखों में वही चमक थी, वाणी में वही उल्लास था, उसके गीतों में और भी मादकता आ गयी थी। जो एक बार सुन लेता वह उसका हो जाता था, लेकिन जहां कड़ी चढ़ाई होती, जहां तेज धारा दिखायी देती, किसी तरह भी जान जोखिम में होती तो अपना भार हिरनी पर लादने में, फल-फूलों की कमी होती तो उसका हिस्सा भी उदरस्थ करने में किसी को संकोच न होता था। इसे तो वे अपना अधिकार और हिरनी की भलाई मानते थे।

अब अंतिम चढ़ाई नजदीक थी। पहाड़ सरो के पेड़ से भी ज्यादा सीधा खड़ा था। पैर रखने के लिये जगह न थी। रपटने पर भीषण खाई गोद में लेने के लिये बैठी थी। हिरनी ने आगे बढ़ने के लिये इशारा किया। शिकारी एक कदम बढ़ने को तैयार न थे। इस जगह की सुविधा छोड़कर कौन संदिग्ध आनंद के लिये जान की बाजी लगाये। वह उन्हें आगे ले जाने पर कटिबद्ध थी और वे उसे रोके रखने के लिये कृत-संकल्प। प्रेम का तंतु पीछे न हटने देता था और वर्तमान का मोह पैरों को जकड़े हुए था।

हिरनी की समझ में न आता था कि उसकी सहायता के बावजूद इन्हें इतना डर क्यों लग रहा है। वह उन्हें आगे ले जाने के लिये, उन्हें सूर्य-लोक में पहुंचाने के लिये उत्सुक थी, वे उसे नीचे खींचने के लिये लालायित। वे चौबीसों घण्टे उसे घेरे रहते थे। हिरनी ने धीरे-धीरे उनकी दी हुई दूब, घास या छोटे-मोटे फूल खाना भी छोड़ दिया। सारे शिकारियों की चिंता और बढ़ गयी क्योंकि पहले चाहे कुछ रहा हो, अब हिरनी सब को बहुत प्रिय थी। कोई नहीं चाहता था कि हिरनी उन्हें छोड़कर चली जाये।

वे सोचते थे : "अब क्या होगा ? हिरनी को कुछ हो गया तो ?"

लेकिन कोई उसका साथ देने को भी तैयार न था। एक सौम्य ही हिरनी के पीछे-पीछे कहीं भी जाने को तैयार था। सब यही सोचते थे कि हिरनी उनकी बात मानकर सुरक्षित स्थानों की ओर चलना स्वीकार कर लेगी। लेकिन धीरे-धीरे क्या देखा उन्होंने, हिरनी का शरीर दुर्बल होने लगा। उसकी चमकती हुई हीरे-सी आंखें छोटी होती गयीं, उनकी ज्योति बुझती गयी। सब-के-सब मनुष्य चिंतातुर हो उठे। सब उसे घेरकर और भी ज्यादा प्यार दिखाने लगे। अपनी ओर से पूरी कोशिश करने लगे कि हिरनी कुछ खाये, कुछ पिये, लेकिन सब बेकार। अब चतुर सयाने शिकारी आशा छोड़कर बैठ गये। उन्हें दुःख तो बहुत था पर वास्तविकता से आंखें कैसे मूंद लेते ? उनमें कानाफूसी होने लगी :

"अब यह जा तो रही है, फिर इसका लाभ क्यों न उठाया जाये ?"

छिपे-छिपे उसके मांस और चमड़े का भाव-ताव होने लगा। सौम्य यह सब देखता था और खून के घूंट पीकर रह जाता था। वह हिरनी से सटा बैठा रहता और कभी-कभी आंसू बहाया करता।

शिकारियों की आंखें हिंसा-भाव से भर उठीं। वे धीरे-धीरे हिरनी के नजदीक आते गये। सौम्य का माथा ठनका और वह उछलकर क्रुद्ध सिंह की तरह खड़ा हो गया। वह आग बरसाती हुई आंखों से चारों ओर देखकर चिल्लाया :

"खबरदार, एक कदम भी आगे न रखना। मैं अकेला ही तुम सब से लोहा लेने के लिये काफी हूं। हिरनी की ओर बढ़ने से पहले मेरे साथ ताकत आजमानी होगी।"

सौम्य की ललकार सुनते ही सारे शिकारी ठिठक गये। उनकी आंखों में हिंसा की जगह भय ने ले ली। उनके पांव जमीन में गड़ गये। जो जहां था वहीं पथरा गया। हिरनी भी हिले-डुले बिना आंखें फाड़े सौम्य की ओर एकटक देखने लगी। शायद उसके चेहरे पर स्मित खेल रहा था। लेकिन उसे देखने की सुध ही किसे थी ? सौम्य की समझ में न आ रहा था कि अब क्या करे। उसका मस्तिष्क एकदम खाली था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अचानक सौम्य की आंखें भगवान् भास्कर की ओर उठ गयीं और उसके हाथ जुड़ गये। दिव्य मधुर कंठ से निकलनेवाली प्रार्थना सारे वातावरण में फैल गयी। धरती और गगन का एक-एक कोना गूंजने लगा। ऐसा लगता था मानों स्वयं धरती के हृदय से निकलनेवाला स्वर आलोक को निमंत्रण दे रहा था, प्रेम का आवाहन कर रहा था। शिकारियों के तपते दिलों ने शीतल समीर के झोंके का अनुभव किया। उन्हें लगा कि उनके बंधन टूट रहे हैं और वे हल्के होते जा रहे हैं।

निःस्वार्थ प्रार्थना के उत्तर में निरभ्र आकाश से वर्षा शुरू हो गयी। हल्की-फुल्की वर्षा, मानों फूल झर रहे हों। और फूल भी कैसे ! सुनहरी ज्योति की फुहारों से बने ! विस्मित सौम्य उस स्निग्ध वर्षा में नहाने लगा। उसे लगा कि वर्षा हिरनी और शिकारियों को भी भिगो रही है। आनंदमग्न होकर सौम्य ने फिर से गगनमंडल की ओर ताका। उसने देखा एक भव्य और शालीन हिरन नीचे की ओर झांक रहा था। उसका शरीर भी हिरनी की तरह स्वर्णिम था। उसके सींग बहुरंगी रत्नों से जगमगा रहे थे मानों किसी सम्राट् का मुकुट हो। हिरन ने एक छलांग मारी और हिरनी के सामने आ खड़ा हुआ। उसकी आंखें भी हीरों-सी चमक रही थीं। उसमें से मधुर, शीतल ज्योति निकल रही थी। वह ज्योति सभी दोपायों के हृदयों को भेदती हुई उनकी अतल गहराइयोंतक जा रही थी। उसके आगे कोई परदा न टिक सकता था।

कौन जाने यह विलक्षण हिरण भी सूर्य के प्रदेश से ही आया हो। देखने में इतना विशालकाय, पर भार में फूलों की सुगन्ध से भी हल्का। उसका आकर्षण भी हिरनी से कम न था लेकिन उसके साथ आंखें मिलाने का साहस न होता था किसी को।

उसने हिरनी को अपने सींगों पर उठा लिया। धरती से एक आर्तनाद उठा :

''नहीं, नहीं, जाओ मत। हमें छोड़कर मत जाओ। हम सब तुम्हारे हैं। हमें अपना लो।''

धरती की उस गूंज ने शिकारियों के अंतर की आंखें खोल दीं। अचानक उनके हृदय में सूर्योदय हुआ और शायद पहली बार वे हिरनी के बलिदान को समझे। शिकारियों के दल ने एक स्वर हो कहना शुरू किया :

''हे मुक्तिदायिनी, हे अमृतवाहिनी, अपने अगाध प्रेम के कारण ही तू हमारे बीच में उतरी थी। तेरी आहुति ने हमारी आंखें खोल दी हैं। हम पूरी तरह से तेरे हैं।''

हिरन के पीठ पर लेटी हिरनी न मालूम कब गायब हो गयी। उसके स्थान पर एक अद्भुत देवी की आकृति खड़ी थी। सौम्य ने सुना था कि वैदिक काल में मनुष्यों को देवी-देवताओं के दर्शन हुआ करते थे। सौम्य ने उनका वर्णन तो पढ़ा था पर यह आशा न की थी कि उन्हें देख पायेगा। देवी के भी मनुष्य जैसे ही हाथ-पांव थे, हां, मनुष्य के-से किंतु कितने भिन्न। ऐसा लग रहा था कि उनका शरीर ज्योति और आनंद की सघनता से बना है। देवी ने मुड़कर हिरन की आंखों में देखा मानों सूचना दे रही हों कि समय आ गया है। देखते-देखते हिरन भी एक ज्योर्तिमय कनकोज्वल देव के रूप में बदल गया जिसकी आंखों में से प्रेम की ज्वाला निकल रही थी। दोनों ने सौम्य और उसके साथियों की ओर दृष्टि डाली।

सबने अनुभव किया कि वे किसी अथाह आनंद के सागर में खो गये हैं। किसी को अपनी सुध-बुध न थी। नयी सृष्टि का संगीत शुरू हो चुका था।

''प्राणानामयि सत्य केवल भवन् प्राणोऽसि नो ज्योतिषां
ज्योतिस्त्वं ननु लोकतारक परप्रेमन् प्रसीद प्रभा।
संवित्तौ तव सन्निधेः स्थितिमतो विच्छेदलेशं विना
पूर्णं पूर्णमहं विभातविभवैरुन्निद्रितः स्यामहम्॥

(हे जीवन के एकमात्र सत्य, तू हमारा जीवन है, तू ज्योतियों की ज्योति है। हे जगदुद्धारक परम प्रेम, प्रभो, हमपर कृपा कर। वर दे कि हम तेरी उपस्थिति के भान में अधिक-से अधिक जाग्रत् हों।)

—अनुबेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीअरविंद का कार्य और उनकी शिक्षा

श्रीअरविंद का कार्य है एक अनोखा पार्थिव रूपांतर।

*

श्रीअरविंद ने अतिमानसिक चेतना को मानव शरीर में अवतरित किया। उन्होंने लक्ष्यतक पहुंचने के लिये जिस मार्ग का अनुसरण करना चाहिये उसकी प्रकृति और उसपर चलने का तरीका भी बताया। इतना ही नहीं, उन्होंने अपनी व्यक्तिगत उपलब्धि के द्वारा हमारे सामने उदाहरण भी रखा; उन्होंने हमारे सामने प्रमाण रखा कि यह किया जा सकता है और बताया कि उसे करने का समय यही है।

*

क्षण-भर के लिये यह विश्वास करने में न हिचकिचाओ कि श्रीअरविंद ने परिवर्तन का जो महान् कार्य ले रखा है उसकी पूर्णाहुति सफलता में ही होगी। क्योंकि यह वस्तुतः एक तथ्य है : हमने हाथ में जो काम लिया है उसके बारे में संदेह की कोई छाया भी नहीं है . . . । रूपांतर होनेवाला है : कोई चीज उसे नहीं रोक सकती, सर्वशक्तिमान् के आदेश को कोई विफल नहीं कर सकता। समस्त शंकाशीलता और दुर्बलता को उठा फेंको और उस महान् दिवस के आने से पहले, जब यह लंबा युद्ध चिर-विजय में बदल जायेगा, कुछ समय वीरता के साथ सहन करने का निश्चय करो।

*

हमें श्रीअरविंद पर श्रद्धा है।

वे हमारे लिये उस चीज के प्रतिनिधि हैं जिसे हम अपने लिये शब्दों के द्वारा गढ़ते हैं, जो हमें अपने अनुभव को व्यक्त करने के लिये अधिक-से-अधिक यथार्थ मालूम होते हैं। स्पष्ट है कि ये शब्द अपने अनुभव को रूप देने के लिये हमारी दृष्टि में अच्छे-से-अच्छे हैं।

लेकिन अगर हम अपने उत्साह में यह विश्वास कर लें कि ये शब्द ही, श्रीअरविंद क्या हैं और उन्होंने हमें क्या अनुभूति दी है इसे व्यक्त करने के लिये उपयुक्त हैं, तो हम मतांध बन जायेंगे और एक मजहब की नींव डालने की तैयारी में होंगे।

जिसे आध्यात्मिक अनुभूति और श्रद्धा हो, वह उसे अपने योग्य सबसे अधिक उपयुक्त शब्दों में रूपान्वित करता है।

लेकिन अगर उसे यह विश्वास हो कि इस अनुभूति और श्रद्धा को रूपान्वित करने के लिये बस यही एकमात्र शुद्ध और उपयुक्त रूप है, तो वह मतांध बन जाता है और एक मत बनाने की ओर प्रवृत्त होता है।

*

हर एक के अपने विचार होते हैं और वह श्रीअरविंद के लेखों में से अपने विचारों का समर्थन करनेवाले वाक्य खोज निकालता है। जो लोग इन मतों का विरोध करते हैं वे भी उनके लेखों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुकूल वाक्य पा सकते हैं। पारस्परिक विरोध इसी तरह काम करते हैं। जबतक वस्तुओं के बारे में श्रीअरविंद की समग्र दृष्टि को न लिया जाये तबतक सचमुच कुछ नहीं किया जा सकता।

(१० अक्तूबर, १९५४)

संभवन की शाश्वतता में प्रत्येक अवतार एक अधिक पूर्ण सिद्धि का उद्घोषक और अग्रदूत होता है।

फिर भी लोगों में हमेशा यह वृत्ति रहती है कि भविष्य के अवतारों के विरुद्ध भूतकाल के अवतार की पूजा करें।

अब फिर से श्रीअरविंद आगामी कल की उपलब्धि की जगत् के सामने घोषणा करने आये हैं; और फिर से उनके संदेश का उसी तरह विरोध हो रहा है जैसा उनसे पहले आनेवालों का हुआ था।

लेकिन आगामी कल उनके द्वारा प्रकाश में लाये गये सत्य को प्रमाणित करेगा और उनका कार्य पूरा होगा।

(२१ फरवरी, १९५७)

*

तुम्हारी मुख्य भूल यह थी कि तुमने श्रीअरविंद की शिक्षा को आध्यात्मिक शिक्षाओं में से एक मान लिया—और यहां होनेवाले कार्य को भागवत कार्यों के बहुत से पहलुओं में से एक जाना।

इसने तुम्हारी आधारभूत स्थिति को मिथ्या बना दिया और यही सभी कठिनाइयों और गड़बड़ों का कारण है।

अगर तुम्हारे मन और तुम्हारी वृत्ति में यह भूल ठीक कर दी जाये तो दूसरी सब कठिनाइयां आसानी से गायब हो जायेंगी।

तुम्हें यह समझ लेना चाहिये कि विश्व-इतिहास में श्रीअरविंद जिस चीज के प्रतिनिधि हैं, वह कोई शिक्षा नहीं है, कोई अंतःप्रकाश भी नहीं है; यह सीधा परम प्रभु से आया हुआ **निर्णायक कार्य** है।

और मैं बस उस कार्य को पूरा करने की कोशिश कर रही हूं।

(१९६१)

*

एक मित्र के गांधीजी के बारे में लिखे गये निबंध की आलोचना करते हुए मैंने अहिंसा तथा कुछ अन्य सिद्धांतों पर श्रीअरविंद के उद्धरण दिये थे। इन विषयों को गांधीवाद में "स्वतः प्रमाण" माना जाता है। मेरे मित्र ने इसका विरोध करते हुए लिखा है कि श्रीअरविंद के लिये आदर-सम्मान के कारण मुझे अन्य महापुरुषों के बारे में अंधा न हो जाना चाहिये : उसके अनुसार, सभी ने 'सत्य' की झांकी पायी है। मुझे लगा कि औरों के साथ श्रीअरविंद की बात रखकर मैंने भूल की। मैं इस बारे में विस्तार से उत्तर देना चाहता हूं। लेकिन मैं तभी लिखूंगा जब आपकी स्वीकृति मिल जाये। अगर आप अपना उत्तर दे सकें तो मुझे बहुत खुशी होगी।

सत्यतक पहुंचने और उसे अभिव्यक्त करने के लिये मानव जाति ने जो प्रयत्न किया है उसमें उन सबका स्थान है जिन्होंने कोई शोधकार्य किया है, वह चाहे जितना छोटा क्यों न हो, और गांधी उनमें से एक हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन हमेशा यह बड़ी भूल होती आयी है कि इन आंशिक शोधों को परम सामंजस्य में एक करने की जगह इनका विरोध किया गया है। इसीलिये मानवजाति अभीतक अंधेरे में टटोल रही है।

श्रीअरविंद यह प्रकट करने के लिये आये हैं कि यह परम सामंजस्य विद्यमान है। वे हमें उसे खोजने का मार्ग दिखाने आये हैं।

(मार्च १९७०)

(एक समस्या के बारे में)

तुम्हें श्रीअरविंद की चीजें पढ़कर उत्तर जान लेना चाहिये।

(१९ अक्तूबर, १९७२)

*

अगर कोई सावधानी से श्रीअरविंद की चीजें पढ़े तो वह जो कुछ जानना चाहे उसका उत्तर मिल जाता है।

(२५ अक्तूबर, १९७२)

*

श्रीअरविंद ने **सभी विषयों** पर जो कुछ कहा है उसका सावधानी के साथ अध्ययन करने से तुम इस जगत् की सभी चीजों के पूर्ण ज्ञानतक पहुंच सकते हो।

*

श्रीअरविंद का अध्ययन करो और उनकी साधना का अनुसरण करो।

—श्रीमातृवाणी खंड १३

'गैर्वाणी' :

सरस-शिक्षा

प्रस्तुता एका बोधकथा :—

आसीत् कश्चित् महान् पराक्रमी राजा। बहुवार सः विहाराय नगरात् बहिरगच्छत्। अथ एकदा इत्थमेव विहरन् पथिच्युतः स्वसैनिकैः पृथक् भूत्वा वराकः तान् बहुशः अन्वैषयत् किन्तु असफलः तत्प्रयासः। रात्रिः आपतिता, 'रात्रौ अत्रैव कस्यापि गृहे विश्रामः कर्तव्यः मया सम्प्रति' इति विचार्य समीपस्थं कमपि खेटकं प्रविष्टः, तत्र आसीत् कृषकस्य वृद्धा माता। सादरं सा अतिथिम् उपावेशयत् तस्य परिचयं च अपृच्छत्। 'कश्चित् पथिकोऽस्मि मातः' इति कथयित्वा राजा स्वेच्छया स्वपरिचयं न अददात्। श्रान्तः, पिपासितः राजा उपविश्य एव जलं पातुम् ऐच्छत्।

वृद्धया चिन्तितम्—कश्चित् पथिभ्रष्टः जनः गृहमागतः, अस्मै केवलं जलं न दातव्यम्, इक्षुदण्डानां ऋतुः, तावत् इक्षुरसं दद्याम्। तत्क्षणं क्षेत्रात् एकम् इक्षुदण्डं कर्तित्वा राज्ञः सम्मुखे एव सः तस्य रसं

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निष्पीड्य चषकमितम् अददात्। साक्षात् अमृतमासीत् रसः। राजा परितृप्तः, उत्सुकतावशात् अपृच्छत्—मातः ! तव क्षेत्रस्य इक्षुदण्डाः तु शर्करा इव मधुराः।

वृद्धा अभणत्—वत्स, न अस्माकं क्षेत्रमिदम्। राज्ञः अस्ति, वयं तु क्षेत्रपालाः।

'अहो ! तदा त्वं राज्ञे अस्य क्षेत्रस्य करं ददासि' इति अपृच्छत् राजा।

प्रसन्नवदना वृद्धा माता पुनः अगदत्—वत्स ! न जानासि अस्य देशस्य राजा अतिदयालुः, सः अत्यल्पं करं गृह्णाति। प्रचुरं क्षेत्रं वर्तते किन्तु कररूपेण केवलं पञ्चरूप्यकाणि एव देयानि।

वृद्धायाः वचनानि श्रुत्वा हठात् राज्ञः मनसि लोभः जागरितः। तेन चिन्तितम्—अहो ! सत्यमेव, अहम् अत्यल्पं करं गृह्णामि, न एतत् उचितम्। मया नगरं गत्वा महामन्त्रिणा सह अस्य सम्बन्धे विमर्शः कर्तव्यः, ईषत् करं वर्धयित्वा न वस्तुतः कापि हानिः।

राजा निर्वाक् इति दृष्ट्वा वृद्धा अपृच्छत्—वत्स ! किं जातम् ? हठात् चिन्ताकुलः कुतो जातः ?

'न हि मातः न कोऽपि विशेषः। चिन्तयामि केवलं कथं प्राप्स्यामि स्वगृहम् ? मम हितैषिणः चिन्ताकुलाः भविष्यन्ति।' इति उदतरत् राजा।

सस्नेहं वृद्धा अवदत्—पुत्र, अलं चिन्तया। स्वगृहं मत्वा अद्य अत्रैव विश्रम्य, श्वः प्रभाते सुखेन गृहम् गच्छ। सम्पूर्णं दिनमातपे भ्रमित्वा पूर्णतया क्लान्तः राजा किञ्चिदेव परं पुनः पिपासितः जातः, इक्षुरसस्य अमृतसदृशः स्वादः अधुनापि तस्य जिह्वाग्रे अवर्तत, पुनरपि भृशमिच्छा उद्भूता इक्षुरसं पातुम्। राजा मनसि अकथयत् यत् यस्य जनस्य सम्मुखे जनाः करबद्धाः तिष्ठन्ति, यः सर्वदा सर्वेभ्यः ददाति सः एव अद्य चषकमितस्य इक्षुरसस्य अर्थे पुनरपि याचिष्यति ? न एतत् राज्ञः शोभते इति चिन्तयित्वा सः इच्छन् अपि स्वाभीष्टं न प्राकाशयत्। वृद्धा मन्ये अन्तर्यामिनी आसीत्। पलद्वयात् परमेव पुनरपि राज्ञः सकाशं आगत्य अपृच्छत्—'वत्स ! तव पिपासा शान्ता अथ वा दास्यामि अधिकम् इक्षुरसम् ?'

नेत्रहीनः किम् इच्छेत्, नेत्रद्वयम् ! राजा स्वजीवने कदापि पूर्वं तावत् प्रसन्नः न जातः। तत्क्षणं तेन स्वीकृतम्—मातः। कृतार्थः खलु भविष्यामि यदि त्वं किञ्चित् रसं दास्यसि मह्यम्।

'अहो ! किमर्थं पूर्वं न कथितं त्वया ? अपि न कथितं मया यत् स्वगृहवदेव आचर अत्र' इति आक्षेपं कुर्वती वृद्धा अन्यम् इक्षुदण्डमानेतुम् अगच्छत्। अस्मिन् वारे एकस्मात् इक्षुदण्डात् किञ्चिदेव रसः निःसृतः, वृद्धा अन्यं दण्डमानयत् किन्तु चषकः अर्द्धमपि न पूरितः। अन्ते पञ्चानाम् इक्षुदण्डानां रसं निश्चोत्य सा चषकमितं रसं राज्ञे दातुमशक्नोत्।

विस्मयान्वितः राजा अगदत्—मातः ! किमेतत् ! प्रथमं वारं एकस्य इक्षुदण्डस्य रसेन चषकः पूरितः, अस्मिन् वारे त्वया पञ्च प्रयुक्ताः।

वृद्धया भणितम्—वत्स, एतदेव आश्चर्यं तु अहमपि पश्यामि। न च बोधामि अस्य रहस्यम्। धरित्र्याः रसः तदा शुष्यति यदा देशस्य राजा लोलुपः स्यात्, प्रजाहितैषी न स्यात्, किन्तु नैव कथमपि बोधामि यद् अत्रान्तरे एतत् किं जातम् ? अस्माकं राजा तु अतिदयालुः, प्रजावत्सलः, परहितचिन्तकः अस्ति, तस्य राज्ये कथं धरित्र्याः रसः शुष्येत् !!

वृद्धायाः वचनं श्रुत्वा राज्ञः हृद्चक्षुः आर्द्रं जातम्। तेन आप्लावितं तस्य हृदयम्। मनसः सर्वं मालिन्यं तेन जलप्लावेन सह पूर्णतया प्रक्षालितम्। सः ईश्वराय स्वकृतज्ञताञ्जलिम् आर्पयत्—हे कृपाऽऽकर ! हे उद्धारक ! अद्य त्वया मह्यं जीवनस्य महार्घतमः हीरकः दत्तः। किं मूल्यं च गृहीतम्—चषकमितः इक्षुरसः !

प्रभाते कृषकगृहात् प्रस्थानपरः राजा वृद्धमातुः चरणधूलिं गृहीत्वा एतावदेव कथयितुमशक्नोत्—हे मातः ! स्वपुत्राय आशीर्वादान् देहि येन त्वया दत्तं अमृतरसं एषः आजीवनं स्मरेत्।

—वन्दना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक परिचय

कल्कि : ले० देवकी नन्दन श्रीवास्तव; प्र० शकुन्तला श्रीवास्तव; १८ नीचू बंगला, शान्तिनिकेतन-७३१२३५; मूल्य २० रु.।

हमसे नहीं स्वयं लेखक से सुनिये—

"कल्कि" में नृसिंह की भयंकरता, परशुराम की उग्रता, राम की शालीनता और कृष्ण की सम्मोहकता एकाकार होकर कलियुग के अतल से सतयुग के परम व्योम की ओर अद्भुत आरोहण करती है जिसकी प्रक्रिया अनूठी और रहस्यमयी है। इसी प्रक्रिया को संकेत-सूत्रों के माध्यम से प्रस्तुत उद्घोष में उजागर किया गया है। "कल्कि" वस्तुतः वर्तमान के सचेतन आरोहण और भविष्य के भागवत अवतरण का काव्य है। सारा काव्य स्वयं "कल्कि" की वाणी का स्वच्छन्द अवतरण है अतः उनके और युग-चैतन्य के बीच भाववाही कवि की मुखरता कोरी धृष्टता होगी। अपनी वाणी का मर्म स्वयं "कल्कि" ही जानें और युग को समझने-बूझने की प्रेरणा दें—कस्मै देवाय हविषा विधेम ?

और काव्य का आखिरी चरण भी देख लीजिये—

उस पावन प्रभात का आह्वान करो अविराम जब केवल वही केवल वही
विराजेंगे रज रज में राजाधिराज।
उस मादन मुहूर्त का प्रणिधान करो अविराम जब केवल वही केवल वही
पधारेंगे पग पग पर पथिकाधिराज॥
उस मोदन वसन्त का सन्धान करो अविराम जब केवल वही केवल वही
संवारेंगे वन वन को विश्वाधिराज।
उस शोभन सुयोग का शृंगार करो अविराम जब केवल वही केवल वही
दुलारेंगे पल पल को रसिकाधिराज॥

You have no right to dispense with morality unless you submit yourself to a law that is higher and much more rigorous than any moral law.

THE MOTHER

space donated by

Kooverji Devshi & Co. Pvt. Ltd.

FIREX LEADS TO SAFETY
SAFETY LEADS TO PROSPERITY

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"Work done in the right spirit is meditation."

With Best Wishes from:

MRS. KOYAL DEORAH CHARITABLE TRUST,

28, VARSHA, 69/B, NEPEANSEA ROAD,

BOMBAY - 400 006

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने आदर्श के प्रति निष्ठावान् रहो और अपना काम भगवान् के अर्पण करो।

—श्रीमां

एस. एन. सण्डरसन एण्ड कम्पनी

१ देशबन्धु गुप्त रोड

नयी दिल्ली-११००५५

With the Best Compliments of:

SHARAT DEORAH

Indian Transport Agency

Leading Bank approved Transport House
since 1949; Fleet Owners

H.O.: **24 Ganesh Chandra Avenue, Calcutta – 700 013**
PHONES: 26-1953/26-5003 TELEX: 021-7889 DORA IN

branches:
Bombay, Gauhati, Dibrugarh, Digboi, Tinsukia, Sibsagar, Jorhat, Shillong, Nowgong, etc.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Assam Tea Warehousing Corporation
Indian Tea Storage Agency

The most tried & trusted warehouse of
Tea Trade at Gauhati and Calcutta

3-B, Lal Bazar Street
R.N.M. House, 4th Floor
CALCUTTA : 700 001.

Phone: 28-1287 & 28-1290 Gram: INTEASTORE
Tlx No.: 21-7889 DORA IN

Nothing but a radical change of consciousness can save humanity from the terrible plight into which it is plunged.
THE MOTHER

With the Compliments of:
Sri Mahalaxmi Oil Mills
RANIGANJ, Burdwan (W. Bengal)

M/S New Horizon Agencies
BITUMEN & P.O.L. PRODUCTS
TRANSPORT CONTRACTOR
H.O. RANIGANJ – 713 347 (W. Bengal)

With Best Compliments of:

deorah Seva Nidhi
(Charitable Trust Dedicated to Service)

25 Ballyganj Park
Rajnigandha 13 E
CALCUTTA 700 019

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी भी बाधा पर एकाग्रचित्त न हो, वह उसमें अधिक बल भर देती है।

—श्रीमां

इण्डियन आयल के निम्नलिखित डीलर्स आपकी सेवा में

कुमार आयल्स

केरोसिन व मोबिल आयल डीलर्स

राम तीर्थ मार्ग, सहारनपुर—२४७००१

फोन ४०६५

कुमार आयल्स

केरोसिन व मोबिल आयल डीलर्स

देवबन्द

पी पी फोन ३७७

बन्सल एण्ड कम्पनी

पैट्रोल पम्प, उत्तर काशी

फोन ४५

हेड आफिस :

बन्सल निकेतन

लक्ष्मण झूला मार्ग

ऋषिकेश

फोन १२५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R. N. 8837/65

Regd. No. M/8127

For us there is only one thing that counts. We aspire for the Divine, live for the Divine, act for the Divine.

The Mother

INLAND CARRIERS

(BOMBAY)

Head Office:

Takhatmal Estate
AMRAVATI - 444 601

Phone: 2228 and 2236 Gram: INACARS

Booking Offices:

i) 112, Sarang Street, BOMBAY-400 003 (Phone: 327710)
ii) 312, Nana Peth, Laxmi Road, PUNE-441 002 (Phone: 28027)
iii) Inside Panchkuwa, Bhistiwad, AHMEDABAD-1 (Phone: 384081)
iv) Tin-Nal Chowk, Gandhi Chowk, NAGPUR-444 002 (Phone: 42643)
v) 15-8-292, Ghoshamahal Road, HYDERABAD (Phone: 41685)
vi) Opp. Old Magistrate's Court, Gheekanta, BARODA (Phone: 51919)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फरवरी १९९०

पुरोधा

14/6/90

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

How beautiful, grand, simple and calm everything becomes, when our thoughts turn to the Divine and we give ourselves to the Divine!

with my blessings

M.—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, राजस्थान, मध्य प्रदेश, हरियाना, गुजरात, ओड़िसा, आंध्र प्रदेश, पंजाब और मैसूर सरकार द्वारा सरकारी पुस्तकालयों, विद्यालयों और महाविद्यालयों आदि के लिये स्वीकृत

पुरोधा फरवरी १९९० **वर्ष २८, अंक ५, पूर्णांक २७९**

विषय-सूची

प्रार्थना और ध्यान		२
मुक्ति (सॉनेट)	श्रीअरविंद	३
दैनन्दिनी		४
भौतिक आधार	श्रीअरविंद	७
आश्रम-जीवन	श्रीमां	८
'भारतीय संस्कृति के आधार' पर आधारित : मौलिक विशेषता		११
'सांध्य वार्ताएं' : विभिन्न लोक		१२
'कुछ माताजी के बारे में' : ध्येय		१४
श्रीअरविंद की शिक्षा और साधना-पद्धति		१६
स्मरण-शक्ति और ग्रहणशीलता	श्रीमां	१८
ज्योति से ज्योति की ओर	अनुबेन	२०
'गैर्वाणी' : श्रेष्ठं वरणम्	वन्दना	२७
पुस्तक-परिचय		२८

आपका अग्निशिखा/पुरोधा का चंदा . . . में समाप्त हो रहा है। कृपया अग्निशिखा के १० और पुरोधा के १४ शीघ्र भेजें अन्यथा अगला अंक वी.पी.पी. से जायेगा। वी.पी.पी. लौट आने से हमें बहुत हानि होती है। अलग अनुस्मारक नहीं भेजा जायेगा। कृपया चेक न भेजें। चाहें तो २२५ या २७५ एक साथ या किस्तों में देकर अग्निशिखा और पुरोधा के ५०० देकर आजीवन सदस्य बन सकते हैं।

	पुरोधा	अग्निशिखा	दोनों मिलाकर
आजीवन सदस्यता शुल्क	२७५	२२५	५००
वार्षिक शुल्क	१४	१०	२४

संपर्क-सूत्र—संपादक पुरोधा एवं अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी—६०५००२

संपादक : रवींद्र, वंदना
प्रकाशक : अनिरुद्ध सरकार, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२
मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थना और ध्यान

२८ नवंबर १९१२

क्या बाहरी जीवन, प्रतिदिन और प्रतिक्षण की क्रियाशीलता हमारे ध्यान और निदिध्यासन के घंटों की अनिवार्य पूरक नहीं है? और क्या हर एक को दिये गये समय का अनुपात उस अनुपात का ठीक चित्र नहीं है जो तैयारी के लिये किये गये प्रयास और उपलब्धि के बीच है? क्योंकि ध्यान, निदिध्यासन और ऐक्य प्राप्त परिणाम हैं—वह फूल हैं जो खिला है और दैनिक क्रिया-कलाप वह निहाई है जिसपर सभी तत्त्वों को शुद्ध और परिष्कृत होने के लिये बार-बार गुजरना होता है, निदिध्यासन से मिलनेवाले आलोक के लिये उन्हें नमनीय और परिपक्व बनाना होता है, इससे पहले कि बाह्य क्रिया-कलाप पूर्ण विकास के लिये अनावश्यक बने इन सब तत्त्वों को एक के बाद एक करके कुठालीमेंसे गुजरना होगा। तब यह क्रियाशीलता तुझे अभिव्यक्त करने के साधन में बदल जायेगी ताकि चेतना के अन्य केंद्रों को भट्टी और प्रदीप्ति के एक समान दोहरे कार्य के लिये जगाया जा सके। इसीलिये घमंड और आत्मसंतोष सबसे बुरी बाधाएं हैं। हमें बड़े विनीत भाव से अगणित तत्त्वों में से कुछ को गूंधने और शुद्ध बनाने के छोटे-से-छोटे अवसर का लाभ उठाना चाहिये ताकि उनमें से कुछ को हम सुनम्य और निर्वैयक्तिक बना सकें, उन्हें अपने-आपको भूलना, आत्म-त्याग, भक्ति, कोमलता और सौम्यता सिखा सकें; और जब सत्ता के ये सब तरीके अभ्यासगत हो जाएं तो मनन-चिंतन में भाग लेने के लिये और तेरे साथ परम एकाग्रता में एक होने के लिये वे तैयार होते हैं। इसलिये मुझे लगता है कि सबसे अच्छों के लिये भी काम लंबा और धीमा होगा और असाधारण परिवर्तन सर्वांगीण नहीं हो सकते। वे सत्ता के दिग्विन्यास को बदल देते हैं, वे उसे निश्चित रूप से सीधे रास्ते पर ले आते हैं परंतु सचमुच लक्ष्य पाने के लिये कोई भी व्यक्ति हर क्षण, हर तरह की अनगिनत अनुभूतियों से नहीं बच सकता।

. . . हे परमोच्च प्रभो, जो मेरी सत्ता में और हर चीज में चमकता है, वर दे कि तेरा प्रकाश अभिव्यक्त हो और सबके लिये तेरी शांति का राज्य आये।

—श्रीमां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्ति

मैंने निकाल फेंका अपने अंदर से मन का उद्भ्रान्त नर्तन
और अब अवस्थित हूं आत्मा की नीरवता में स्वच्छन्द;
प्राणी-वर्ग के पार कालातीत और अमर,
मेरी आत्म-चिरन्तनता का अभ्यन्तर।

मैं हुआ निस्तीर्ण और लघु आत्मा हो गया निष्प्राण;
मैं हूं अनिर्वचनीय, केवली, अमर अनाशवान्;
मैं निकल गया उस विश्व से जिसका मैंने ही किया था निर्माण
और ऊपर उठ गया अनाम अप्रमेय अपरिमाण।

विशाल अनंत ज्योति में मौन हो गया मेरा मन,
मेरा हृदय आनंद और शांति का एकांत स्थान,
मेरी इंद्रियां शब्द, स्पर्श, रूप के पाश से निर्बन्ध,
शुभ्र अनंतताओं में एक बिंदु मेरा तन।

मैं उस एक परम सत्ता का अनन्य अविचल आनंद :
मैं नहीं पृथक्, मैं वह हूं जो यह सर्व पूरण।

अनु०—अमृता भारती —श्रीअरविंद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दैनन्दिनी

फरवरी

१. अपने-आपको भगवान् के प्रति अर्पित करना, भगवान् को ग्रहण करना और वही बनना, भगवान् को संचारित करना और फैलाना, ये तीन युगपत् होनेवाली गतियां हैं जिनसे भगवान् के साथ हमारा पूर्ण संबंध बनता है।

२. कोई चीज 'भागवत चेतना' के साथ एक होने से बढ़कर सुंदर नहीं है।
तुम जिसे खोज रहे हो उसे अवश्य पाओगे—यदि तुम पूरी सचाई के साथ खोजो—क्योंकि तुम जिसे खोज रहे हो वह तुम्हारे अंदर ही है।
आखिर, यह बहुत सरल है, हमें केवल वही बनना है जो हम अपनी सत्ता की गहराइयों में हैं।

३. स्नेह और प्रेम के लिये प्यास मनुष्य की आवश्यकता है लेकिन वह केवल तभी बुझ सकती है जब वह भगवान् की ओर मुड़े। जबतक वह मनुष्यों में संतोष पाना चाहती है तबतक हमेशा निराश या घायल होती रहेगी।
प्रेम की ऐसी प्यास होती है जिसे कोई भी मानवीय संबंध नहीं बुझा सकता। केवल 'भागवत प्रेम' ही उसे संतुष्ट कर सकता है।

४. नम्र होने का मन, प्राण और शरीर के लिये अर्थ है यह कभी न भूलना कि **भगवान् के बिना** वे कुछ नहीं जानते, कुछ नहीं हैं और कुछ नहीं कर सकते। भगवान् के बिना वे अज्ञान, अव्यवस्था और असमर्थता के सिवा कुछ नहीं हैं। केवल भगवान् ही सत्य, जीवन, शक्ति, प्रेम और सुख-शांति हैं।

५. आदर्श बालक को भविष्य पर श्रद्धा होती है, भविष्य सौंदर्य और प्रकाश से भरा हुआ और आनेवाली उपलब्धियों से भरपूर है।
बचपन भविष्य का प्रतीक और आनेवाली विजयों की आशा है।

६. मधुर मां, क्या जब कभी मैं आपको बुलाता हूं तो आप सुन सकती हैं ?
मेरे प्रिय बालक, विश्वास रखो कि तुम जब कभी मुझे बुलाते हो तो मैं सुनती हूं और मेरी सहायता और मेरी शक्ति तुम्हारी ओर जाती है।
मेरे आशीर्वाद सहित।

७. समस्वरता प्रकट करने के लिये सभी चीजों में दिव्य सरलता सबसे अच्छी है।
सरलता में महान् सौंदर्य है।

८. आध्यात्मिक शक्तियां अचंचलता, शांति और नीरवता में काम करती हैं।
सारी हलचल और उत्तेजना विरोधी प्रभाव से आती हैं।

९. तुम्हें अकेलापन इसलिये लगता है क्योंकि तुम प्रेम पाने की आवश्यकता का अनुभव करते हो। बिना मांग किये, केवल प्रेम के आनंद के लिये (संसार का सबसे अद्‌भुत प्रेम) प्रेम करना सीखो और तुम फिर कभी अकेला अनुभव न करोगे।

१०. तुम्हें **इसी** जगत् में बदलना होगा और परिवर्तन संभव है। अगर तुम इस जगत् से भाग जाओ तो तुम्हें वापिस आना पड़ेगा, शायद अधिक बुरी परिस्थितियों में आना पड़े और तुम्हें सारी चीज फिर एक नये सिरे से करनी पड़ेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्यादा अच्छा है कि भीरु मत बनो, परिस्थिति का सामना करो और उसपर विजय पाने के लिये आवश्यक प्रयास करो। सहायता सदैव तुम्हारे साथ है, तुम्हें उससे लाभ उठाना सीखना होगा।

११. यह निश्चित रूप से जानो कि मनुष्य जो कुछ कर सकता है उसमें आत्महत्या सबसे अधिक मूर्खतापूर्ण क्रिया है क्योंकि शरीर के अंत का अर्थ चेतना का अंत नहीं होता और जो चीज तुम्हें जीते जी तंग कर रही थी वही मरने पर तंग करती रहती है। जीते जी तुम मन की दिशा बदल सकते हो पर मरने पर यह संभावना नहीं रहती।

१२. समस्त भय, सारी अनबन, सभी झगड़े छोड़ दो। अपनी आंखें और अपने हृदय खोलो—अतिमानसिक शक्ति मौजूद है।
भौतिक अपने-आपको निष्कपट रूप से भगवान् के अर्पित करे तो वह रूपांतरित हो जायेगा। यह अपने-आपको अहं से मुक्त करने के संकल्प का प्रमाण है।

१३. अच्छा स्वास्थ्य आंतरिक सामंजस्य की बाहरी अभिव्यक्ति है। अगर हमारा स्वास्थ्य अच्छा है तो हमें गर्व होना चाहिये, उसका तिरस्कार नहीं करना चाहिये।
अबतक धरती पर सुख और अच्छा स्वास्थ्य स्वाभाविक अवस्था में नहीं हैं।
हमें सावधानी के साथ उनके विरोधियों की घुस-पैठ से उनकी रक्षा करनी चाहिये।

१४. शरीर की बीमारी हमेशा आंतरिक सत्ता के किसी असामंजस्य, किसी अव्यवस्था का अनुवाद, उसकी बाहरी अभिव्यक्ति होती है; जबतक यह आंतरिक अव्यवस्था ठीक नहीं हो जाती, तबतक बाहरी इलाज पूर्ण और स्थायी नहीं हो सकता।

१५. वे चीजें जो तुम्हारी प्रकृति में बदलना नहीं चाहतीं एक साथ मिल जाती हैं और बीमारी के रूप में बाहर आती हैं। सशक्त अभीप्सा और सर्वांगीण परिवर्तन ही करने लायक एकमात्र चीज है। तब सब ठीक हो जायेगा।

१६. अगर तुम बीमार पड़ते हो तो तुम्हारी बीमारी की इतनी व्याकुलता और भय से देख-रेख की जाती है, तुम्हारी इतनी परिचर्या की जाती है कि तुम उस एकमेव से सहायता लेना भूल जाते हो जो तुम्हारी सहायता कर सकता है और अपनी बीमारी में एक अस्वस्थ रुचि लेने लगते हो।

१७. मनुष्य अपने-आपको भगवान् से अलग कर सकने में सक्षम होते हैं, और बहुधा करते भी हैं लेकिन भगवान् के लिये अपने-आपको मनुष्यों से अलग कर लेना असंभव है।

१८. . . . और केवल दर्द के लिये ही नहीं बल्कि अंगों की किसी भी क्षति को उस समय अधिक आसानी से ठीक किया जा सकता है जब चेतना को कष्ट से दूर हटा लिया जाये। और तुम भगवान् की ओर खुले रहो। भगवान् का एक रूप सत् है—ब्रह्मांड के ऊपर, परे या पीछे शुद्ध परम 'सत्' है। अगर तुम उसके साथ संपर्क बनाये रख सको तो सभी शारीरिक रोगों को दूर किया जा सकता है।

१९. मार्ग का अंततक अनुसरण करने के लिये तुम्हें बहुत धैर्यपूर्ण सहिष्णुता से सुसज्जित होना चाहिये। सब कुछ इसपर निर्भर है कि तुम अपना यंत्रवत् उपयोग करने देने के लिये किस शक्ति को चुनते हो। और यह चुनाव तुम्हें जीवन के हर क्षण करना होता है।
तुम्हारे अंदर जो चीज साधारण जीवन से आसक्त है और जो भागवत जीवन के लिये अभीप्सा करती है, उन दोनों के बीच संघर्ष है। यह तुम्हें देखना है कि जो चीज तुम्हारे अंदर प्रबल हो उसे चुनो और उसके अनुसार कार्य करो।

२०. अपने और अपने स्वास्थ्य के बारे में कम सोचो।
निश्चय ही तुम अधिक बलवान् बनोगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन अगर तुम्हें विश्वास है कि तुम्हें कोई बीमारी है तो अस्पताल जाओ, निश्चय ही वे कोई बीमारी ढूंढ निकालेंगे।

स्वास्थ्य : उसमें तल्लीन न होना बल्कि उसे भगवान् के हाथों सौंप देना।

२१. **प्रश्न**—संकल्प-शक्ति को मजबूत बनाने के लिये क्या करना चाहिये।
उत्तर—उसे प्रशिक्षित करो, जैसे मांसपेशियों से काम लेकर उनसे कसरत करवायी जाती है, वैसे ही इससे कसरत करवाओ।

२२. **प्रश्न**—तो मैं कौन-सा रास्ता अपनाऊं? प्रयास करने का ठीक और सच्चा रास्ता कौन-सा है?
उत्तर—वही करो जो मैंने कल बतलाया था—नियमित और सुव्यवस्थित ढंग से पढ़कर अपने मस्तिष्क से काम करवाओ; तब उन घंटों में जब तुम पढ़ न रहे होगे, तुम्हारा मस्तिष्क काफी काम कर चुकने के कारण आराम कर सकेगा और तुम्हारे लिये यह संभव होगा कि अपने हृदय की गहराई में एकाग्र हो सको और वहां चैत्य स्रोत को पा सको; वहां तुम कृतज्ञता और सच्चे सुख, दोनों के बारे में सचेतन हो सकोगे।

२३. एकाग्रता के बिना कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता।

२४. केवल भागवत कृपा में अविचल विश्वास और श्रद्धा के साथ पूरी तरह से शांत और निश्चल बने रहने से ही तुम परिस्थितियों को यथासंभव अच्छे-से-अच्छा पा सकते हो। उन लोगों के लिये **हमेशा अच्छे-से-अच्छा होता है** जो भगवान् और केवल भगवान् पर ही पूरा भरोसा करते हैं। जब कभी, अपने जीवन में तुम्हें कठिनाई का सामना करना पड़े तो उसे प्रभु की कृपा के वरदान के रूप में लो और वह वही बन जायेगा।

२५. **सिर ठंडा** रखो, मजबूत और **बहुत शांत स्नायु** रखो और भगवान् की कृपा पर **पूरा भरोसा** रखो। जब हम भगवान् की कृपा पर भरोसा करते हैं तो हमें अक्षय साहस मिलता है।

२६. शरीर को यह जानना और यह विश्वास रखना चाहिये कि उसका सारतत्त्व भागवत है और यह कि अगर भागवत कार्य के रास्ते में कोई बाधा न डाली जाये तो हमें कोई भी चीज हानि नहीं पहुंचा सकती। इस प्रक्रिया को स्थिरता के साथ तबतक दोहराते रहना चाहिये जबतक भय का आना एकदम बंद न हो जाये और अगर बीमारी प्रकट होने में सफल हो जाये तो भी उसकी शक्ति और उसकी अवधि कम बहुत कम हो जायेगी जबतक कि उसपर निश्चित रूप से विजय न पा ली जाये।

२७. अगर तुम्हारा अपनी कामनाओं पर कोई अधिकार नहीं है तो शक्ति काम नहीं कर सकती। अगर शरीर नीरोग होने का निश्चय कर ले तो वह नीरोग हो जाता है।

२८. यह पृथ्वी तबतक सजीव और स्थायी शांति का उपभोग नहीं कर सकती जबतक मनुष्य अपने अंतर्राष्ट्रीय व्यवहारों में भी पूर्ण रूप से सत्यपरायण होना नहीं सीख लेते।
हे प्रभु! हम इसी पूर्ण सत्यपरायणता की अभीप्सा करते हैं।

————

अपनी पवित्र और ऋजु अभीप्सा को उस परम चेतना की ओर छलांग लगाने दो जो समस्त हर्ष और परम आनंद है।

—श्रीमां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भौतिक आधार

"मनुष्य के अंदर पैठी शक्ति को बढ़ाने और उसे ऐसे उपयोगों में लाने की, जिनसे उसे धारण करनेवाले व्यक्ति को या मानवजाति को लाभ हो, पहली और सबसे आवश्यक शर्त है ब्रह्मचर्य का अभ्यास। मनुष्य की सारी शक्ति का एक भौतिक आधार होता है। यूरोपीय जड़वाद के द्वारा की गयी भूल यह है कि वह भौतिक आधार को ही सब कुछ मान लेता है और उसे शक्ति का मूल-स्रोत समझने की गड़बड़ कर बैठता है। जीवन और प्राण-शक्ति का मूल-स्रोत भौतिक नहीं, बल्कि आध्यात्मिक है, किंतु जिस आधारशिला पर जीवन और शक्ति स्थित और क्रियाशील हैं, वह भौतिक है। प्राचीन हिंदू कारण और कार्य—सत्ता के ऊपरी और निचले छोरों—के बीच के भेद को स्पष्ट रूप से समझते थे। पृथ्वी या स्थूल भौतिक तत्त्व कार्य है और कारण है ब्रह्म या आत्मा। भौतिक तत्त्व का आध्यात्मिक सत्ता में ऊपर उठना ही ब्रह्मचर्य है।

यह ब्रह्मचर्य का तात्त्विक सिद्धांत है। मूलभूत भौतिक इकाई है रेतस् (वीर्य) जिसमें कि मनुष्य के अंदर स्थित तेजस्, यानी, ऊष्मा और प्रकाश और विद्युत् शक्ति पैठे और छिपे पड़े हैं। सारी ऊर्जा वीर्य में छिपी हुई है। यह शक्ति या तो स्थूल भौतिक रूप में खर्च की जा सकती है या सुरक्षित रखी जा सकती है। सारे मनोविकार, भोगेच्छा, कामना इस शक्ति को स्थूल रूप में या एक उत्कृष्ट सूक्ष्मतर रूप में शरीर से बाहर फेंककर उसे नष्ट कर देती हैं। अनैतिक आचरण उसे स्थूल रूप में बाहर फेंक देता है; अनैतिक विचार सूक्ष्म रूप में। दोनों में से प्रत्येक दशा में शक्ति व्यर्थ नष्ट होती है, और अब्रह्मचर्य जैसे शारीरिक होता है वैसे ही मानसिक और वाचिक भी। इसके विपरीत, आत्म-संयम वीर्य में छिपी हुई ऊर्जा की रक्षा करता है और रक्षा के साथ हमेशा वृद्धि होती है। लेकिन भौतिक शरीर की आवश्यकताएं सीमित हैं और इस अतिरिक्त शक्ति से निश्चय ही उसमें एक संचित भंडार का निर्माण होगा जो भौतिक के अतिरिक्त दूसरे किसी उपयोग में प्रयुक्त होना चाहिये। प्राचीन सिद्धांत के अनुसार वीर्य है जल जो प्रकाश और ऊष्मा और विद्युत् से, एक शब्द में कहें तो तेजस् से भरा है। वीर्य का विशेष संचय सबसे पहले ऊष्मा या तपस् में बदलता है, जो सारे शरीर को प्रकाशित करता है, और इसी कारण आत्म-संयम और तपस्या के सभी रूप तपस् या तपस्या कहलाते हैं, क्योंकि वे ऊष्मा या उस प्रेरक शक्ति को उत्पन्न करते हैं जो शक्तिशाली कर्म और सिद्धि का मूल-स्रोत है; और फ़िर वह वास्तविक तेजस्, यानी, सत्य-प्रकाश में परिवर्तित होता है जो सारे ज्ञान का मूल उद्गम, शक्ति है; तीसरे, फिर वह विद्युत् में बदलता है जो सारे शक्तिशाली कर्म का आधार है, चाहे वह कर्म बौद्धिक हो या शारीरिक। और फिर विद्युत् में छिपा है ओजस् या प्राण-शक्ति। इस तरह अंतिम रूप ओजस् के रूप में ऊपर उठकर वह मस्तिष्क में पहुंचता है। वह ओजस् ही है जो आध्यात्मिक शक्ति या वीर्य को उत्पन्न करता है जिसके द्वारा मनुष्य आध्यात्मिक ज्ञान, आध्यात्मिक प्रेम और श्रद्धा, आध्यात्मिक बल प्राप्त करता है। इसका निष्कर्ष यह है कि हम ब्रह्मचर्य के द्वारा तपस्, तेजस्, विद्युत् और ओजस् के भंडार को जितना ही अधिक बढ़ा सकें, उतना ही अधिक हम अपने-आपको शरीर, हृदय, मन और आत्मा के कार्यों के लिये पूर्ण एवं विशुद्ध शक्ति से भर देंगे।

प्राचीन हिंदू धर्म का यह मत था कि सारा ज्ञान अंदर है और शिक्षा का काम उसे बाहर से भीतर डालना नहीं, बल्कि उस अंदर के ज्ञान को जगाकर अंदर से बाहर प्रकट करना है। यह तो हम सब जानते हैं कि मानव प्रकृति की रचना तीन तत्त्वों—सत्व, रजस् और तमस्—से हुई है। तमस् है शारीरिक और मानसिक प्रकृति की जड़ता या निष्क्रियता जो अंतःस्थित ज्ञान को धूमिल कर देती है और अज्ञान, मानसिक जड़ता, विस्मृति, अध्ययन के प्रति अरुचि, वस्तुओं को समझने और उनके भेद को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहचानने की असमर्थता को जन्म देती है। रजस् एक अनियंत्रित क्रिया है जो तीव्र कामना, आसक्ति, मिथ्या विचारों से ज्ञान को ढक देती है, सत्त्व है वह प्रकाश जो भीतर छिपे ज्ञान को खोलता और उसे बाहर ले आता है। अब शिक्षक की मुख्य समस्या थी तमस् को हटाना, रजस् को संयमित करना और सत्त्व को जगाना। उसे विद्यार्थी को भीतर से प्राप्त होनेवाले ज्ञान के प्रकाश के प्रति ग्रहणशील बनने के लिये प्रशिक्षित करना होता था। रजस् को एक कठोर नैतिक अनुशासन द्वारा संयत किया जाता था जो एक शांत, प्रसन्न ग्रहणशील मानसिक स्थिति लाता था—यही था ब्रह्मचारी का वह प्रसिद्ध अनुशासन जो आर्य-संस्कृति और आर्य-नैतिकता का आधार था। तमस् का बहिष्कार नैतिक पवित्रता के अनुशासन द्वारा किया जाता था जो शिष्य के मन, प्राण और शरीर की प्रकृति में तेजस् और विद्युत् की शक्ति को जाग्रत् करता था और तपस्या की शक्ति द्वारा उसे मानसिक शक्ति और स्पष्ट ज्ञान देता था। ज्ञान को जगाने का कार्य तीन चीजों से होता है : पुनरावृत्ति, ध्यान और विचार-तर्क। आवृत्ति का प्रयोजन था मन के उस भाग को शब्दों से भर देना जो संस्कार ले सकता है, जिससे अर्थ अंदर से अपने-आप उदय हो। कहने की आवश्यकता नहीं कि यंत्रवत् पुनरावृत्ति शायद वह परिणाम नहीं ला सकती थी। होनी चाहिये प्रसन्न, अविचल ग्रहणशीलता और शब्द या वस्तु पर मन के चिंतनशील भाग की तल्लीनता—यही भारतीयों के अनुसार ध्यान का अर्थ था। किसी भाषा का अध्ययन करते हुए हम सबने यह अनुभव किया है कि एक ग्रंथ को समझने का कठोर प्रयत्न करते समय जो कठिनाइयां बहुत अधिक प्रतीत होती थीं वे पुस्तक को थोड़ी देर के लिये अपने मन से दूर कर देने पर बिना पुस्तक या अध्यापक की सहायता के ही अचानक विलीन हो जाती हैं और स्पष्ट बोध का उदय होता है। हममें से कइयों ने कुछ समय रुक जाने के बाद किसी भाषा या विषय के अध्ययन को पुनः आरंभ करने में भी यह देखकर विचित्रता का अनुभव किया है कि हमने जब उसे शुरू किया था तब की अपेक्षा अब हम उसे कहीं अधिक अच्छी तरह समझ लेते हैं, ऐसे शब्दों का अर्थ जान लेते हैं जिनसे पहले कभी हमारा परिचय नहीं था और हम उन वाक्यों को भी समझ सकते हैं जो अध्ययन स्थगित करने से पहले हमारी बुद्धि को चकरा देते थे। इसका कारण यह है कि हमारे अंतःस्थित ज्ञाता का ध्यान उस विषय में एकाग्र हो जाता है और वह विराम-काल में उस विषय के संबंध में ज्ञान के अंतःस्थित स्रोत से ज्ञान प्राप्त करने के प्रयत्न में व्यस्त रहता है। यह अनुभव केवल उन्हीं लोगों के लिये संभव होता है जिनकी प्रकृति का सात्त्विक या प्रकाशात्मक तत्त्व बौद्धिक स्पष्टता और गंभीर अध्ययन के अभ्यास के द्वारा प्रबल रूप में जाग्रत् हो चुका हो या सचेतन प्रयत्न से या अनजाने ही उचित रूप में कार्य करना सीख चुका हो। सात्त्विक विकास की सर्वोच्च पराकाष्ठा तब होती है जब हम प्रायः या हमेशा ही बाह्य साधनों—अध्यापक, पुस्तक, व्याकरण और शब्दकोश—के बिना काम चला सकते हैं और किसी विषय को अधिकांश या पूर्णतः अपने अंदर से ही सीख सकते हैं। लेकिन यह योगाभ्यास के सफल अनुसरण के द्वारा केवल योगी के लिये ही संभव है।"

—श्रीअरविंद

आश्रम-जीवन

यहां अनुभव के लिये यथासंभव अधिक-से-अधिक क्षेत्र हैं, क्योंकि वह अधिकतम भौतिक क्रिया-कलाप से लेकर अधिकतम आध्यात्मिक क्षेत्रोंतक फैला हुआ है जिसमें बीच के सभी स्तर आ जाते हैं।

इसलिये अगर, जैसा कि तुम कहते हो, तुम यहां से जाकर "मनुष्य का अनुभव" पाना चाहते हो, तो इसका कारण यह है कि तुम सत्य-चेतना के सीधे नियंत्रण में आये बिना, जो तुम्हें बतला देगी कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये मूर्खताएं हैं, मनमानी मूर्खताभरी बातें करने की स्वाधीनता चाहते हो।

व्यक्तिगत प्रगति के लिये जिन सच्ची अनुभूतियों की जरूरत है वे उन परिस्थितियों या उस वातावरण पर निर्भर नहीं हैं जिसमें तुम रहते हो, ये निर्भर हैं आंतरिक वृत्ति और प्रगति के लिये संकल्प पर।

*

अगर तुम अपनी अंतरात्मा को पाना, उसे जानना और उसकी आज्ञा मानना चाहते हो, तो चाहे जिस कीमत पर हो, यहीं रहो।

अगर तुम्हारे जीवन का लक्ष्य यह नहीं है और तुम अधिकतर मनुष्यों का जीवन जीने के लिये तैयार हो, तो निश्चय ही तुम अपने परिवार के पास वापिस जा सकते हो।

*

'क' ज़ानना चाहती है कि क्या वह इस जीवन को स्वीकार कर सकती है या उसे सामान्य जीवन में जाना होगा।

यह तथ्य ही कि वह यहां है, यह प्रमाणित करता है कि उसकी सत्ता में कहीं पर अभीप्सा है और वह अभीप्सा पूरी सत्ता में फैल सकती है।

*

तुम्हारे इस प्रश्न के बारे में कि "तुम कहां ठीक बैठोगे," दुनिया तुम्हारे जैसे लोगों से भरी है, इसलिये तुम दुनिया में बिल्कुल ठीक बैठ जाओगे, अगर—इसमें एक अगर है—अगर तुम अपने अंदर विभक्त् न हो। तुम्हारी सारी कठिनाई का कारण यह है कि तुम अपने साथ ही ठीक नहीं बैठते, बल्कि तुम्हारी बाहरी सत्ता और उसकी क्रियाएं तुम्हारी अंतरात्मा के साथ बिल्कुल मेल नहीं खातीं, और चूंकि तुम्हारी अंतरात्मा काफी जाग्रत् है, इसलिये यह संघर्ष तुम्हें मुश्किलों में डालता है।

एक बार तुम्हारे अंदर जाग्रत अंतरात्मा हो तो उससे पीछा छुड़ाना आसान नहीं होता। इसलिये ज्यादा अच्छा यही है कि उसका हुकुम माना जाये।

मैं तुम्हें जो अच्छी-से-अच्छी सहायता दे सकती हूं वह यही सलाह है।

*

क्या यह हो सकता है कि तुम जिसे अपनी मंथर प्रगति समझते हो उसके बारे में जरा अधीर हो ?

क्या तुम अपने प्रयास का फल चखने के लिये बेचैन और उत्सुक हो ?

और फिर मैं यह नहीं समझ पाती कि भले कुछ सप्ताहों के लिये क्यों न हो, फिर से उसी वातावरण में डुबकी लगाना तुम्हें "चिपकी रहनेवाली बाधाओं" से छुड़ाने में कैसे सहायता देगा। वही वातावरण तुम्हारी ऊपरी परत की मोटाई के लिये जिम्मेदार है जिसे तुम्हारी अंतरात्मा को छोड़ना होगा ताकि वह बाहरी ओर भी अपना प्रभाव डाल सके।

तुम अपनी आत्मा के लक्ष्य और अभीप्सा के बारे में काफी सचेतन हो; तुम इस बात से पूरी तरह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सचेतन हो कि तुम्हारी अंतरात्मा तुम्हें क्या बनाना चाहती है और तुमसे क्या होने की आशा करती है। केवल वर्तमान भौतिक रचना के परिणाम रास्ते में खड़े हैं, और अब, केवल इन बाधाओं पर निरंतर, धैर्य के साथ काम करने से ही तुम कठिनाई को हल कर सकते हो।

तो, योग के दृष्टिकोण से, ''छुट्टी लेना'' एक तरह से प्रतिरोध की हठ के आगे ''हथियार डालना'' है। मेरे लिये यह बिल्कुल स्पष्ट है।

लेकिन क्या तुम्हें विश्वास है कि तुम्हारे मन के किसी कोने में आसक्ति की कोई स्मृति तो नहीं लुकी है जो बिना जाने तुम्हें बाहर से आनेवाले दबाव से उत्तर देने के लिये बाधित करती है ? उस हालत में समस्या पर एक और ही कोण से विचार करना होगा।

*

यह स्पष्ट है कि तुम्हारी आंतरिक सत्ता बहुत मजबूत नहीं है और उसमें निर्वीर्य संदेहों, पराजयवादी निराशा, अहंकार और विश्वासघाती, विषैले प्रभाव का प्रतिकार करने की शक्ति नहीं है।

हमारा मार्ग आसान नहीं है, वह बहुत साहस और अथक सहिष्णुता की मांग करता है। परिणाम पाने के लिये, जो कभी-कभी बाहरी तौर पर मुश्किल से दिखायी देते हैं, शांत स्थिरता के साथ, कठिन परिश्रम और महान् प्रयास की जरूरत होती है।

बहुत-से मनुष्य ऐसे हैं जिन्हें अपने-आपको साफ करने की जरूरत अनुभव करने के लिये कीचड़ में लोटने की जरूरत होती है।

अगर कामना इतनी दृढ़ है कि तुम्हारे अंदर उसे जीतने की शक्ति नहीं है, तो अपनी जान-पहचान के लोगों से कहो कि तुम्हारे लिये कोई नौकरी ढूंढ़ दें (साधारणतः आश्रम से जानेवाले युवकों के लिये यह बहुत मुश्किल नहीं होता) और जाकर सामान्य जीवन का तबतक सामना करो जबतक तुम यह न जान जाओ कि जिस जीवन को तुम छोड़ आये हो उसका सही मूल्य क्या है।

अग्रदूत होने के लिये तुम्हारे अंदर वीरता होनी चाहिये; क्योंकि, साधारणतः, लोगों को उसीपर विश्वास होता है जो चरितार्थ हो चुका हो, प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देता हो और जिसे बहुत अधिक संदेही या संशयी लोग भी स्वीकार करते हों।

*

तुम्हें जाते देखकर मुझे खेद होगा और मैं आशा करती थी कि इसकी जरूरत न होगी। लेकिन अगर तुम इतने दुःखी हो, अपने पर तुम्हें इतना कम विश्वास है, तो शायद कुछ समय के लिये जाना और अपना संतुलन ठीक कर लेना अच्छा हो। मैं तुम्हारे लिये दरवाजा खुला रखूंगी और जैसे ही तुम काफी मजबूत हो जाओ, तुम वापिस आ जाओगे।

मेरे आशीर्वाद हमेशा तुम्हारे साथ हैं और रहेंगे।

और अगली बार तुम योग के लिये और भागवत जीवन के लिये वापिस आओ, तो सब कुछ आसान हो जायेगा।

*

मैं प्रसन्न हूं कि यहां रहने से तुम्हारी दृष्टि और समझ विशाल हुई है और तुम्हारी चेतना में गहराई आयी है।

—श्रीमां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"भारतीय संस्कृति के आधार" पर आधारित :

मौलिक विशेषता

भारतीय मन का समस्त आधार है इसकी आध्यात्मिक तथा अंतर्मुखी प्रवृत्ति, आत्मा तथा आंतरिक सत्ता को सर्वप्रथम महत्त्व देना, उन्हें खोजना तथा अन्य सभी चीजों को गौण मानना या इस रूप में देखना कि वे आंतरिक सत्ता पर आश्रित हैं, वे केवल उच्चतर ज्ञान के प्रकाश में ही व्यवहार में लायी जा सकती और अपना मूल्य पा सकती हैं। वे गौण वस्तुएं वस्तुतः गभीरतर आध्यात्मिक लक्ष्य की अभिव्यक्ति, उनका क्षेत्र हैं। भारतीय मन की यह प्रवृत्ति जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दृष्टिगोचर है अर्थात् उसे जो कुछ निर्मित करना हो उसे पहले आंतरिक स्तर पर और बाद में उसके दूसरे पहलुओं में निर्मित करने की प्रवृत्ति। यह मनोवृत्ति और इसके परिणाम-स्वरूप अंदर से बाहर की ओर निर्माण करने की इस प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए यह अनिवार्य था कि भारत सबसे पहले जिस ऐक्य को अपने लिये निर्मित करे वह आध्यात्मिक और सांस्कृतिक ऐक्य ही हो। सबसे पहले तो यह कोई ऐसा राजनैतिक ऐक्य नहीं हो सकता था जो किसी राज्य के द्वारा या सैनिक-शक्ति अथवा कौशल द्वारा सबको एक ही झंडे के नीचे खड़ा करता हो, ऐसी बाह्य आरोपित एकता—जैसी कि रोम या प्राचीन फारस में की गयी थी—में हमेशा एक प्रकार का भय बना रहता है; लेकिन फिर भी, देश पर आरोपित इसी तरह के ऐक्य को उचित और सच्चा माना जाने लगा और भारत की खंडता के लिये उसपर यह आरोप लगाये जाने लगे कि उसने अपनी प्रजा को कभी शासन की एक ही बागडोर में नहीं रखा। भारत के आलोचकों का कहना है कि भारत की यह एक बहुत बड़ी भूल थी या यह उसकी अव्यावहारिक प्रवृत्ति का प्रमाण था; उसे पहले एक राजनैतिक संगठन का निर्माण करना चाहिये था और उसके बाद भारत के राष्ट्रीय साम्राज्य के विशाल संगठन में आध्यात्मिक एकता को सुरक्षित रूप में विकसित किया जा सकता था। लेकिन ऐसा करना भारत की प्रकृति के अनुकूल न होता। पहली समस्या तो यह थी कि भारत एक विशाल भूमि-खंड है जिसमें सौ से अधिक राज्य थे, उसमें कितने ही कुल, जातियां, कबीले इत्यादि निवास करते थे, इस बात में वह दूसरा ग्रीस था, लेकिन बड़े पैमाने पर ग्रीस, वह करीब आधुनिक यूरोप के जितना ही विशाल था। जिस भांति ग्रीस में एकत्व की भावना पैदा करने के लिये सांस्कृतिक एकता आवश्यक थी उसी तरह यहां भी उससे कहीं अधिक अनिवार्य रूप से एक सचेतन आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक एकता पहली और अनिवार्य शर्त थी, जिसके बिना कोई भी स्थायी एकता संभव नहीं हो सकती थी। इस मामले में भारतीय मानस और उसके महान् ऋषियों तथा उसकी संस्कृति के संस्थापकों की सहज प्रवृत्ति सर्वथा उचित थी। और अगर हम यह मान भी लें कि प्राचीन भारत की जातियों में रोमन राज्य की तरह सैनिक तथा राजनैतिक उपायों द्वारा बाहरी सामाजिक एकता स्थापित की जा सकती थी फिर भी हमें यह न भूल जाना चाहिये कि रोमन एकता स्थायी नहीं रही और पहले से ही आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक आधार स्थापित किये बिना भारत की विशाल भूमि पर इस प्रकार का प्रयत्न स्थायी रूप में सफल न होता। अगर यह दृढ़तापूर्वक कहा जाये कि आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक एकता पर बहुत अधिक बल दिया गया और इस कारण भारत ने राजनैतिक तथा बाह्य एकता की एक तरह से उपेक्षा की फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि इस तरह प्रधानता देने का परिणाम केवल अनिष्टकारी हुआ और उसका कोई लाभ न हुआ। भारत की इस मौलिक विशेषता तथा अमिट आध्यात्मिक छाप के कारण, समस्त विभिन्नताओं के बीच इस आधारभूत एकता के कारण ही, भारत यद्यपि राजनैतिक दृष्टि से अभीतक एक और संघटित राष्ट्र न हो लेकिन वह अभीतक जीवित है और अभीतक भारत ही है।

—वंदना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभिन्न लोक

४-४-१९२४

शिष्य—भागवत में मानसिक और अन्य सूक्ष्म लोकों में रहनेवाली सत्ताओं के वर्णन हैं। जब अतिमानस पूर्ण हो जायेगा तब उसका इन पर क्या प्रभाव पड़ेगा ?

श्रीअरविंद—तुम्हारा क्या मतलब है ? तुम मनुष्यों की बात कर रहे हो या उन सत्ताओं की जो सशरीर नहीं हैं लेकिन मनोमय लोक में रह रही हैं ? अगर तुम कहो कि अमुक लोक अतिमानस-भावापन्न हो गया है तो उस लोक की सभी सत्ताओं को अतिमानसिक हो जाना चाहिये तब तो रिक्शावाले का भी रूपांतर हो जायेगा। तुम यह आशा नहीं कर सकते कि वैश्व विधान इस तरह से बदलेगा। ये लोक और उनमें रहनेवाले तुम्हारे साथ संबंध में या तुम्हारे साथ संपर्क के अनुसार बदल सकते हैं लेकिन **वे तुम्हारी** साधना से नहीं बदल सकते।

शिष्य—मनोमय लोक के रहनेवाले हमारे साथ किस तरह संपर्क में आते हैं और वे किस तरह बदलते या साधना करते हैं ?

श्रीअरविंद—सत्ता के विभिन्न वर्गों में ये भेद तो रहेंगे ही अन्यथा केवल एक अतिमानसिक लोक ही रहेगा। लीला के चलने के लिये ये भेद जरूरी हैं; और फिर उन सत्ताओं में हर एक की अपनी नियति है जिसे उसे पूरा करना है। उन्हें अपने ही तरीके से चलना होगा।

शिष्य—अतिमानस योग पार्थिव लोक और इस विश्व के विधानों पर क्या प्रभाव डालेगा ?

श्रीअरविंद—अगर अतिमानसिक सत्य इस धरती पर एक तथ्य बन जाये, तो निश्चय ही तुम यह नहीं सोचते कि रिक्शावाला तुरंत बदल जायेगा। तब अन्य मनुष्यों के लिये सत्य को मूर्त रूप देना यानी अतिमानस को प्राप्त करना ज्यादा आसान हो जायेगा। वह जगत् में एक वातावरण पैदा कर देगा लेकिन वह सर्व-साधारण मनुष्यों में अचानक परिवर्तन न लायेगा। वह मनुष्यों की अधिक संख्या के लिये अंतर्भासात्मक स्तर को पाना ज्यादा आसान बना देगा। अभी ऐसे बहुत कम़ हैं।

जो मनुष्य अतिमानस सत्य को नीचे उतार कर लायेगा उसका प्रभाव उन लोगों पर अधिक होगा जो उसके संपर्क में आते हैं और यह उसके उच्चतर शक्तियों के प्रति खुलने के अनुपात में होगा।

शिष्य—क्या यह हो सकता है कि पृथ्वीलोक पर कोई असर न पड़े ?

श्रीअरविंद—जो शक्ति पहले नहीं थी वह अब **मौजूद है,** जो वातावरण पहले नहीं था वह भी मौजूद है इसलिये कुछ परिवर्तन अवश्यंभावी है लेकिन वह विश्व के नियमों में आमूल परिवर्तन न लायेगा।

मई १९२४

शिष्य—क्या अतिमानसिक लोक में असुर-सिद्ध के जैसा कोई उदाहरण है ?

श्रीअरविंद—नहीं।

शिष्य—आपने वर्गीकृत सत्ताओं में असुर की भी गिनती की है ?

श्रीअरविंद—वहां मैं वैदिक अर्थ में असुर कह रहा था। मानसिक असुर अतिमानस और आद्या शक्ति की किसी चीज का गलत अनुवाद है। शुद्ध शक्ति को असुर कहते हैं। यह वैदिक असुर है पौराणिक असुर नहीं। वेदों में असुर नाम सभी देवों को दिया गया है। कई स्थानों पर इंद्र को भी असुर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा गया है। बाद में सुर से असुर की व्युत्पत्ति हुई और अ-सुर दानव बन गया। मूलतः असुर उच्चतम शक्ति के अर्थ में था। शायद दसवें मंडल में असुर शब्द पौराणिक अर्थ में आया है।

९-१२-१९२५

बात 'क' के बारे में चली जो 'ख' से आग्रह करता था कि वह उसे भगवान् मान ले।

एक शिष्य—तो तुम उस भगवान् से बचे कैसे ?

दूसरा शिष्य—'क' मेरे पास अपने "भागवत भाव" में आया करता था लेकिन मुझे तो वह असामान्य भाव मालूम होता था। तब वह बताया करता था कि वह भगवान् है। मैं चुप रहता था।

जब उसने मेरे ऊपर बहुत जोर डाला तो मैंने कहा, अच्छा आंगन में खड़े इस पेड़ को उखाड़ कर दिखाओ।

शिष्य—यह तो भगवान् के लिये बड़ी कड़ी परीक्षा हुई !

दूसरा शिष्य—तुम चाहते थे कि भगवान् कीकर सिंह हो। बड़ा पहलवान होगा तुम्हारा भगवान् ! (हंसी)

इसके बाद बंगाल के एक और आध्यात्मिक व्यक्ति के बारे में बात हुई। उस गुरु के एक शिष्य ने एक पंडित के साथ खूब बहस की कि वह उसे अवतार मान ले लेकिन पंडित राजी न हुआ। रात को पंडित जब एक लोहे के पलंग पर सो रहा था, उन शिष्यों ने उसके पलंग में बिजली के धक्के दिये ताकि उससे अवतार को मनवा लें !

श्रीअरविंद—लेकिन मेरा ख्याल था कि वह तो हमेशा अपने अवतार होने का निषेध किया करता था।

शिष्य—जी, मैं भी यही समझता था; पर जब एक प्रसिद्ध नेता उसका शिष्य बन गया तो बात बदल गयी।

श्रीअरविंद—यह संभव है। सफलता ने उसका सिर फिरा दिया होगा। लेकिन मेरी समझ में नहीं आता कि लोग अवतार के बाहरी चिह्नों की मांग क्यों करते हैं। उसका बाहरी जीवन से क्या संबंध ?

शिष्य—विचार यह है कि ईश्वर के अवतार में ऐश्वर्य होना चाहिये।

श्रीअरविंद—ऐश्वर्य—दिव्य सत्ता की शक्ति—तो ठीक है पर वह चेतना की चीज है। भीतरी आध्यात्मिक जीवन के बाहरी लक्षण क्या हो सकते हैं ?

शिष्य—लेकिन मेरा ख्याल है कि भीतरी आध्यात्मिक चेतना और ऐश्वर्य परस्पर-विरोधी चीजें तो नहीं हैं।

श्रीअरविंद—हर्गिज नहीं। लेकिन ऐसे बहुत-से लोग हैं जिनमें शक्तियां हैं, वे चाहे जैसी शक्तियां क्यों न हों, पर आध्यात्मिक चेतना नहीं होती। जैसे डा॰ कूए में कुछ शक्ति है। यूरोप के कई गुह्यवादियों में है लेकिन वे किसी आध्यात्मिक शक्ति से बहुत दूर हैं। सामान्यतः ऐसी शक्तियोंवाला बहुत मामूली-सा होता है और अपनी प्राणिक गतिविधियों में नीचे की ओर प्रवृत्त होता है।

(कुछ रुककर) यह जरूरी नहीं है कि उच्चतर चेतना को जीवन में तथा क्रिया में बहुसंख्यक लोगों में प्रकट होना चाहिये। यह केवल शक्ति का ही प्रश्न नहीं है। सवाल यह है कि कौन-सी शक्ति प्रकट हो रही है, व्यक्ति उसे कहां से ला रहा है। उदाहरण के लिये नेपोलियन में कुछ शक्ति थी पर इसका यह अर्थ नहीं है कि उसमें आध्यात्मिक चेतना थी। अतः कोई शक्ति या शक्तियां हो सकती हैं पर कोई आध्यात्मिक चेतना न हो। आदमी जब ऊपर उठता है तो पता चलता है कि साधारण आदमी बहुत नीचे रह गया है। लोग उसतक नहीं पहुंच सकते अतः उसकी शक्ति उनपर कार्य नहीं कर सकती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और फिर तुम अवतार से उसी तरह के काम की आशा नहीं कर सकते जैसे मनुष्यों से। वह सीधा वैश्व शक्तियों पर काम कर सकता है और इस तरह सारी मानवजाति पर काम कर सकता है और देखने में ऐसा लगेगा कि वह कुछ नहीं कर रहा, किसी को पता भी न लगेगा कि उसने क्या किया।

सुनने में हास्यास्पद और दर्पपूर्ण लगेगा अगर मैं कहूं कि मैंने रूसी क्रांति के लिये तीन वर्षतक काम किया और उसके सफल होने में यह भी एक प्रभाव था। मैंने तुर्की के लिये भी काम किया था।

शिष्य—और भारत के लिये ?

श्रीअरविंद—इसमें समय लगता है। मैंने कुछ लोगों के द्वारा काम किया लेकिन जब लोग सफलता के नशे में चूर हो जाते हैं तो शक्ति काम करना बंद कर देती है।

१२-१-१९२६

बात अवतार के बारे में चली—

श्रीअरविंद—उच्चतर चेतना द्वारा कुछ समय के लिये आधिपत्य पूरी तरह संभव है। लेकिन अगर अवतार को इस तरह की घोषणाओं और आत्म-विज्ञापन द्वारा अपनी मान्यता पानी पड़े तो मुझे इसका कोई लाभ नहीं दिखायी देता। रामकृष्ण ने यह कहा था और मेरा ख्याल है हर उस व्यक्ति ने, जिसे महान् आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त थी, कभी-न-कभी यह बात कही थी। इसमें कुछ भी असंभव नहीं है। चैतन्य पर भी इस तरह के सामयिक आधिपत्य हुआ करते थे और ऐसी स्थिति में वे प्रभु के रूप में बोलते थे।

पुराणीकृत श्रीअरविंद की 'ईवनिंग टॉक्स' से

'कुछ माताजी के बारे में' :

ध्येय

. . . तो क्या वास्तविक स्वतंत्रता जैसी कोई चीज है ही नहीं ? या सब कुछ, यहांतक कि जीव की स्वतंत्रता भी पूर्ण रूप से पूर्वनिर्धारित रहती है, और क्या प्रारब्धवाद ही परम रहस्य है ?

स्वतंत्रता और प्रारब्ध, स्वाधीनता और नियतिवाद, ये चेतना के विभिन्न स्तरों के सत्य हैं। अज्ञान के कारण मन इन्हें एक ही स्तर पर लाकर रख देता है और इनमें विरोध देखता है। चेतना एक ही प्रकार की सद्वस्तु नहीं है, वह बहुविध है, वह किसी समतल भूमि जैसी नहीं है, उसके अनेक आयाम हैं। उच्चतम ऊंचाई पर परम पुरुष हैं और निम्नतम गहराई में जड़-प्रकृति है और इस निम्नतम गहराई और उच्चतम ऊंचाई के बीच में चेतनाओं की अनंत भूमिकाओं का क्रमविन्यास है।

जड़-प्रकृति के क्षेत्र में और साधारण चेतना के स्तर पर तुम्हारे हाथ-पैर बंधे रहते हैं। प्रकृति की यांत्रिकता के गुलाम होने के कारण तुम कर्म की सांकल से जकड़े हुए हो, और इस सांकल के बंधन में रहते हुए जो कुछ होता है वह अचूक रूप से पूर्वकर्मों के परिणाम-स्वरूप होता है। इस अवस्था में स्वतंत्र गति का जो भान होता है वह भ्रम है, यथार्थ में जो दूसरे करते हैं तुम भी उसीको दोहराते रहते हो, प्रकृति की जो विश्वगतियां हैं तुम उनकी प्रतिध्वनिमात्र हो, तुम उसके विश्व-यंत्र के कुचल देनेवाले माया-चक्र पर चढ़कर असहाय रूप से चक्कर खाते रहते हो।

परंतु यह होना आवश्यक नहीं है। तुम चाहो तो अपनी स्थिति को बदल सकते हो और नीचे पड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहकर रौंदे जाने या कठपुतली की तरह नचाये जाने के बदले ऊपर उठ सकते हो और वहीं से संसार-चक्र और उसकी अवस्थाओं को देख सकते हो तथा तुम अपनी चेतना के परिवर्तन द्वारा इस चक्र को घुमानेवाले किसी हत्थे को कब्जे में कर सकते हो जिससे इन अनिवार्य दीखनेवाली घटनाओं का परिचालन कर सको और निश्चित अवस्थाओं को बदल सको। एक बार तुम अपने-आपको इस भंवर से बाहर निकालकर ऊपर खड़े हो सको तो अपने-आपको मुक्त पाओगे, इतना ही नहीं कि विवशताओं से मुक्ति पाकर तुम प्रकृति के निष्क्रिय उपकरण न रहोगे, तुम उसके सक्रिय प्रतिनिधि बन जाओगे। केवल यही नहीं कि तुम अपने कर्मफलों के बंधन से मुक्त हो जाओगे, बल्कि तुम अपने कर्मफल को बदल भी सकोगे। एक बार तुम शक्तियों की लीला को देख पाओ, चेतना की उस भूमिका में ऊपर उठ जाओ जहां से शक्तियों का प्रादुर्भाव होता है और इन गतिशील उद्गमों के साथ अपने-आपको एक कर लो तो तुम उस श्रेणी के नहीं रहोगे जिसे परिचालित किया जाता है, बल्कि उस श्रेणी के हो जाओगे जो परिचालन करती है।

यही है योग का वास्तविक ध्येय—कर्म-चक्र से बाहर निकलकर भागवत गति में प्रवेश करना। योग के द्वारा तुम प्रकृति की उस यांत्रिक गति से छुटकारा पा सकते हो जिसमें तुम एक मूढ़ गुलाम, एक असहाय और बेबस उपकरण-भर हो। तुम एक दूसरी भूमिका में ऊपर उठ जाते हो जहां किसी उच्चतर भवितव्यता को कार्य में परिणत करने के लिये तुम एक सचेतन सहयोगी और सक्रिय प्रतिनिधि बन जाते हो। चेतना की यह गति द्विविध होती है। पहले आरोहण होता है, तुम अपने-आपको जड़-प्राकृतिक चेतना की सतह से ऊपर उठाकर श्रेष्ठतर क्षेत्रों में ले जाते हो। परंतु निचले क्षेत्रों से उपरले क्षेत्रों में आरोहण ऊपर की चेतना को निचले क्षेत्रों में उतरने के लिये बुलाना है। जब तुम पृथ्वी से ऊपर उठते हो तो ऊपर की किसी चीज को भी इस पृथ्वी पर उतार लाते हो—किसी ऐसी ज्योति या शक्ति को जो इस पृथ्वी की पुरानी प्रकृति का रूपांतर कर देती है या उसे रूपांतरित होने के लिये प्रवृत्त करती है। और तब जो चीजें अभीतक एक-दूसरे से अलग, बेमेल और विषम थीं, तुम्हारे अंदर जो कुछ उच्च है वह और जो कुछ निम्न है वह, तुम्हारी सत्ता और चेतना के आंतर और बाह्य स्तर, एक-दूसरे से मिलते और धीरे-धीरे आपस में जुड़ जाते हैं तथा क्रमशः एक सत्य और एक सामंजस्य में परिणत हो जाते हैं।

लोग जिन्हें चमत्कार कहते हैं, वे इसी तरह होते हैं। यह जगत् चेतना की अनेक भूमिकाओं से बना है और प्रत्येक भूमिका के अपने-अपने नियम हैं। एक भूमिका के नियम दूसरी भूमिका पर लागू नहीं होते। चमत्कार का अर्थ है किसी प्रकार का आकस्मिक अवतरण, किसी अन्य चेतना और उसकी शक्तियों का—बहुधा प्राण की शक्तियों का—इस स्थूल भौतिक लोक में उतर आना। यहां की स्थूल भौतिक यंत्र-रचना पर किसी उच्चतर भूमिका की यंत्र-रचना हठात् उतर आती है। यह ऐसे होता है मानों हमारी साधारण चेतना के बादलों को चीरकर बिजली उतर आयी हो और उसने अन्य शक्तियों, अन्य गतियों तथा अन्य परिणामों को भर दिया हो। इसके फल को हम चमत्कार कहते हैं, क्योंकि हमारी साधारण भूमिका में जो स्वाभाविक नियम काम कर रहे हैं उनमें अचानक परिवर्तन दिखायी देता है, ऐसा जान पड़ता है कि इन नियमों में एकाएक कोई हेर-फेर हो गया है, लेकिन हम उसके कारण और क्रम को जान या देख नहीं पाते, क्योंकि इस चमत्कार का मूल कारण तो किसी और ही भूमिका में होता है। हमारे पार्थिव लोक पर अन्य ऊर्ध्व लोकों के इस प्रकार के हमले बहुत असाधारण नहीं हैं। ये बराबर होते ही रहते हैं, और यदि हमारी आंखें हों और हम देखना जानते हों तो हमें बहुत चमत्कार दिखायी देंगे। विशेषतः जो उच्चतर भूमिकाओं की शक्तियों को इस पार्थिव चेतना पर उतारने का प्रयत्न कर रहे हैं, उनमें तो ये अनवरत होते ही रहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या सृष्टि का कोई निश्चित लक्ष्य है ? क्या इसका कोई अंतिम ध्येय है जिसकी ओर यह अग्रसर हो रही है ?

नहीं, यह विश्व एक गति है जो शाश्वत रूप से अपने-आपको फैलाती जा रही है। ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे इति कहा जा सके, जो अंतिम लक्ष्य हो। परंतु कार्य-संचालन के लिये हमें इस गति के—जो स्वयं अनंत है—खंड करने पड़ते हैं और यह कहना पड़ता है कि हमारा अमुक उद्देश्य है, क्योंकि कार्य करने के लिये हमें किसी ऐसी चीज की आवश्यकता पड़ती है जिसपर हम अपना लक्ष्य बांध सकें। एक चित्र आंकने में तुम्हें उसकी रचना और रंगों की निश्चित आयोजना करनी पड़ती है, एक सीमा बांधनी होती है ताकि जो कुछ चित्रित करना है वह सब एक नियत ढांचे में आ जाये, किंतु वह सीमा मिथ्या होती है, वह ढांचा केवल औपचारिक होता है। असल में चित्र का एक सतत प्रवाह होता है जो किसी भी विशिष्ट ढांचे का अतिक्रमण करता है और उसकी प्रत्येक धारा उसी प्रकार एक-एक ढांचे में उतारी जा सकती है और इस प्रकार अनगिनत ढांचों का कभी न समाप्त होनेवाला क्रम बन सकता है। हम कहते हैं कि हमारा लक्ष्य अमुक है, किंतु हम जानते हैं कि यह इससे परे के लक्ष्य का प्रारंभमात्र है और फिर वह अगले लक्ष्य की ओर ले जाता है और यह शृंखला सदा बढ़ती रहती है कभी बंद नहीं होती।

श्रीअरविंद की शिक्षा और साधना-पद्धति

(उनके पत्रों से संकलितं)

भगवान्

भगवान् परम सत्य हैं क्योंकि वे परम सत्ता हैं जिसमें से सब प्रकट हुए हैं और जिसमें सब निवास करते हैं।

*

भगवान् वह हैं जिनसे सब कुछ प्रकट होता है, जिनमें सब कुछ जीता है और जीवन में अंतरात्मा का लक्ष्य है भगवान् के उस सत्य की ओर वापिस जाना जो अज्ञान से ढका हुआ है। अपने परम सत्य में भगवान् अनंत और परम शांति, चेतना, सत्ता, शक्ति और आनंद हैं।

*

हमारे लिये भगवान् के तीन पक्ष हैं :

१—वे वह वैश्व सत्ता और आत्मा हैं जो सभी चीजों और सत्ताओं के अंदर और उनके पीछे हैं, जिससे और जिसमें विश्व में सब कुछ अभिव्यक्त होता है—यद्यपि अभी वह अज्ञान में अभिव्यक्ति है।

२—वे हमारे अंदर, हमारी अपनी सत्ता की आत्मा और उसके स्वामी हैं। हमें उनकी सेवा करना और अपनी सभी गतिविधियों में उनकी इच्छा को प्रकट करना सीखना चाहिये ताकि हम अज्ञान में से प्रकाश में विकसित हो सकें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३—भगवान् परात्पर सत्ता और आत्मा, समस्त आनंद और प्रकाश, भागवत ज्ञान और शक्ति हैं। हमें उस उच्चतम भागवत सत्ता और उसके प्रकाश की ओर उठना है और अपनी चेतना और अपने जीवन में उसकी वास्तविकता को अधिकाधिक उतारना है।

सामान्य प्रकृति में हम अज्ञान में निवास करते हैं और भगवान् को नहीं जानते। सामान्य प्रकृति की शक्तियां अदिव्य हैं क्योंकि वे अहंकार, कामना और अज्ञान का जाल बुन देती हैं जो भगवान् को हमसे छिपा देता है। उस उच्चतर और गभीरतर चेतना में प्रवेश करने के लिये जो भगवान् को जानती और देदीप्यमान रूप में उनके अंदर निवास करती है हमें निम्नतर प्रकृति की शक्तियों से पिंड छुड़ाना और भागवत शक्ति की क्रिया की ओर खुलना चाहिये जो हमारी चेतना को भागवत प्रकृति में रूपांतरित कर देगी।

हमें भगवान् के बारे में इस धारणा से आरंभ करना है—उसके सत्य की सिद्धि चेतना के उद्‌घाटन और परिवर्तन के साथ ही आ सकती है।

*

परात्पर, वैश्व और व्यष्टिगत भगवान् में फर्क मेरी अपनी खोज नहीं है और न यह भारत या एशिया की उपज है। इसके विपरीत यह कैथोलिक संप्रदाय की गुह्य परंपराओं में प्रचलित और मान्यता-प्राप्त शिक्षा है। यह त्रयी; पिता, पुत्र और पवित्रात्मा की मानी हुई व्याख्या है—जिस अनुभूति से यूरोपीय गुह्यवादी बहुत अच्छी तरह परिचित हैं। यह उन सभी आध्यात्मिक शिक्षाओं में मौजूद है जो भगवान् की सर्वव्यापकता पर विश्वास करती हैं—यह भारतीय वैदांतिक अनुभूति सिर्फ सूफियों में ही नहीं अन्य मुस्लिम योग-संप्रदायों में भी है—मुसलमान तो परम प्रभुतक पहुंचने से पहले भगवान् के दो-तीन नहीं, कई स्तरों की बात करते हैं। और जहांतक स्वयं विचार का सवाल है निश्चय ही व्यष्टिगत, देश और काल में वैश्व और इस वैश्व सूत्र या किसी भी वैश्व सूत्र से परे 'कुछ' में भेद है। एक वैश्व चेतना है जिसका बहुतों ने अनुभव किया है जो अपने क्षेत्र और अपनी क्रिया में व्यष्टिगत चेतना से एकदम भिन्न है। और अगर वैश्व के परे कोई और चेतना है जो केवल काल में विस्तार न होकर अनंत और तत्त्वतः शाश्वत है वह भी इन दोनों से भिन्न होगी। और अगर भगवान् इन तीनों में हैं या इनमें अपने-आपको अभिव्यक्त करते हैं तो क्या यह नहीं माना जा सकता है कि अपने पक्ष में, अपने क्रिया-कलाप में वे स्वयं अपने अंदर भेद करते हैं और अगर हम अनुभूति के समान सत्य में अव्यवस्था नहीं लाना चाहते, अगर हम अपने-आपको केवल किसी वर्णनातीत वस्तु की निश्चल स्थिति की अनुभूतितक ही सीमित नहीं रखना चाहते तो भगवान् के त्रिविध रूप के बारे में बोलने के लिये बाधित होते हैं।

योगाभ्यास में व्यक्ति के इन तीन संभाव्य सिद्धियों के साथ व्यवहार करते हुए बहुत क्रियात्मक अंतर होता है। अगर मैं भगवान् को अपने व्यक्तिगत स्व के रूप में नहीं बल्कि तत् के रूप में अनुभव करूं जो गुप्त रूप से मेरी व्यक्तिगत सत्ता का परिचालन करता है, जिसे मैं पर्दे के पीछे से बाहर ला सकता हूं या मैं उस देवता को अपने अंगों में चित्रित कर लूं तो यह सिद्धि तो होगी पर होगी सीमित-सी। अगर मैं वैश्व देव को सिद्ध कर लूं, उसके अंदर समस्त वैयक्तिक आत्मा को खो दूं तो वह बहुत विशाल सिद्धि होगी और मैं केवल वैश्व शक्ति की एक वाहिनी मात्र बन जाऊंगा और मेरे लिये कोई व्यष्टिगत या दिव्य रूप में व्यक्तिगत उत्कर्ष न होगा। और अगर मैं केवल परात्पर सिद्धि में उछलकर जा पहुंचूं तो मैं परात्पर परम पुरुष में दोनों को—अपने-आपको और इस जगत् को—खो दूंगा। इसके विपरीत यदि मेरा लक्ष्य इन तीनों में से कोई न हो बल्कि मैं भगवान् को प्राप्त करना और उन्हें इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जगत् में अभिव्यक्त करना चाहूं और इसके लिये अभीतक अभिव्यक्त दिव्य शक्ति को उतार लाना चाहूं—उदाहरण के लिये अतिमानस को—तो इन तीनों का सामंजस्य अनिवार्य हो जाता है। मुझे उसे नीचे लाना है, और मैं उसे कहां से नीचे लाऊंगा क्योंकि अभीतक तो वह वैश्व-सूत्रों में अभिव्यक्त नहीं है? अनभिव्यक्त परात्पर में से नहीं तो कहां से, और मुझे वहांतक पहुंचना और उसे सिद्ध करना होगा। मुझे उसे वैश्व सूत्र में लाना होगा। अगर ऐसा है तो मुझे वैश्व भगवान् को सिद्ध करना होगा, वैश्वात्मा और वैश्व शक्तियों के बारे में सचेतन होना होगा। लेकिन मुझे उसे यहां मूर्त्त रूप देना होगा वरना वह केवल एक प्रभाव बनकर रह जायेगा, भौतिक जगत् में स्थिर वस्तु नहीं बन पायेगा। यह केवल व्यष्टि के अंदर स्थित भगवान् के द्वारा ही किया जा सकता है।

आध्यात्मिक अनुभूति के गति-विज्ञान में ये मूल तत्त्व हैं और अगर भागवत कार्य करना है तो मुझे इनको स्वीकार करना होगा।

*

निर्वैयक्तिक सत्, चित् और आनंद है, वह व्यक्ति नहीं बल्कि अवस्था है। व्यक्ति या पुरुष अस्तित्ववान् (सत्), चेतनामय और आनंदमय है। चेतना, सत् और आनंद को अगर अलग-अलग चीजों के रूप में लिया जाये तो वे केवल उसकी सत्ता की अवस्थाएं हैं लेकिन वस्तुतः दोनों (व्यक्तिगत सत्ता और शाश्वत स्थिति) एक-दूसरे से अलग नहीं की जा सकती और वे एक ही सद्वस्तु हैं।

*

मन वैयक्तिक और निर्वैयक्तिक दोनों को एक-दूसरे के विरुद्ध पृथक् देखता और अनुभव करता है और एक या दूसरे को सर्वोच्च के रूप में देखता और घोषित करता है ताकि वैयक्तिक निर्वैयक्तिक में लय पा जाये या उसके विपरीत निर्वैयक्तिक परम और भागवत पुरुष की अखंड सत्ता में विलीन हो जाये—इस दृष्टि से निर्वैयक्तिक वैयक्तिक (साकार भगवान्) का एक गुण या शक्ति मात्र होता है लेकिन मन के परे आध्यात्मिक अनुभूतियों के शिखर पर मनुष्य यह अनुभव करने लगता है कि ये सब चीजें एक-दूसरे में घुल-मिलकर इकाई बन रही हैं। चेतना, सत्ता, आनंद अपनी अविभाज्य एकता सच्चिदानंद में लौट आते हैं। वैयक्तिक और निर्वैयक्तिक अटल रूप से एक हो जाते हैं और एक को दूसरे के विरुद्ध खड़ा करना अज्ञान का कार्य प्रतीत होता है। एक होने की यह प्रवृत्ति अतिमानसिक चेतना और अनुभूति का आधार है।

स्मरण-शक्ति और ग्रहणशीलता

स्मरण-शक्ति को कैसे बढ़ाया जा सकता है?

अपनी चेतना का विस्तार करो और तुम्हारी स्मृति बढ़ेगी।

चेतना यांत्रिक मस्तिष्क की स्मृति से बहुत ज्यादा बड़ी स्मृति है। मैंने यह बात एक दिन, अभी बहुत दिन नहीं हुए, तुम्हें समझायी थी। मैंने तुम्हें बतलाया था कि यांत्रिक मस्तिष्क की स्मृति भूल सकती है—उलझन डाल सकती है, विकृत कर सकती है—लेकिन अगर तुम अपने अंदर फिर से उस चेतना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को स्थापित कर सको जिसमें तुम उस समय थे तो तुम्हें ठीक वही अनुभूति होगी। और यही एकमात्र सच्ची स्मृति है। और यह पूरी तरह तुम्हारी चेतना के विकास पर निर्भर है!

आपने कहा है कि भौतिक स्तर पर "ग्रहणशीलता एक बड़ी मात्रा में प्रतिरोध के साथ मिली रहती है"। यह प्रतिरोध क्या है?

तुम्हारे शरीर में प्रतिरोध नहीं है? नहीं है क्या? जब तुम कोई व्यायाम करना चाहो तो क्या तुम शरीर के साथ जो भी करना चाहो कर सकते हो? और जब तुम स्वस्थ रहना चाहो तो क्या तुम्हारा शरीर हमेशा आज्ञा-पालन करता है? और जब तुम अपना पाठ सीखना चाहो तो क्या तुम्हारा मस्तिष्क हमेशा उसे समझ सकता है? यही तो प्रतिरोध है। जो कुछ प्रगति करने से इंकार करता है वह सब प्रतिरोध है। और मेरा ख्याल है कि प्रतिरोध की मात्रा ग्रहणशीलता की मात्रा से बहुत अधिक है। ग्रहणशील होने के लिये बहुत ज्यादा परिश्रम करने की जरूरत होती है।

तुम नहीं जानते—यह ऐसी चीज है जिसे शायद तुम एक दिन जान पाओगे, शायद तुम्हें एक दिन बताया जाये, तुम्हें यह समझाया जा सके—तुम कल्पना नहीं कर सकते कि शक्ति का कितना बड़ा सैलाब तुम्हारे अधिकार में है। और साधारणतः तुम उसे अनुभव भी नहीं करते। जब तुम्हें अनुभव होता है तो तुम्हारे अंदर कोई चीज सिकुड़ती है क्योंकि वह बहुत ज्यादा है, यही चीज तुम्हारे कोषाणुओं में एक प्रकार का सहज भय भर देती है। और जब तुम्हें वह प्राप्त होती है तो तुम तीन-चौथाई से अधिक छलका देते हो जैसे चीज ज्यादा भरे हुए बरतन में से निकल जाती है। वह छलक जाती है, गिर जाती है, क्योंकि तुम उसे रख सकने में असमर्थ हो। मुझे ऐसे बहुत-से लोग मिले हैं जिन्होंने यह शिकायत की है कि उन्हें कुछ भी नहीं मिल रहा, अर्थात्, उनमें वह शक्ति नहीं है जिसकी उन्हें जरूरत थी। इसका कारण यह है कि वे उसे ग्रहण करने में बिल्कुल असमर्थ थे। वे जितनी ले सकते थे उससे लाखों गुना अधिक शक्ति मौजूद थी। बात ऐसी है। तुम सब विशाल विस्मयकारी स्पंदनों के सागर में हो। तुम उसके बारे में बिल्कुल नहीं जानते, क्योंकि तुम ग्रहणशील नहीं हो। और तुम्हारे अंदर ऐसा प्रतिरोध है कि अगर कोई चीज अंदर घुसने में सफल हो जाये तो उसका तीन-चौथाई भाग उग्रता से बाहर फेंक दिया जाता है, क्योंकि तुम उसे समा नहीं सकते...। मैं साधारणतः इस विषय की बात नहीं करती, लेकिन अब चूंकि हम इस विषय में बात कर रहे हैं इसलिये तुम्हें बता रही हूं। और शायद एक दिन मैं तुम्हें इसका उदाहरण दूंगी। यह ऐसी बात है जिसपर विश्वास नहीं होता। उदाहरण के लिये, शक्तियों की चेतना को लो। प्रेम की शक्ति की तरह समझने की शक्ति, सृजन-शक्ति (हर चीज के लिये वही बात है, संरक्षण की शक्ति, वृद्धि की शक्ति आदि, और प्रगति की शक्ति, हर चीज के लिये), चेतना को लो, केवल यह चेतना जो हर चीज को घेरे हुए है, हर चीज में प्रवेश करती है, जो हर जगह है, हर चीज में है...। यह ऐसे लगती है मानों एक उग्रता हो जो अपने-आपको ऐसी सत्ता पर आरोपित करना चाहती है जो उसे ग्रहण करने या सहन करने में असमर्थ है। और मैं अच्छे-से-अच्छे की बात कर रही हूं, लेकिन हर एक में बड़ा या छोटा, कम या अधिक महत्त्वपूर्ण भाग होता है जिसमें अभीतक सद्भावना नहीं है, जो अभी दुर्भावना की सीमा पर है और किसी भी मूल्य पर उस चीज को नहीं फेंकना चाहता जो वहां है। लेकिन अगर तुम सचेतन हो और केवल श्वास लो, कुछ अधिक नहीं, बस इतना ही, तो तुम चेतना, प्रकाश, समझ, शक्ति, प्रेम और बाकी चीजों को सांस के साथ अंदर लोगे। और यह सब धरती पर व्यर्थ हो रहा है, क्योंकि धरती उसे लेने के लिये तैयार नहीं है। तो बस।

(श्रीमातृवाणी से)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्योति से ज्योति की ओर

(एक प्रतीकात्मक कहानी)

जगज्जननी ने अपने स्वर्णिम स्वर्गलोक से नीचे झांका। धरती पर अनेक महाशक्तियां विचर रही थीं। एक वामनाकार अत्यंत बलिष्ठ पीतवर्ण पुरुष समुद्र के बीच खड़ा समुद्र के उस पार खड़े एक और गौर वर्ण, नीली आंखों और सुनहरे बालोंवाले दैत्याकार पुरुष से कई अस्त्र ले रहा था। वामन भगवान् की तरह वह भी एक-एक कदम में अनेक देशों और समुद्रों को लांघता हुआ आगे बढ़ रहा था। उसके चारों ओर लाल प्रकाश की आभा बिखर रही थी। असंख्य नर-नारी उसके चरणों पर झुक-झुक कर प्रणाम कर रहे थे। उसके गौरव, संयम और सौंदर्य-प्रेम की सीमा न थी। नीचता स्वप्न में भी उसके पास न फटक सकती थी।

उधर दैत्याकार गौर पुरुष स्वभाव से ही कुछ-कुछ राक्षस जैसा था। वह प्रकृति को विजेता की दृष्टि से देखता था। उसके हृदय में विशालता थी, उदारता थी और थी साथ-साथ नीचता, लोलुपता और स्वार्थपरता। उसने प्रकृति के रहस्यों को खोजकर स्वार्थ-भरे उपयोगों के लिये जोत लिया था। अपनी दृष्टि में वह पृथ्वी का सर्वोच्च, सर्वोत्तम प्राणी था और पशु, पक्षी, वनबीहड़, सब, एकमात्र उसीके उपभोग के लिये सरजे गये थे। उसकी गति तीव्र थी और उसकी शक्ति असीम। अपनी जाति के लोगों के लिये वह उदार, विशाल और प्रेम-भरा था। लेकिन अपार शक्ति ने उसे अंधा बना दिया और उसने सारी धरती पर अपने विचार, अपनी इच्छाएं, अपने आदर्श और अपनी दृष्टि लादने की ठानी। प्रकृति से प्राप्त शक्तियों को उसने अपना मान लिया और मदमत्त होकर अपने-आपको दूसरा निर्माता मान बैठा। उसके चारों ओर रक्त-धूमिल प्रकाश फैला था। उसके विराट् रूप के आगे असंख्य नर-नारी झुक-झुक कर प्रणति कर रहे थे और उसके नीचे आकर कुचले जानेवालों की संख्या भी कम न थी। छोटे-छोटे अनगिनत शक्तिपुंज धरती पर विचर रहे थे। कितने ही बौने हाथों में दंड और धन से भरी थैलियां लिये घूम रहे थे। असंख्य स्त्री-पुरुष उनके पीछे-पीछे हाथ फैलाए याचना करते चल रहे थे। बौने किसीके हाथों में छोटी-सी थैली पकड़ाकर डंडे के जोर पर उसे अपने आगे-आगे चलाते जाते थे। उन्हें थैली खोलकर बार-बार धन देखने का और उसे देखकर गर्व से फूलने का पूरा अधिकार था किंतु वे उसमें से एक सिक्कातक स्वतंत्रता से निकाल न पाते थे। बौनों के इशारों पर ही थैलियां खुलती और बंद होती थीं।

वहीं कवचधारी, वज्रदेह, अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित असुर घूम रहा था। चारों ओर के क्रन्दन और चीत्कारों के बीच का अट्टहास्य भले-भलों का दिल दहलाता था। वह खोपड़ियों के सिंहासन पर बैठा सैनिकों की सलामी ले रहा था। घायल और मृतप्राय लोगों के श्वास से हवा बोझिल हो उठी थी।

लेकिन यह क्या ? इतने शोर-गुल के होते हुए ये दो विराट्काय सुंदर देव आकृतियां सो क्यों रही हैं ? ये दोनों बेसुध होकर पास-पास सो रहे हैं। एक पीतवर्ण और सुकुमार हाथ-पांववाला था जिसके सोते हुए चेहरे पर प्रगाढ़ शांति विराजमान थी। उसके पास ही एक और बलिष्ठ, सुगठित अवयवोंवाला स्वर्णिम देव निद्रामग्न था। उसके होठों पर हल्की मुस्कान थी मानों सुखद स्वप्न देख रहा हो। दोनों के हाथ-पांव शृंखलाओं में जकड़े हुए थे। उनसे कुछ दूर एक गौरवर्ण असुर अस्त-व्यस्त बाल लिये हाथ-पांव फैलाकर खर्राटे ले रहा था।

जननी ने अपने ही हाथों से इस बहुविध जाति का निर्माण किया था। फिर भी, आश्चर्यचकित होकर उनकी आंखें इस विचित्र लीला को देखती रह गयीं। उनकी दृष्टि बार-बार सोई हुई तीन विराट् शक्तियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर जा अटकती थी। इन्हें कैसे जगाया जाये ? इच्छा करते ही उनके सामने शुक्राचार्य आ उपस्थित हुए।

देवी ने आदेश दिया : "तुम धरती पर जा कर सोए हुए महाअसुर को जगाओ।"

शुक्राचार्य ने धरती पर पहुंचकर भूरी आंखों और काले बालोंवाला एक मानव शरीर धारण किया। उस मानव ने असुर को झकझोर कर जगा दिया और उसे जगाकर समानता और एकता का पाठ पढ़ाया। असुर ने अपने जात-भाइयों को इकट्ठा किया और उनकी मदद से अकल्पनीय रक्तपात करके सबको एकता और समानता मानने के लिये बाध्य किया।

पीतवर्ण सोये हुए देव को जगाने के लिये देवी ने अपना एक दूत भेजा। दूत ने सोते हुए देवता को फुसफुसा कर जगाया और उसका ध्यान उसकी बंदी अवस्था की ओर खींचा। अफीम के नशे में झूमता हुआ देव बड़ी कठिनाई से खड़ा हुआ। उसके दैवी सामर्थ्य और साहस न मालूम कहां गुम हो गये थे। वह खड़ा-खड़ा ही ऊंघने लगा।

इतना सब होने पर भी स्वर्णमूर्ति-सा सोया हुआ देव पड़ा सोता रहा। उसे कैसे जगाया जाये ? उसकी कमल-सी आंखें कब और कैसे खुलेंगी ? जननी ने अपने साथी ईश्वर की ओर देखा। उनके लिये इतना संकेत काफी था। उन्होंने स्वीकृति में सिर झुकाया और धरती पर उतर आये। उनके आते ही पाताल में खलबली मच गई। इनका आना सभी आसुरी शक्तियों को चुनौती देता था। तिलमिलाकर चार महादैत्य इस नये अवतार के लिये घात लगाकर बैठ गये। जननी ने स्थिति की गंभीरता को देखा और तुरंत इन चारों के साम्राज्य के बीच में कूद पड़ीं। धरती के रात से भी काले हृदय में एक ज्योति का प्रवेश हुआ। ईश्वर ने सोते हुए देव के कान में कहा : "हे अमृत-पुत्र, उठो।"

सोते हुए देव ने अलसाई आंखें खोलीं। उसने अपने बंधन देखे और चाहा कि उनसे मुक्त हो जाये पर उसमें इतना बल न था। वह थोड़ा-सा प्रयास करके ही थक गया। ईश्वर की ओर देखते हुए उसने पूछा :

"भगवन्, इतनी दुर्बलता कहां से आ गयी है ? शरीर तो वही है पर मैं चाहते हुए भी बंधन-मुक्त क्यों नहीं हो पाता ?"

ईश्वर ने उत्तर दिया : "हे देव, तुम समर्थ हो, तुम महान् हो, तुम्हारे अंदर दैवी संपदा है, फिर भी तुम पर क्लीवता छाई है। तुमने महिमामयी देवी शक्ति का त्याग कर दिया और वे तुम्हें छोड़कर चली गयी हैं। शक्ति की उपासना करो। अपने हृदय से, मस्तिष्क से और भुजाओं से मां का आवाहन करो। वे ही तुम्हें बंधन-मुक्त कर सकेंगी।"

बात समझ में आ गयी। उस अति सुंदर देव ने आंखें मूंदकर भाव-भीने स्वर में आवाहन किया :

"वन्दे मातरम्

त्रिंश कोटि कंठ कल-कल निनाद कराले
द्वित्रिंश कोटि भुजैर्धृत खर करवाले
अबला कैनो मां ऐतो बौले
बहुबल धारिणीम् नमामि तारिणीम्
रिपुदल वारिणीम् मातरम्॥

तुमि विद्या तुमि धर्म
तुमि ऋद्धि तुमि मर्म
त्वम् ही प्राण शरीरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाहुते तुमि मा शक्ति, हृदये तुमि मा भक्ति
तोमारी प्रतिमा गोड़ी मंदिरे-मंदिरे ।।

त्वम् ही दुर्गा दशप्रहरण धारिणीम्
कमला कमलदल विहारिणीम्
वाणी विद्या धारिणीम्
नमामि त्वाम् नमामि कमलाम् अमलाम् अतुलाम्
सुजलाम् सुफलाम् मातरम् ।।''

आवाहन के साथ-ही-साथ धरती की गहराइयों में बैठी जननी ने अपने एक अंश को ऊपर भेजा। हीरों के जगमगाते किरीट और कुंडल से सुशोभित कमल-सी आंखों में अपार ममता लिये, गांभीर्य और माधुर्य से मंडित मुखवाली देवी लहराते मुक्त-केश के साथ प्रकट हुई, उसके चरण-कमल के चारों ओर समुद्र बार-बार प्रणाम करने लौटता था। उसके हाथ में एक रक्त कमल था। नील नभ से देवों ने पुष्प-वृष्टि की। देव ने इस रूप के सामने दंडवत् प्रणाम किया। जब वह खड़ा हुआ तो देवी ने उसे हृदयं से लगा लिया। लेकिन यह क्या ? देव आश्चर्यचकित हो अवकाश में इधर-उधर देखने लगा, फिर याचना-भरी दृष्टि से, विवश बालक की तरह उसने ईश्वर की ओर देखा। ईश्वर ने कहा :

''पूछते हो कहां गयी ? तुम्हीं में तो समा गई ? अब तुम्हें कोई नहीं रोक सकता। जिस क्षण चाहोगे उसी क्षण बंधन-मुक्त हो सकोगे।''

यह सुनते ही देव ने झटके से अपने बंधन तोड़ डाले लेकिन बंधन तोड़कर भी वह उद्विग्न ही रहा। अब ? क्या करना है ? कहां जाना है ? ईश्वर ने धरती में निहिंत जननी को पुकारा। जननी के आते ही महादैत्य अपने दलबल सहित सारी धरती पर छा गये।

कवचधारी युद्ध-लोलुप असुर और समानता तथा एकता के प्रतीक असुर के पीछे एक महादैत्य और उसकी सेना आ खड़ी हुई। असुर और दैत्य ने मिलकर ठीक किया कि धरती पर ईश्वर और जगज्जननी के कार्य को आगे न बढ़ने देंगे। भयंकर देवासुर संग्राम छिड़ गया। मानवजाति त्राहि-त्राहि करने लगी, वह कल्पनातीत अमानुषिक यंत्रणाओं से कांप उठी। करोड़ों मनुष्य त्राहि-त्राहि करने लगे। और उत्तर में जगज्जननी के करोड़ों अंश उनकी सहायता करने लगे। दुर्धर्ष युद्ध हुआ और धरती शवों से पट गई, वीभत्स रक्तप्लावन के बाद ईश्वर और ईश्वरी की विजय हुई। ईश्वर-भक्तों ने खुशी मनाई। लेकिन जननी सावधान थीं। वे जानती थीं कि अभी तो एक ही महादैत्य की पराजय हुई है।

अपने साथी की पराजय से क्षुब्ध होकर रात्रि से भी काला महादैत्य बार-बार आक्रमण करने लगा। उसकी बड़ी-बड़ी आंखों में चट्टान-सी निश्चलता थी। उसका अंग-अंग दृढ़ निश्चय से ही सरजा गया था। पराजय शब्द ही उसके लिये अपरिचित था। लेकिन एक शुभ मुहूर्त आया और जननी से उसकी आंखें चार हुईं। घुप्प अंधेरे में टिमटिमाती रोशनी की तरह उसकी पत्थर-सी आंखों में कहीं आकर्षण टिमटिमा उठा। जननी ने उसका हाथ पकड़ लिया। काले बादलों में बिजली चमकी।

जननी ने कहा : ''बैठो।''

न चाहते हुए भी दैत्य बैठ गया।

वे बोलीं : ''अपने जन्म की याद है ?''

दैत्य ने 'ना' में सिर हिला दिया।

वे बोलीं : ''विश्व अभी बना न था, दिन और रात अभी अस्तित्व में न आये थे। निबिड़ अंधकार में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठे परम पिता ने सर्जन का संकल्प किया और संकल्प के साथ ही उनके शरीर से एक विद्युत्-रेखा-सी प्रतिमा प्रकट हुई। वह उनका हृदय था। उस प्रतिमा ने—तुम उसे महेश्वरी कह लो, अदिति कह लो, जो नाम चाहो दे लो—उसने संकल्प मात्र से चार प्रकाश-मूर्तियों का सर्जन किया। वे प्रथम देव—चेतना और ज्योति, जीवन, प्रेम और प्रसन्नता और सत्य के मूर्तिमान स्वरूप थे। इन चारों ने ईश्वर और ईश्वरी को दंडवत् प्रणाम किया और पूछा : "आप हमसे क्या सेवा चाहते हैं ?' अदिति ने कहा : 'सृष्टि का सर्जन करो, मैं तुम्हें पूरी स्वतंत्रता देती हूं। जैसा चाहो वैसा सर्जन कर सकते हो।'

"बस, चारों एक-दूसरे का हाथ पकड़कर चल पड़े। चारों ने मिलकर विराट् सर्जन के लिये अपने असंख्य रूपों को अवकाश में भेज दिया। अंधकार में धीरे-धीरे प्रकाश खिलने लगा। असंख्य सूर्य-मंडल, नक्षत्र जगमगाने लगे। चारों ने अपने सर्जन की शोभा को देखकर गर्व का अनुभव किया।

"कुछ दूर ही जाकर उनमें से प्रत्येक सेवक बनने की जगह स्वामी बन बैठा। गर्व से दूषित सत्ताएं अपने-आपको ही अधिक महत्त्वपूर्ण समझने लगीं। प्रत्येक देव ने दूसरे की ओर घृणा से देखा, हर एक दूसरे की अवज्ञा करने लगा। परिणाम ! परिणाम यह हुआ कि चेतना और ज्योति का देव अवचेतना और अंधकार बन गया; प्रेम और प्रसन्नता द्वेष और दुःख में; जीवन मृत्यु में; और सत्य असत्य में बदल गया। किसी तत्त्व के एक ही गुण को लेकर, औरों से अलग चलें तो आगे चलते-चलते वह गुण भी अवगुण बन जाता है। इन चार नवजात देवों के साथ भी यही हुआ।

"वे बहुत जल्दी परम पिता ईश्वर से द्वेष करने लगे, उन्हें अपना दुश्मन मान बैठे। परम पिता के साथ संलग्न ध्यानमग्न देवी अदिति ने आंखें खोलीं तो देखा कि चार देव, जो अब चार असुर बन गये थे, अपने ही अनुरूप अंधकारमय, कठोर और ठोस गोले का सर्जन कर चुके थे। वहां जीवन के नाम पर मृत्यु का सन्नाटा था, वहां प्रकाश की जगह अंधकार था और सत्य की ज्योति का तो जन्म ही न हुआ था। एक अनसुना क्रंदन उसे घेरे हुए था। अदिति ने सोचा : 'ईश्वर ने अपने असंख्य रूपों की लीला करने के लिये सृष्टि का सर्जन करना चाहा था किंतु उनके प्रथम पुत्र उनके विरोधी बन गये और जिस प्रकाशमय, सौंदर्यमय, जीवन से भरे, सत्य के प्रकाश से जगमगाते लोक का सर्जन करना था उसकी जगह यह निर्जीव, कठोर, अंधकारमय पिंड बन गया।

"उन्होंने ईश्वर की ओर मुड़कर इस विचित्र सृष्टि को बचाने की प्रार्थना की। और असंख्य ज्योतिर्मय देव-देवियों से आकाश भर गया। देवी ने उन्हें सर्जन करने का आदेश दिया। अग्निदेव उस गोले पर अपनी दहनशीलता और प्रकाश लेकर कूद पड़े, किंतु गोले पर अधिकार जमाए असुरों ने साथ-ही-साथ परछाइयां भेज दीं, अंधकार भेज दिया। अग्नि की सहायता के लिये वायु आये। असुरों ने उनकी दुर्दम्य शक्ति को कम कर दिया। इन दोनों को जूझते देख उनकी सहायता के लिये वरुण आये और गोले पर अजस्र वर्षा की धाराएं गिरने लगीं। लेकिन गोले को छूते ही पवित्र जल गंदला गया। देवों ने असहाय होकर अदिति की ओर देखा। अदिति ईश्वर की ओर मुड़ी और उसकी मूक प्रार्थना के उत्तर में हीरे-सा जगमगाता हुआ एक धवल, सर्वांग सुंदर देव गोले पर कूद पड़ा। असुर उस जाज्वल्यमान प्रकाश को सह न सके। विरोध करना तो दूर रहा, जलकर भस्म हो जाने के डर से आंखें मूंदकर दूर हट गये। सुंदर, धवल देवमूर्ति गोले के हृदय में, जो अब अंधकारमय गुफा बना हुआ था, जाकर लेट गया और लेटते ही उसकी आंखें बंद हो गयीं। उस तुषार-धवल शरीर में से इंद्रधनुष से भी अधिक रंगों की आभा छिटकने लगी।

गोले के अंदर सोई हुई नारी मूर्ति ने अपनी आंखें पहली बार खोलीं। आंख खोलते ही उसने सोचा : 'मैं कौन हूं ?' आकाश में खड़े देवों ने उत्तर दिया : 'देवी, तू धरित्री है, परम पिता का प्रिय सर्जन है। तू सोने के लिये नहीं बनायी गयी। चल, वे तेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं ऊर्ध्वलोक में।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"देवी ने अंगड़ाई ली। आकाश से देवों ने धरती के पहाड़ों और नदियों पर तरह-तरह के संकल्प बरसाए। पानी पर काई फैल गयी। किनारों पर छोटे-छोटे पौधे और लताएं उग आये। जब हवा चलती तो पत्तों से मधुर संगीत सुनायी देता था। लेकिन यह क्या! पेड़ों और लताओं में भी अंधकार और मृत्यु ने प्रवेश पा लिया। देवों ने अदिति से प्रार्थना की : 'मां, इस तरह तो हम असुरों को कभी न हरा पाएंगे, वे हमारी हर कृति को विकृत कर देते हैं।'

"इस बार अदिति ने स्वयं अपने हृदय को प्रेम में केंद्रित किया और उनके हृदय से एक मधुर, अमीवृष्टिवाली सुंदर देवी ने कीचड़-भरे शून्य गोले के हृदय में छलांग लगायी। आकाश से देवों ने पुष्प-वृष्टि की। धरती का हृदय प्रेम से, वात्सल्य से भर गया और धरती पर नदियां और समुद्र छोटे-छोटे जीवों से चंचल हो उठे। इस तरह देव और असुर के मिले-जुले सर्जन से पृथ्वी भर गई। सोए हुए देवता की शक्ति से और मां अदिति की आहुति से पृथ्वी धीरे-धीरे रोग-शोक और मृत्यु से ग्रस्त होते हुए भी आगे बढ़ती गयी।

"हजारों वर्ष बीत गये। नाना प्रकार के परिवर्तनों के बाद धरती पर मन का अवतरण हुआ। मन के अवतरण के साथ मनुष्य आया, जो ईश्वर के सबसे नजदीक है। उसीने विकास के लिये पहला सचेतन प्रयास किया। उसने पहली बार सचेतन रूप से अभीप्सा की जिसके उत्तर में बार-बार खुद ईश्वर ने और देवी अदिति ने मानव शरीर धारण किया। वे राम बने, कृष्ण बने, बुद्ध बने, ईसा बने, और न जाने उन्होंने कितने मानव चोले धारण किये, किंतु भगवान् अकेले न रहे। असुरों ने भी इस नये तत्त्व—मन—पर अपना अधिकार कर लिया। मनुष्य रोग-शोक और जरा-मृत्यु का दास बन गया जो सचमुच अंधकार, अवचेतना और द्वेष के परिणाम थे। मनुष्य का अधिकार था अमरता, ज्योति, चिर यौवन प्राप्त करने का। किंतु असुरों ने उसका अधिकार छीन लिया था।"

देवी कुछ देर चुप रहीं, फिर सामने खड़े असुर की ओर देखकर बोलीं :

"तुम उन चारों में से एक हो, याद आता है?"

असुर ने सिर झुकाकर हामी भरी।

जगज्जननी के स्पर्श मात्र से उसके अंदर एक अजीब खलबली मची हुई थी। उसे अपना वह तेजोमय, बृहत्, सुंदर स्वरूप याद आया और उसने अपने वर्तमान शरीर पर दृष्टि डाली। कहां निष्कंप ज्योति-सा वह हल्का-फुल्का, फुर्तीला, सुंदर शरीर और कहां यह काली, ठोस, भारी-भरकम कुरूप देह! वह जो दिव्य सर्जन कर सकता था उसकी एक झलक मिली और अगले ही क्षण उसने सृष्टि पर अवचेतन और अंधकार देखा। असुर में कठोर परिश्रम की शक्ति होती है, असीम साहस होता है और निश्चय की दृढ़ता होती है। इन सबको इकट्ठा करके अवचेतना के असुर ने अपने ऊपर जमे अंधकार की परतों को हटाना शुरू किया। प्रत्येक परत को उखाड़ते हुए उसे प्राणहारक पीड़ा होती थी, किंतु वह अपने निश्चय पर डटा रहा।

बार-बार भगवती उसकी ओर करुणा-भरी दृष्टि से देखतीं और कहतीं : "वत्स, ये परतें तू नहीं है, तू प्रकाशमय है, अपने हृदय में पैठकर देख, यह तेरा रूप नहीं है।"

देवी के शब्द उसका बल बढ़ाते थे, उत्साह दूना करते थे। आखिर सब आवरण उतर गये और देदीप्यमान देव बालक अदिति की गोद में सिर रखकर बैठ गया। सिर सहलाते हुए देवी ने पूछा :

"अब तू ने अपना सच्चा रूप पा लिया, बोल, अब क्या करेगा?"

देव ने उत्तर दिया : "आपकी सेवा।"

देवी ने पूछा: "मानव शरीर धारण करेगा? याद रख तू अभी स्वतंत्र है।"

चेतना के नवजात देव ने कहा : "मां, मैं पूरी स्वतंत्रता के साथ तुम्हारी सेवा करना चाहता हूं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर एक बंधन होगा। मैं हवा की तरह मुक्त रहकर सारी पृथ्वी पर काम करूंगा।''

अदिति ने अपना वरद हस्त उसके सिरपर रखा और चेतना के देव ने मुड़कर आकाश में अपने विराट् कदम बढ़ाए। आकाश के देव और पृथ्वी के देव उसका स्वागत करने के लिये आगे बढ़े।

देवी ने चेतना के देव का यह स्वागत देखा तो प्रसन्नता से मुस्करायीं। उन्होंने अपने पास शिशुवत् खड़े दूसरे देव पर नजर डाली जिसने अभी-अभी शक्ति का आवाहन किया था और बोलीं :

''तेरा नाम है भारत। ईश्वर ने तुझे अपनी लीला के लिये चुना है। हर चतुर्युगी में वे एक देश को चुना करते हैं। इस बार उन्होंने तुझे चुना है।''

आश्चर्य से देखते हुए भारत ने कहा : ''तो क्या ये सब देव और असुर राष्ट्र हैं ?''

देवी ने कहा : ''हां। प्रत्येक राष्ट्र का अपना व्यक्तित्व है। वही उसकी अस्मिता है। जब कोई देश अपने अंदर निहित इस देवत्व के साथ एक होता है तभी सफलता पाता है और प्रगति करता है। तुमने भूतकाल में अपने देवत्व के साथ एक होकर सारी सृष्टि का नेतृत्व किया था। धीरे-धीरे तुम उससे दूर होते गये, तुमने शक्ति का अपमान किया, उसकी अवहेलना की, और वह तुम्हें छोड़कर चली गयी। तुम आलस्य में डूबने लगे, निर्वीर्य हो गये। इतने अधिक बलहीन हो गये कि एक छोटे-से देश ने तुम्हें अपना गुलाम बना लिया। गुलामी की इस अपमानजनक स्थिति में भी तुम लंबी ताने सोते रहे। तुम्हें जगाने के लिये स्वयं ईश्वर को नीचे उतरना पड़ा।

''अब भी तुम सामर्थ्यवान् नहीं हो। शक्ति की उपासना करो। भिन्न-भिन्न शक्तियों की उपासना करके तुम्हारे सहोदर देश कितनी उन्नति कर रहे हैं। विज्ञान की उपासना करके एक देश प्रायः सारी धरती पर छा गया। राजनीतिक शक्ति की उपासना करके एक और छोटा-सा देश सातों समुद्र पर प्रभुत्व फैला सका। लेकिन तुम्हें इन सब शक्तियों से भी ऊंची शक्ति की उपासना करनी है। कुछ लोग मानते हैं कि तलवार जैसी शक्ति और किसी में नहीं है। दूसरे कहते हैं शब्द-शक्ति तलवार की शक्ति से हजार गुनी अधिक समर्थ है। मैं कहती हूं कि शब्द की शक्ति से भी अनंतगुना सामर्थ्य है ब्रह्म-शक्ति में। अन्य सब शक्तियां उसके विभिन्न रूप मात्र हैं। ब्रह्म-शक्ति बीज है। तुम्हें उसीकी उपासना करनी है, उसे पाना है। तुम्हारा धर्म है उसी ब्रह्म के साथ सारे जगत् का, सभी देशों का नाता जोड़ना।''

स्वर्णिम देव ने नमस्कार किया। वह ब्रह्म-शक्ति के आवाहन में लग गया। लेकिन काम इतना आसान न था। बचे-खुचे असुरों की सेना उसपर टूट पड़ी। जो देश सत्यनिष्ठा के लिये प्रसिद्ध था वह अब असत्य, छल, कपट का डेरा बन गया।

ईश्वर और जगज्जननी की विजय की कल्पना मात्र से घबराए हुए असुरों ने हर देवोपम देश के व्यक्तित्व में छेद कर लिया। प्रामाणिकता, आदर्शवाद, सच्चाई, सबको मार भगाया गया। देशप्रेम भी मानों बहुमूल्य इत्र की तरह उड़ गया था। एक असुर धीरे-धीरे सब देशों का स्वामी बन बैठा। उसीके रहस्यमय इशारों पर देश गिरने और उठने लगे। फिर भी असुरों को संतोष न था क्योंकि यह सब होते हुए भी ईश्वर का काम आगे बढ़ता ही जा रहा था। देशों के स्वामी असुर ने अब उन्हें आपस में लड़ाने की ठानी। महाभयंकर विश्वसंग्राम छिड़ गया। देश-स्वामी असुर बड़ा मोहक, देदीप्यमान रूप लेकर देश के नेताओं को ठगता रहा। वे उसे ईश्वर मानकर उसकी आज्ञा का पालन करते रहे। एक दिन जगज्जननी और देशों के स्वामी में मुठभेड़ हो गयी। अदृश्य जगत् में दोनों का घोर संग्राम हुआ मानो दुर्गा और महिषासुर में नये सिरे से छिड़ गयी हो। धीरे-धीरे असुर के सारे अस्त्र उसके हाथ से गिर गये। परास्त असुर सिर पर हाथ रखकर बैठ गया। देवी ने उसे अपने मूल रूप की याद दिलायी, उसे फिर से अपनाने के लिये कहा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लेकिन नहीं, उसे इन चीजों में रस न था। शायद वह थक गया था। शायद इतना अधिक और इतना कठोर श्रम करके चूर-चूर हो गया था। उसने विनती की :

"ना, मुझसे और कुछ करने को न कहो, बस, अब मुझे अपना लो।"

"अपना लो मुझे" कहते-कहते उसने त्राटक किया और खड़ा-खड़ा देवी की ओर खिंचता चला गया। उसका अंत किसीने नहीं देखा। कहते हैं वह स्वयं देवी के अंदर समा गया।

अब बस, एक और अंतिम असुर बचा था। उसने निश्चय किया कि वह आसानी से हार न मानेगा। जहां कहीं ज़गज्जननी काम शुरू करतीं वह भी उनके पीछे-पीछे जा पहुंचता और कभी छिपकर तो कभी प्रकट रूप में हमला बोल देता। जननी का शरीर अनगिनत घावों से भर गया। असुर की छोटी-मोटी प्रजाएं, भूत-पिशाच आदि उनका मजाक उड़ाते : "हा . . . हा . . . देख लिया ? धरती पर तुम आयीं, तुम्हारे ईश्वर आये, लेकिन हुआ क्या ? हमें कोई नहीं हरा सकता।"

देवी की ललकार सुनकर कितनी ही आत्माएं मानव शरीर लेकर इस महायुद्ध में कूद पड़ीं। एक बार इस घमासान युद्ध में असुर ने देवी के हृदय पर चोट की। क्षण-भर के लिये वे निर्जीव-सी होकर गिर पड़ीं। देवों में अवसाद छा गया। भूत-पिशाच खुशी से नाचने लगे। लेकिन कुछ ही देर में देवी उठ खड़ी हुईं और उन्होंने असुरों के अंतिम गढ़, एक स्वर्णिम दरवाजे को अपने हथौड़े से तोड़ दिया। रोता-चीखता असुर भागने लगा। किंतु शांत, स्वस्थ, कदम बढ़ाती हुई देवी उसका पीछा करती रहीं। जब भागने का और रास्ता न दिखायी दिया तो हांफता हुआ असुर उनके कदमों में गिर गया। देवी ने मुस्कराते हुए कहा :

"अब यह मुखौटा भी उतार दो न।"

लपलपाती लाल जीभ, आरक्त विस्फारित नेत्र, नुकीले दांतों को बार-बार दिखाता हुआ चेहरा भयंकर था। देवी ने झुककर उस चेहरे को अपनी ओर खींचा।

चारों दिशाएं गड़गड़ाहट और गर्जना से गूंज उठीं। यह ध्वनि इतनी भयंकर थी कि सुनते ही अच्छे-अच्छों के कान बहरे हो गये। एक बार धरती और रसातल भी कांप उठे। देवी का हाथ हटते ही उसका कालकूट-सा विषैला चेहरा और मध्यरात्रि से भी काला मुख मानों धुंआ बनकर उड़ गये। उनकी जगह हजारों सूर्यों से भी अधिक देदीप्यमान देवमूर्ति खड़ी थी। जहां पहले सारी सृष्टि के कष्टों की जड़ थी वहां अब परम आनंद चमक रहा था। सृष्टि का सारा ही माधुर्य एक अनुपम मुख पर झलक रहा था। उन दो देदीप्यमान आंखों में से मूर्तिमान भक्ति और पूजा, देवी की ओर देख रही थीं। धरित्री इस विराट् मूर्ति के सामने हाथ जोड़े, आंखें ऊपर उठाए ऐसे खड़ी थी जैसे एक विराट् वृक्ष के सामने नन्हा-सा पौधा! इसी विराट् मूर्ति के पीछे उसे भी वामन बनाती हुई एक और मूर्ति खड़ी थी। यही तो वह हीरों-सा जगमगाता शरीर था जो सदियों पहले पृथ्वी के हृदय में जाकर सो गया था।

अदृश्य जगत् की इस विजय से भारत में एक अकल्पनीय परिवर्तन आया। ब्रह्म के उपासकों की शक्ति बढ़ने लगी। जनता ने उनके नेतृत्व की मांग की और धीरे-धीरे सारे देश में ब्रह्म के उपासक बढ़ने लगे। साथ ही ब्रह्म-शक्ति भी बढ़ने लगी। बचे-खुचे, छोटे-मोटे राक्षसों और भूत-प्रेतों ने इस ब्रह्म-शक्ति के आगे हथियार डाल दिये। जगत् के सभी देश, भारत की ओर पथ-प्रदर्शन के लिये मुड़ने लगे। फिर से भारत ने एक नये, स्वर्णिम युग का आरंभ किया। अब अंधकार से ज्योति की ओर नहीं, ज्योति से उच्चतर ज्योति की, असत्य से सत्य की ओर नहीं, सत्य से उच्चतर सत्य की ओर यात्रा होगी। और जरा-मृत्यु से मुक्त रूप का अवतरण होगा।

—अनुबेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रेष्ठं वरणम्

श्रूयताम् अत्यन्तलघुः किन्तु भावगम्भीरा कथा—पुराकाले ईश्वरस्य परमभक्तः कश्चिद् राजा दीर्घकालम् उपासनामकरोत्। तस्य इष्टदेवः प्रसन्नः, आविर्भूय राज्ञे आशीर्वादान् कृत्वा अवदत्—वत्स, प्रसन्नोऽस्मि अहं तव पूजया, गृहाण इमं खड्गं, विजयस्व च सम्पूर्णां धरित्रीम्।

साष्टाङ्गं प्रणम्य राजा अगदत्—भगवन्, कृतार्थः खल्वहं जातः भवतः दर्शनेन, किन्तु कृपया कथ्यताम्, सम्पूर्णां धरित्रीमपि प्राप्य किं प्राप्स्यामि वस्तुतः अहम् ?

—तदा स्थापय इमं स्पर्शमणिं स्वेन सह। तव राजकोषः सर्वदैव परिपूर्णः स्थास्यति।

—धनिकः भविष्यामि खल्वहं प्रभो ! किन्तु कृपया कथ्यतां तावत् धनं प्राप्य वस्तुतः किं प्राप्स्यामि अहम् ?

—बाढम् वत्स, तदा गृहाण स्वर्गस्य इमाम् अप्सरसम्।

—सुखोपभोगे लीनः भविष्यामि इमां प्राप्य अहं किन्तु वदतु, तेन सुखोपभोगेन कां सिद्धिं प्राप्स्यामि प्रभो ?

—तदा गृहाण इमं पादपम् ! इति अकथयत् ईश्वरः।

साश्चर्यं राजा अभणत्—कथ्यतां प्रभो, कः गुणः अस्य पादपस्य ? कश्चिद् विशेषः दृश्यते।

—वत्स ! अस्ति एषः प्रेम्णः पादपः, यत्र कुत्रापि स्यात् एषः सर्वेभ्यः प्रेमस्पन्दान् वितरिष्यति, अखिला पृथिवी अस्य पुष्पाणां सुगन्धेन सुवासिता, सुमधुरा भविष्यति।

ईश्वरं प्रणम्य बद्धाञ्जलिः राजा अवदत्—कृतार्थः वस्तुतः भविष्यामि पादपं प्राप्य प्रभो ! खड्गस्य तीक्ष्णता न चिरकालाय स्थास्यति, बहुधनं प्राप्य तस्य मदेन उन्मत्तः जायते जनः, अप्सरसः सौन्दर्यम् अद्य अस्ति श्वः वाष्पीभूय उड्डयिष्यते किन्तु अस्य पादपस्य सुगन्धः तु दिनानुदिनं वर्धिष्यते, सत्यप्रेम्णः स्पन्दाः तु सम्पूर्णधरित्र्याम् अभिनवप्राणान् सञ्चारयिष्यन्ति किञ्च तां सुखमये स्वर्गे रूपान्तरितां करिष्यन्ति येन देवाः अपि लालायिताः भविष्यन्ति अत्र अवतर्तुम्। तस्मात् भगवन्, प्रयच्छतु इमं पादपं येन सत्यतया सफलं स्यात् मे जीवनम्।

—वन्दना

————

मंत्र

तुम्हें कहना चाहिये, "चूंकि मैं केवल भगवान् को चाहता हूं इसलिये मेरी सफलता निश्चित है। मुझे केवल संपूर्ण विश्वास के साथ आगे बढ़ते चलना है और स्वयं उनका हाथ, उनके मार्ग से, उन्हींके समय पर, उनतक सुरक्षा के साथ पहुंचाने के लिये रहेगा।" इसे तुम्हें अपने सतत मंत्र की तरह रखना चाहिये।

—श्रीअरविंद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तक-परिचय

सुरभि—संपादक श्री विष्णु प्रभाकर; प्राप्ति स्थान, सस्ता साहित्य मंडल, कनाट सरकस, नयी दिल्ली—११०००१; मूल्य ७५ रु.।

हिंदी में स्मृति ग्रंथ प्रकाशित करनेवालों में श्री यशपाल जैन का विशेष स्थान है। सुरभि उन्हीं यशपाल जी की आदर्श पत्नी की सुरभि फैलाने का काम कर रही है। पुस्तक के संपादक के शब्दों में "इस ग्रंथ की रचनाओं में जो पुकार है, वही आदर्श की पहचान है, . . . आदर्श न होती तो यशपाल जी क्या होते यह कौन बता सकता है, नारी के इसी योगदान को उजागर करता है यह ग्रंथ। उनके जीवन-साथी, उनकी संतान, उनके परिजनों, प्रिय-जनों, जिनके संपर्क में वे आयीं उन मनीषियों, राजनेताओं, सहकर्मियों सभीने उस पहचान को शब्द दिये हैं।"

नारी का परिचय पाना जितना सरल है उतना ही कठिन भी। इस पुस्तक ने इस कठिन काम को अच्छी तरह निभाया है।

व्यक्तित्व का मनोविज्ञान—ले. सीताराम जायसवाल, प्रकाशक विनोद भंडार, आगरा—२।

"इस ग्रंथ में व्यक्तित्व के मनोवैज्ञानिक नियंत्रण के साथ-साथ उन सिद्धांतों पर भी प्रकाश डाला गया है जो व्यक्तित्व के स्वरूप की विभिन्न दृष्टियों से व्याख्या करते हैं" हिंदी में मनोविज्ञान पढ़नेवालों के लिये यह पुस्तक बहुत उपयोगी होगी।

राजस्थान साहित्य अकादमी के प्रकाशन :—

रेत पर नंगे पांव (काव्य संचय)—मूल्य ७५ रु.। **तपती धरती का पेड़**—मूल्य ६५ रु.।

दोनों पुस्तकें राजस्थान साहित्य अकादमी उदयपुर द्वारा प्रकाशित हैं। पहली में आधुनिक राजस्थानी हिंदी कविताओं का और दूसरी में कहानियों का संचय है।

पहली के लिये जैसा कि भाई आतुर ने अपने प्रकाशकीय वक्तव्य में कहा है "राजस्थान का आधुनिक हिंदी काव्य-साहित्य उन्हीं पगडंडियों और प्रशस्त मार्गों से चला है और आगे बढ़ा है जिनपर हिंदी कविता कभी रूठती और कभी मचलती, कभी ठिठकती और कभी द्रुतगति से दौड़ती हुई चली है। उन्हीं परिस्थितियों और परंपराओं का चित्रण और पोषण राजस्थान के आधुनिक हिंदी काव्य में हुआ है। एक उदाहरण देखिये : एक छोटे-से थैले में, इस दुनिया के कुछ सुख, बटोरने की कोशिश की है, अत्यंत आशावान् होकर, मैं इसे हाथ में झुलाता चल दिया बाजार।

आज इसमें भर लूंगा, अपनी गिरस्ती के लिये बहुतेरे तोहफे नायाब, लेकिन लौटते-लौटते जेब बिल्कुल खाली और थैले का पेट तो क्या, पैंदा भी नहीं छुआ . . . क्या खरीदा था ऐसा, सोना-चांदी, सच्चे मोती, बिल्कुल भार भी नहीं, भराव नहीं . . .

शायद आज थैले में रेत भरकर, लौटा।

एक और कविता देखिये :

हम ईमानदारी और वायदे की राइफलें लेकर, अन्याय से जहाद नहीं ठानते, केवल अपने स्वार्थ का शिकार करते हैं, और इसके बाद कुछ दिन चैन की नींद सोते हैं। जब हमारे अपूर्ण स्वप्न राइफलों की नलियां, जंग के माफिक जमने लगते हैं, तो हम ईमानदारी और शांति के लिये गोलियां नहीं चलाते। केवल संगीन तान लेते हैं और इस तरह, बिना गोली या तीर के ही, मार लिया जाता है दूसरा स्वर्ण मृग !

तपती धरती का पेड़ आधुनिक कहानियों का संग्रह है, इससे हमें राजस्थान के आधुनिक मानस का अच्छा परिचय मिलता है। आधुनिक भारत की सभी भाषाओं की कहानियों में एक साम्य है, इधर मत बहो हवा, श्रवण की डायरी, पेड़ कट गया, हवा पानी तेरा रंग आदि ३० कहानियां हैं अलग-अलग लेखकों की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अविचल श्रद्धा का होना अच्छा है—यह तुम्हारे पथ को अधिक आसान और छोटा बना देती है।

—श्रीमां

एस. एन. सण्डरसन एण्ड कम्पनी

१ देशबन्धु गुप्त रोड

नयी दिल्ली-११००५५

With the Best Compliments of:

SHARAT DEORAH

Indian Transport Agency

Leading Bank approved Transport House
since 1949; Fleet Owners

H.O.: **24 Ganesh Chandra Avenue, Calcutta – 700 013**

PHONES: 26-1953/26-5003 TELEX: 021-7889 DORA IN

branches:

Bombay, Gauhati, Dibrugarh, Digboi, Tinsukia, Sibsagar, Jorhat, Shillong, Nowgong, etc.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Assam Tea Warehousing Corporation
Indian Tea Storage Agency

The most tried & trusted warehouse of
Tea Trade at Gauhati and Calcutta

3-B, Lal Bazar Street
R.N.M. House, 4th Floor
CALCUTTA : 700 001.

Phone: 28-1287 & 28-1290 Gram: INTEASTORE
Tlx No.: 21-7889 DORA IN

Nothing but a radical change of consciousness can save humanity from the terrible plight into which it is plunged.

THE MOTHER

With the Compliments of:

Sri Mahalaxmi Oil Mills

RANIGANJ, Burdwan (W. Bengal)

M/S New Horizon Agencies

BITUMEN & P.O.L. PRODUCTS
TRANSPORT CONTRACTOR
H.O. RANIGANJ – 713347 (W. Bengal)

With Best Compliments of:

deorah Seva Nidhi

(Charitable Trust Dedicated to Service)

25 Ballyganj Park
Rajnigandha 13 E
CALCUTTA 700019

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी भी बाधा पर एकाग्रचित्त न हो, वह उसमें अधिक बल भर देती है।

—श्रीमां

इण्डियन आयल के निम्नलिखित डीलर्स आपकी सेवा में

कुमार आयल्स
केरोसिन व मोबिल आयल डीलर्स
राम तीर्थ मार्ग, सहारनपुर—२४७००१
फोन ४०६५

कुमार आयल्स
केरोसिन व मोबिल आयल डीलर्स
देवबन्द
पी पी फोन ३७७

बन्सल एण्ड कम्पनी
पैट्रोल पम्प, उत्तर काशी
फोन ४५

हेड आफिस:

बन्सल निकेतन
लक्ष्मण झूला मार्ग
ऋषिकेश
फोन १२५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R. N. 8837/65

Regd. No. M/8127

For us there is only one thing that counts. We aspire for the Divine, live for the Divine, act for the Divine.

The Mother

INLAND CARRIERS
(BOMBAY)

Head Office:
Takhatmal Estate
AMRAVATI - 444 601

Phone: 2228 and 2236 **Gram:** INACARS

Booking Offices:

i) 112, Sarang Street, BOMBAY-400 003 (Phone: 327710)
ii) 312, Nana Peth, Laxmi Road, PUNE-441 002 (Phone: 28027)
iii) Inside Panchkuwa, Bhistiwad, AHMEDABAD-1 (Phone: 384081)
iv) Tin-Nal Chowk, Gandhi Chowk, NAGPUR-444 002 (Phone: 42643)
v) 15-8-292, Ghoshamahal Road, HYDERABAD (Phone: 41685)
vi) Opp. Old Magistrate's Court, Gheekanta, BARODA (Phone: 51919)

12 / 90
10

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्च १९९०

पुरोधा

पुस्तकालय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

From the standpoint of Yoga it is not so much what you do but how you do it that matters most.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिमी बंगाल, राजस्थान, मध्य प्रदेश, हरियाना,
गुजरात, ओड़िसा, आंध्र प्रदेश, पंजाब और मैसूर सरकार द्वारा
सरकारी पुस्तकालयों, विद्यालयों और महाविद्यालयों आदि के लिये स्वीकृत

पुरोधा मार्च १९९० **वर्ष २८, अंक ५, पूर्णांक २७९**

विषय-सूची

प्रार्थना और ध्यान	श्रीमां	२
गुह्य योजना (सॉनेट)	श्रीअरविंद	३
दैनन्दिनी		४
योग-प्रणाली	श्रीअरविंद	७
दुर्घटनाओं का चरित्र से गहरा संबंध	श्रीमां	९
'भारतीय संस्कृति के आधार' पर आधारित : आध्यात्मिक झुकाव		११
सांध्य वार्ताएं : मनुष्य तथा अन्यान्य लोक		१२
'कुछ माताजी के बारे में' : विरोधी शक्तियां तथा श्रद्धा		१५
आसम : एक घोड़े की आत्म-कथा	अनुबेन	१८
भगवान् के रूप	श्रीअरविंद	२४
'गैर्वाणी' : यस्य हृदयं शुद्धम् . . .	वन्दना	२५
पुस्तक-परिचय		२५
स्फुट वचन		२७

आपका अग्निशिखा/पुरोधा का चंदा . . . में समाप्त हो रहा है। कृपया अग्निशिखा के १० और पुरोधा के १४ शीघ्र भेजें अन्यथा अगला अंक वी.पी.पी. से जायेगा। वी.पी.पी. लौट आने से हमें बहुत हानि होती है। अलग अनुस्मारक नहीं भेजा जायेगा। कृपया चेक न भेजें। चाहें तो २२५ या २७५ एक साथ या किस्तों में देकर अग्निशिखा और पुरोधा के ५०० देकर आजीवन सदस्य बन सकते हैं।

	पुरोधा	अग्निशिखा	दोनों मिलाकर
आजीवन सदस्यता शुल्क	२७५	२२५	५००
वार्षिक शुल्क	१४	१०	२४

संपर्क-सूत्र—संपादक पुरोधा एवं अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी—६०५००२

संपादक : रवींद्र, वंदना
प्रकाशक : अनिरुद्ध सरकार, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२
मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रार्थना और ध्यान

२ दिसंबर १९१२

जबतक सत्ता का एक भी तत्त्व, विचार की एक भी लहर बाहरी प्रभावों के आधीन है, पूरी तरह तेरे आधीन नहीं है—तबतक यह नहीं कहा जा सकता कि सच्चा ऐक्य सिद्ध हो गया है, अभीतक भयंकर मिश्रण है जिसमें कोई व्यवस्था या प्रकाश नहीं है—क्योंकि वह तत्त्व, वह लहर एक जगत् है, अव्यवस्था और अंधकार का जगत्; उसी तरह जैसे जड़-भौतिक जगत् के अंदर समस्त पृथ्वी, जैसे समस्त विश्व के अंदर जड़-भौतिक जगत्।

—श्रीमां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुह्य योजना

कितने ही दीर्घ हों महारात्रि के प्रहर, मैं नहीं करूंगा स्वीकार
कि मनुष्य का यह छद्मरूप आवरण और लघु अहंकार
ही हैं हमारे जीवन-आयोजन में ईश्वर का प्रकटीकरण,
प्रकृति के विश्वव्यापी उद्यम का अंतिम परिणमन।

एक महत्तर उपस्थिति प्रकृति-गर्भ में है क्रियाशील,
अपने भावी प्राकट्य के लिये दीर्घकाल से प्रयत्नशील:
पशु और पाषाण में भी प्रच्छन्न है देवत्व,
शाश्वतता का ज्योतिर्मय अंतर-व्यक्तित्व।

यह फूट निकलेगा मन की अनुरेखित सीमा का कर भेदन
और इसका साक्षी हो जायेगा पूर्वचेता आत्म-मन;
अपने हर अचित् भाग में दीर्घकाल से आच्छन्न
इस जड़ अंध प्रकृति में भी इसका होगा प्रकटीकरण।

मनुष्य के भीतर विश्वव्यापी अमर आत्मा की महान्,
रहस्यमय योजना का करते हुए निष्पादन।

अनु०—अमृता भारती —श्रीअरविंद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दैनन्दिनी

मार्च

१. एक नितांत नूतन जीवन के साथ भगवान् के अंदर निवास करो, जीवन एकमात्र भगवान् का बना हुआ हो जिसमें भगवान् ही परम प्रभु हों—इस तरह सब कठिनाइयां प्रशांति में और सारी मनोव्यथा शांति में बदल जायेगी।

भगवान् वह मित्र, वह शक्ति, वह सहारा और वह मार्गदर्शक हैं जो कभी धोखा नहीं देते, भगवान् वह प्रकाश हैं जो अंधकार को तितर-बितर कर देता है, वह विजेता हैं जो विजय को निश्चित बनाता है।

२. **प्रश्न**—माताजी, क्या भगवान् अन्याय के लिये दंड देते हैं? क्या भगवान् के लिये किसीको दंड देना संभव है?

उत्तर—भगवान् चीजों को उस तरह नहीं देखते जैसे मनुष्य देखते हैं और उन्हें दंड देने और पुरस्कार देने की आवश्यकता नहीं होती। प्रत्येक क्रिया अपने अंदर अपना फल और अपना परिणाम लिये रहती है।

क्रिया की प्रकृति के अनुसार वह तुम्हें भगवान् के निकट लाती है या उनसे दूर ले जाती है और यही परम परिणाम है।

३. हम सुखी होने के लिये धरती पर नहीं हैं क्योंकि पार्थिव जीवन की वर्तमान दशा में सुख असंभव है। हम धरती पर भगवान् को पाने और चरितार्थ करने के लिये हैं क्योंकि केवल दिव्य चेतना ही सच्चा सुख दे सकती है।

४. कुछ लोगों का प्राण हमेशा अस्तव्यस्तता, असामंजस्य, तुच्छ झगड़े और गड़बड़ों को बुलाता रहता है। उनमें साधारणतः पूर्णता का पागलपन भी होता है और वे यह मानते हैं कि हर एक उनके विरुद्ध है। इसे ठीक करना बहुत अधिक कठिन है और इसमें प्रकृति के आमूल रूपांतर की जरूरत होती है।

ऐसों के साथ व्यवहार करते हुए सबसे अच्छी चीज है उनकी प्रतिक्रियाओं की परवाह न करना और तुम्हें जो करना है उसे सरलता और सचाई के साथ करते जाना।

५. औरों की रायों को कोई महत्त्व देने की जरूरत नहीं है क्योंकि वे चलते हुए संस्कारों के चलते हुए परिणाम हैं। अन्य समय और अन्य संस्कार उन्हें आसानी से बदल देंगे।

६. तुम्हें काम भगवान् के प्रति अर्घ्य के रूप में करना चाहिये और उसे अपनी साधना का अंग मानना चाहिये। उस भाव के साथ काम के स्वरूप का कोई महत्त्व नहीं और तुम आंतरिक उपस्थिति से संपर्क खोये बिना कोई भी काम कर सकते हो।

सच्चे भाव से किया गया काम ध्यान है।

७. कोई भी चीज इतनी छोटी नहीं है कि उसकी अवहेलना की जाये, वही सावधानी सभी परिस्थितियों में उपयोगी होती है।

जो भी काम सावधानी से किया जाये वह मजेदार बन जाता है।

८. थके बिना काम करने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि चाहे जो भी काम हो उसे भगवान् के अर्पण कर दो और तुम्हें जिस सहारे की जरूरत है उसे भगवान् में ही पाओ क्योंकि भगवान् की शक्ति अपार है और उन्हें जो कुछ भी सचाई के साथ अर्पित किया जाये वे हमेशा उसका उत्तर देते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हां, जब तुम यह अनुभव करो कि तुम्हारे अंदर और तुम्हारे द्वारा भगवान् की शक्ति ने काम किया है तो अपनी सच्चाई से तुम जानो कि श्रेय 'उनको' जाता है तुम्हें नहीं। अतः गर्व करने के लिये कोई कारण नहीं रहता।

९. . . . रही बात कठिनाइयों और कमियों की तो ये सभी के लिये हैं और तुम उन्हें पार करने के लिये ही आये हो। कर्म की साधना का यही अर्थ है। साहस के साथ अपना काम किये जाओ, भगवान् पर पूरी श्रद्धा रखो और केवल उन्हींकी सहायता और कृपा का भरोसा रखो।

१०. सभी कार्य प्रसन्नता से करने का यत्न करो, परंतु प्रसन्नता कभी तुम्हारे कार्य का प्रेरक भाव न बनने पाये।

कभी उत्तेजित, उद्विग्न या विक्षुब्ध मत होओ। सभी अवस्थाओं में पूर्ण रूप से शांत बने रहो, फिर भी सदा सजग रहो ताकि जो उन्नति तुम्हें करनी है उसे तुम जान सको तथा समय नष्ट किये बिना उसे प्राप्त कर सको।

११. किसीके व्यवहार के प्रति शिकायत मत करो जबतक तुम्हारे अंदर उसके स्वभाव की उस चीज को बदलने की शक्ति ही न हो जो उसे वैसा करने को प्रेरित करती है; और अगर तुम्हारे पास वह शक्ति है तो शिकायत करने के स्थान पर उसे बदल दो।

१२. अपने काम पर एकाग्र होओ—इसीसे तुम्हें बल मिलता है।

तुमने जो काम हाथ में लिया है उसमें सच्चे रहो तो भागवत कृपा हमेशा तुम्हारी सहायता के लिये मौजूद रहेगी।

१३. तुम जो भी करो अपने लक्ष्य को सदा स्मरण रखो। इस महान् उपलब्धि की खोज में कोई भी चीज बड़ी या छोटी नहीं है; सभी समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं, ये इसकी सफलता में सहायता भी पहुंचा सकती हैं और बाधा भी डाल सकती हैं, जैसे भोजन से पहले तुम इस अभीप्सा पर कुछ क्षण अपना ध्यान एकाग्र करो कि जो खाना तुम खाने लगे हो वह तुम्हारे शरीर के लिये उस प्रयोजनीय तत्त्व को पैदा करे जो इस महान् उपलब्धि के लिये तुम्हारे प्रयत्न का ठोस आधार बनेगा तथा उसे इस प्रयत्न में सहनशीलता और अध्यवसाय की शक्ति प्रदान करेगा।

१४. सब कुछ उस भाव पर निर्भर है जिससे तुम काम करते हो। अगर उचित वृत्ति से काम किया जाये तो निश्चय ही वह तुम्हें मेरे नजदीक लायेगा।

१५. . . . इसके विपरीत मुझे ऐसा लगता है कि सबसे अच्छा तरीका यह है कि तुम वहीं रहो जहां हो और स्वयं अपनी गलतियों को खोजने का प्रयास करो—और सभीकी तरह तुम्हारे अंदर भी कुछ होंगी—और उन्हें ठीक करने की कोशिश करो। अपनी भूलों के बारे में सचेतन होना किसी कठिनाई से बाहर निकल आने का सबसे निश्चित तरीका है।

१६. अपने-आपको माफ कर देने से कोई फायदा नहीं। तुम्हारे अंदर यह संकल्प होना चाहिये कि एक बार जो भूल तुम कर चुके हो उसमें वापिस न गिरोगे।

हर रात, सोने से पहले हमें यह प्रार्थना करनी चाहिये कि जो भूलें हमने दिन में की हों वे भविष्य में दोहरायी न जायें।

१७. भगवान् के प्रति सतत अभीप्सा के साथ अंतर में निवास करना—हमें जीवन की ओर मुस्कान के साथ देखने और बाहरी परिस्थितियां चाहे जैसी हों, शांत रहने में समर्थ बनाता है।

१८. कृपा और सुरक्षा सदा तुम्हारे साथ हैं। जब तुम किसी आंतरिक या बाह्य कठिनाई या तकलीफ में हो तो उसे अपने ऊपर अत्याचार न करने दो; भागवत शक्ति की शरण में जाओ जो रक्षा करती है। अगर तुम हमेशा श्रद्धा और निष्कपट सचाईके साथ ऐसा करो तो तुम अपने अंदर किसी ऐसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चीज को खुलता पाओगे जो सभी सतही गड़बड़ों के बावजूद हमेशा निश्चल और शांत रहती है।

१९. किसी कठिनाई को नयी प्रगति के अवसर में बदलना अच्छा है।

२०. एकदम मौन की अपेक्षा तुम जो कहते हो उसपर संयम ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। सबसे अच्छा है जो उपयोगी हो उसे यथार्थ और यथासंभव सच्चे ढंग से कहना सीखना।

२१. यात्रा चाहे जितनी लंबी हो और यात्री चाहे जितना महान्, अंत में जरूरत होती है भागवत कृपा पर ऐकांतिक सतत निर्भरता की।
केवल भागवत कृपा ही हमारा सहारा होगी।

२२. यह देखना आसान है कि भूलें सत्ता में सचाई के अभाव के कारण होती हैं—इससे निकलने का एकमात्र उपाय है सच्चा होना। तुम्हें इस उद्देश्य के लिये संकल्प, शक्ति और ज्ञान दिये गये हैं।

२३. आध्यात्मिक जीवन के दृष्टिकोण से तुम जो करते हो उसका सबसे अधिक महत्त्व नहीं है। महत्त्व है तुम जिस तरह करते हो उसका और उस चेतना का जो तुम उसमें लगाते हो। भगवान् को हमेशा याद रखो और तुम जो कुछ करोगे वह भागवत उपस्थिति की अभिव्यक्ति होगा।
जब तुम्हारे सभी कर्म भगवान् को समर्पित हों तब ऐसी कोई क्रियाएं न रहेंगी जो उच्च हों अथवा निम्न हों। सबका समान रूप से महत्त्व होगा—उन्हें समर्पण द्वारा दिया मूल्य।

२४. तुम दूसरों से व्यवस्था बनाये रखने की आशा कैसे कर सकते हो जब तुम स्वयं ऐसा नहीं करते? अगर तुम वस्तुओं के बोध में हमेशा **एकतरफा** बने रहो तो अपने छिछलेपन में से बाहर निकलने की आशा कैसे करते हो?

२५. कठिनाइयां हमेशा किसी-न-किसी प्रतिरोध के कारण आती हैं, सत्ता का कोई भाग या उसके कुछ भाग अपने ऊपर रखे गये शक्ति, चेतना और प्रकाश को ग्रहण करने से इंकार करते हैं और भागवत प्रभाव के विरुद्ध विद्रोह करते हैं। ऐसा बहुत विरल होता है कि मनुष्य इन कठिनाइयों में से किसी-न-किसी का सामना किये बिना पूरी तरह से भागवत इच्छा के प्रति समर्पण कर दे। लेकिन अपनी अभीप्सा को स्थिर बनाये रखना और अपने-आपको पूरी सच्ची निष्कपटता के साथ देखना सभी बाधाओं पर विजय पाने का निश्चित उपाय है।

२६. कभी किसी कठिनाई के बारे में मत सोचो—तुम उसे शक्ति देते हो।

२७. सुनना अच्छा है लेकिन पर्याप्त नहीं है—तुम्हें समझना चाहिये।
समझना ज्यादा अच्छा है, लेकिन फिर भी पर्याप्त नहीं है—तुम्हें कार्य करना चाहिये।

२८. व्यक्ति सभी घटनाओं के आगे जितना अधिक अचंचल रहे, सभी परिस्थितियों में समान रहे और जो कुछ भी हो उसकी उपस्थिति में जितना शांत रहे और अपने ऊपर नियंत्रण रखे, उतनी ही अधिक उसने लक्ष्य की ओर प्रगति कर ली है।

२९. समस्त जीवन भगवान् की ओर अभिमुख, भगवान् के अर्पित, भगवान् की सेवा में हो, ताकि थोड़ा-थोड़ा करके भगवान् की अभिव्यक्ति बन जाये।

३०. जो कुछ होता है वह हमें एक और वह-का-वही पाठ पढ़ाने के लिये होता है: जबतक कि हम अपने अहंकार से पिंड न छुड़ा लें तबतक न तो हमारे लिये और न औरों के लिये शांति हो सकती है। और अहंकार के बिना जीवन एक अद्भुत चमत्कार बन जाता है। . . .

३१. हमारे जीवन के प्रत्येक क्षण, सभी अवस्थाओं में भागवत कृपा हमें सभी कठिनाइयों को पार करने में हमारी सहायता के लिये मौजूद है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग-प्रणाली

वस्तुतः आध्यात्मिक सत्य और आध्यात्मिक जीवन को खोजने का पहला कारण या लक्ष्य है भगवान् को पाना; यह एकमात्र अनिवार्य वस्तु है और इसके बिना बाकी सब कुछ नहीं है। एक बार भगवान् मिल जाएं तो उन्हें अभिव्यक्त करना—यानी पहले-पहल अपनी सीमित चेतना को भागवत चेतना में रूपांतरित करना, अनंत शांति, ज्योति, प्रेम, बल, आनंद में जीना, अपनी तात्त्विक प्रकृति में वही बन जाना और परिणाम-स्वरूप अपनी सक्रिय प्रकृति में उसका पात्र, वाहिनी और यंत्र बनना। जड़-भौतिक स्तर पर एकत्व के तत्त्व को सक्रिय बनाना या मानवजाति के लिये कार्य करना—यह सत्य का अशुद्ध मानसिक अनुवाद है; ये चीजें आध्यात्मिक शोध के प्रथम सच्चे लक्ष्य नहीं हो सकतीं। पहले हमें आत्मा को, भगवान् को खोजना होगा उसके बाद ही हम यह जान सकते हैं कि वह कौन-सा काम है जिसके लिये आत्मा या भगवान् हमसे मांग करते हैं। तबतक हमारा जीवन और कर्म भगवान् को पाने के साधन या उसमें सहायक हो सकते हैं। इसके सिवा इनका कोई और लक्ष्य नहीं होना चाहिये। जैसे-जैसे हम आंतरिक चेतना में बढ़ते हैं या भगवान् का आध्यात्मिक सत्य हमारे अंदर विकसित होता है, वैसे-वैसे हमारा जीवन और हमारा कर्म वस्तुतः उसीसे अधिकाधिक प्रवाहित होना, उसके साथ एक हो जाना चाहिये। लेकिन अपनी सीमित मानसिक धारणाओं द्वारा पहले से ही यह निश्चय करना कि उन्हें क्या होना चाहिये, भीतर के आध्यात्मिक सत्य के विकास में बाधक होता है। उसके विकास के साथ हम अपने अंदर दिव्य ज्योति, सत्य, दिव्य शक्ति, सामर्थ्य, दिव्य शुद्धि और शांति को काम करते हुए, हमारे कर्मों और हमारी चेतना के साथ व्यवहार करते, उन्हें हमें दिव्य मूर्त्ति की तरह गढ़ते, कूड़े-करकट को साफ करते और उसके स्थान पर आत्मा के शुद्ध स्वर्ण को लाते हुए अनुभव करेंगे। केवल तभी जब हमारे अंदर सदा दिव्य उपस्थिति रहे और हमारी चेतना रूपांतरित हो जाये, हम यह कहने का अधिकार पा सकते हैं कि हम भौतिक स्तर पर भगवान् को अभिव्यक्त करने के लिये तैयार हैं। किसी मानसिक आदर्श या सिद्धांत को लेकर उसे आंतरिक क्रियाओं पर आरोपित करना अपने-आपको मानसिक उपलब्धितक सीमित कर लेने का खतरा मोल लेना होता है या अधकचरे रूपायन द्वारा पूर्ण घनिष्ठता तथा ऐक्य में भगवान् के साथ के सच्चे विकास और हमारे जीवन में उनकी इच्छा के मुक्त और घनिष्ठ प्रवाह में बाधा देना या झुठलाना होता है। यह दिग्विन्यास की भूल है, आज का मानस विशेष रूप से इसकी ओर प्रवृत्त रहता है। इन छोटी-छोटी चीजों की ओर मुड़ने की जगह, जो हमें एकमात्र आवश्यक वस्तु की ओर से मोड़ देती हैं, कहीं अधिक अच्छा है शांति, प्रकाश या आनंद के लिये भगवान् की शरण में जाना। जड़-भौतिक जीवन को और साथ ही आंतरिक जीवन को दिव्य बनाना दिव्य योजना का वह भाग है जिसे हम देख सकते हैं, लेकिन उसे केवल भीतरी उपलब्धि के प्रवाह के द्वारा ही परिपूर्ण किया जा सकता है, किसी ऐसी चीज के द्वारा जो भीतर से बाहर की ओर बढ़ती है, किसी मानसिक सिद्धांत के कार्यान्वयन द्वारा नहीं। तुमने पूछा है कि मानसिक खोज को जीवित आध्यात्मिक अनुभूति में बदलने के लिये कौन-सी तपस्या या अनुशासन का अनुकरण करना जरूरी है। पहली आवश्यकता है अपने अंदर अपनी चेतना की एकाग्रता का अभ्यास। सामान्य मानव मन की क्रियाशीलता ऊपरी तल पर होती है जो सच्ची आत्मा को ढक देती है। सतह के पीछे एक और छिपी हुई चेतना होती है जिसमें हम सच्ची आत्मा और प्रकृति के अधिक विशाल गहनतर सत्य के बारे में अभिज्ञ हो सकते हैं, आत्मा का साक्षात्कार कर सकते हैं और प्रकृति को मुक्त और रूपांतरित कर सकते हैं। इस एकाग्रता का उद्देश्य है उत्तलीय मन को निश्चल करना और भीतर निवास करना शुरू करना। उत्तलीय चेतना से भिन्न इस सच्ची चेतना के दो मुख्य केंद्र हैं, एक हृदय में (शारीरिक हृदय में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं बल्कि वक्षस्थल के बीच में हृदय-चक्र में) और दूसरा मस्तिष्क में। हृदय के अंदर एकाग्रता भीतर की ओर खुलती है और इस भीतरी उद्घाटन का अनुसरण करने और उसकी गहराई में जाने से तुम अंतरात्मा या चैत्य पुरुष, यानी व्यक्ति के अंदर दिव्य तत्त्व से अभिज्ञ हो जाते हो। खुलकर यह सत्ता आगे आना, प्रकृति पर शासन करना, उसे तथा उसकी सभी गतिविधियों को सत्य की ओर, भगवान् की ओर मोड़ना और जो कुछ ऊपर है उस सबको नीचे बुलाना शुरू करती है। वह दिव्य उपस्थिति की चेतना को, सत्ता के अर्पण को उच्चतम की ओर लाती है और महत्तर शक्ति और चेतना की प्रकृति की, जो ऊपर हमारे लिये प्रतीक्षा कर रही है, उसके अवरोहण को निमंत्रित करती है। हृदय-केंद्र में एकाग्र होना और अपने-आपको भगवान् के अर्पण करना और इस आंतरिक उद्घाटन के लिये और हृदय में दिव्य उपस्थिति के लिये अभीप्सा करना पहला उपाय है और इसे किया जा सके तो स्वाभाविक प्रारंभ है; क्योंकि इसका परिणाम, एक बार प्राप्त हो जाये तो आध्यात्मिक पथ को दूसरे मार्ग की अपेक्षा कहीं अधिक सरल और सुरक्षित बना देता है।

वह दूसरा मार्ग है मस्तिष्क में, मानसिक केंद्र में, एकाग्रता। अगर यह ऊपरी तल के मन में निश्चल-नीरवता ला सके तो वह एक भीतरी, विशालतर और गहनतर मन को खोलता है जो आध्यात्मिक अनुभूति और आध्यात्मिक ज्ञान को ग्रहण करने में अधिक सक्षम होता है। लेकिन एक बार यहां एकाग्र होकर हमें नीरव मानसिक चेतना को ऊपर की ओर उन सब चीजों के प्रति खोलना चाहिये जो मन के ऊपर हों। कुछ समय के बाद तुम्हें लगता है कि चेतना ऊपर उठ रही है और अंत में वह उस ढक्कन के ऊपर उठ जाती है जो उसे इतने लंबे समयतक शरीर से बांधे रहा, और फिर मस्तिष्क के ऊपर एक चक्र को पाती है जहां वह अनंत में मुक्त हो जाती है। वहां वह वैश्व आत्मा, दिव्य शांति, प्रकाश, शक्ति, ज्ञान, आनंद के संपर्क में आना, उसके अंदर प्रवेश करना, वही बन जाना, इन चीजों को अपनी प्रकृति के अंदर अवतरित होते हुए अनुभव करना शुरू करती है। मन में अचंचलता की अभीप्सा के लिये और ऊपर आत्मा तथा भगवान् की अनुभूति की उपलब्धि के लिये सिर में एकाग्र होना—यह एकाग्रता का दूसरा मार्ग है। लेकिन यह याद रखना जरूरी है कि सिर में चेतना की एकाग्रता उसके ऊपर के केंद्र में चढ़ने की तैयारी मात्र है। अन्यथा तुम अपने ही मन और उसकी अनुभूतियों में बंद रह जाओगे या बहुत हुआ तो आध्यात्मिक परात्परतातक उठने और उसमें निवास करने की जगह ऊपर के सत्य की प्रतिच्छायातक ही पहुंच पाओगे। कुछ लोगों के लिये मानसिक एकाग्रता अधिक सरल है, कुछ औरों के लिये हृदय-केंद्र में एकाग्रता ज्यादा सरल होती है और कुछ लोग बारी-बारी से दोनों कर सकते हैं—लेकिन अगर कर सको तो हृदय-केंद्र से शुरू करना ज्यादा वांछनीय है।

इस अनुशासन या तपस्या का दूसरा पार्श्व प्रकृति की, मन की, प्राण-पुरुष या प्राण और भौतिक सत्ता की क्रियावली से संबद्ध है। यहां सिद्धांत है प्रकृति को आंतरिक अनुभूति के साथ समस्वर कर देना ताकि तुम असंगत भागों में विभक्त न हो जाओ। यहां कई प्रकार की तपस्याएं या पद्धतियां संभव हैं। एक है अपने समस्त क्रिया-कलाप भगवान् को अर्पित करना और आंतरिक पथ-प्रदर्शन का आह्वान करना कि एक उच्चतर शक्ति आकर तुम्हारी प्रकृति को अपने हाथ में ले ले। अगर भीतरी आत्मोद्घाटन है, अगर चैत्य पुरुष सामने आ जाये तब कोई बड़ी कठिनाई नहीं रहती—उसके साथ-ही-साथ आ जाता है चैत्य विवेक, सतत सूचना और अंत में ऐसा शासन जो सभी अपूर्णताओं को खोलता, चुपचाप धैर्य के साथ उन्हें दूर करता, उचित मानसिक और प्राणिक गतिविधियों को लाता और भौतिक चेतना को भी नया रूप देता है। एक और उपाय है; मन, प्राण और शरीर की सत्ताओं से दूर खड़े रहो, उनकी क्रियाओं को व्यक्ति के अंदर व्यापक प्रकृति पर पिछले कर्मों द्वारा आरोपित अभ्यासगत रूपायन मानो, सच्ची सत्ता का भाग नहीं। आदमी इसमें जितना सफल होता है उसी अनुपात में वह अनासक्त हो जाता है, मन और उसकी क्रियाओं को अपने स्व के रूप में नहीं, प्राण और उसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रियाओं को अपने स्व के रूप में नहीं, शरीर और उसकी क्रियाओं को अपने स्व के रूप में नहीं देखता। वह अपने अंदर एक आंतरिक सत्ता—आंतरिक मन, आंतरिक प्राण और आंतरिक शरीर—के बारे में अभिज्ञ हो जाता है जो नीरव-निश्चल, स्थिर, अपार, अनासक्त होता है और ऊपर की सच्ची आत्मा को प्रतिबिंबित करता है, वह उसका प्रत्यक्ष, प्रतिनिधि भी हो सकता है। इस आंतरिक निश्चल-नीरव 'सत्ता' से उन सब चीजों का त्याग शुरू होता है जिन्हें त्यागना चाहिये और उन्हीं चीजों की स्वीकृति होती है जिन्हें रखा और रूपांतरित किया जा सकता है—पूर्णता के लिये अंतरतम 'इच्छा' या 'दिव्य शक्ति' को पुकार ताकि वह पग-पग पर वह करे जिसका करना प्रकृति के परिवर्तन के लिये जरूरी है। वह मन, प्राण और शरीर को अंतरतम चैत्य सत्ता और उसके पथ-प्रदर्शक प्रभाव या सीधे पथ-प्रदर्शन की ओर खोल भी सकती है। अधिकतम उदाहरणों में ये दोनों प्रक्रियाएं एक साथ उभरती हैं, साथ ही काम करती और अंत में एक हो जाती हैं। लेकिन व्यक्ति दोनों में से किसी भी पद्धति से शुरू कर सकता है, जो उसे सबसे अधिक स्वाभाविक और सरल मालूम होती है।

और अंत में, सभी कठिनाइयों में, जहां व्यक्तिगत प्रयास में बाधा पड़ती है, गुरु की सहायता हस्तक्षेप कर सकती है और उस चीज को ला सकती है जिसकी उपलब्धि के लिये आवश्यकता हो या जो अगले ही चरण के लिये जरूरी हो।

—श्रीअरविंद

दुर्घटनाओं का चरित्र से गहरा संबंध

२७ जनवरी, १९५४

मां, क्या व्यक्ति की शरीर-रचना उसके चरित्र को व्यक्त कर सकती है?

नहीं। चरित्र भी तो अपने-आपमें कोई सरल वस्तु नहीं है, दूसरे शब्दों में, किसी व्यक्ति का चरित्र उसकी सच्ची सत्ता की अभिव्यक्ति नहीं होता, बल्कि कई वस्तुओं का परिणाम होता है। उदाहरणार्थ, पूर्वजों से समानता का, यानी, व्यक्ति को जो कुछ पिता से प्राप्त होता है, जो माता से और जो दोनों से प्राप्त होता है—इन सबका विभिन्न प्रकार का परिणाम हो सकता है; उनके पहले क्या हुआ—पूर्व इतिहास, दादा, परदादा, आदि भी उनके चरित्र-निर्माण में भागी होते हैं; और फिर जिस वातावरण में वे तब रहे थे जब वे बहुत छोटे थे, तथा पूर्णतया दूसरों पर निर्भर थे—इस सबका भी चरित्र पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। चरित्र भी शारीरिक रचना पर अपना प्रभाव छोड़ सकता है। अतएव, किसीको देख लेने से ही तुम यह नहीं कह सकते कि उसकी सच्ची प्रकृति क्या है। उसकी प्रवृत्तियों की तुम विवेचना कर सकते हो, उसकी कठिनाइयां और संभावनाएं जान सकते हो, किंतु जब उसकी चेतना विकसित हो जाये और उसका विकास उसकी अपनी इच्छा से व्यवस्थित रूप धारण कर ले तभी शरीर उसके सच्चे स्वभाव को व्यक्त कर सकेगा।

और जब शरीर बीमारी से विकृत हो जाये?

जानते हो, इसका कारण कोई दुर्घटना भी हो सकती है। दुर्घटनाओं के कई कारण होते हैं; वस्तुतः ये प्रकृति में शक्तियों के संघर्ष के फलस्वरूप होती हैं और यह संघर्ष विकास और प्रगति की शक्तियों और विनाश की शक्तियों के बीच में होता है। जब कोई ऐसी दुर्घटना होती है जिसके परिणाम स्थायी होते हैं तो वह सदा ही विरोधी शक्तियों, अर्थात्, विघटन और अव्यवस्था की शक्तियों की थोड़ी-बहुत आंशिक विजय के परिणामस्वरूप होती है। यह देखने की बात है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ ऐसी शिक्षाएं भी होती हैं, उदाहरणार्थ, थियोसोफी की जो कर्म को एक बिल्कुल तलीय और मानवीय अर्थ में ही लेती हैं और तुमसे कहती हैं : ''ओह ! तुम्हारे साथ यह दुर्घटना इसलिये हुई कि पूर्व जन्म में तुमने कोई बुरा काम किया था, अतएव वही तुमपर अब दुर्घटना के रूप में आया है।'' यह ठीक नहीं है, बिल्कुल ठीक नहीं है। यह न्याय केवल मानवीय ढंग का है, प्रकृति या भगवान् का नहीं।

स्वभावतया शरीर की रचना इस अर्थ में बहुत महत्त्व रखती है कि यदि व्यक्ति, उदाहरणार्थ, सदा ही अवसाद, निराशा या निरुत्साह के प्रभाव के तले रहे और जीवन में विश्वास या भरोसे को खो दे, तो कहा जा सकता है कि यह सब उसकी सत्ता में घुस जाता है और तब दुर्घटना की संभावना होते ही मनुष्य उसमें अवश्यंभावी रूप से ग्रस्त हो जाते हैं। जब कभी उन्हें कुछ होने की संभावना होती है, चाहे वह दुर्घटना हो या कोई रोग, वे उसकी चपेट में आ जाते हैं। तुम्हारे सामने निरीक्षण के लिये सारा क्षेत्र खुला पड़ा है—हमेशा वह-के-वही लोग दुर्घटनाओं की चपेट में आते हैं। दूसरे भी वही कार्य करते हैं, उनके साथ भी दुर्घटना के कई अवसर आते हैं, किंतु वे अछूते बने रहते हैं। यदि तुम इनके चरित्र का निरीक्षण करो तो देखोगे कि पहले प्रकार के व्यक्तियों की प्रवृत्ति निराशावादी होती है और वे किसी असुखकर घटना की ही आशा करते रहते हैं—और फिर वह हो भी जाती है। या फिर उनमें हर समय एक भय समाया रहता है। हम जानते हैं कि भय सदा वही वस्तु हमारे सामने ले आता है जिससे हम भय करते हैं। यदि तुम दुर्घटना से डरते हो, तो यह डर उसे तुम्हारी ओर ले आने के लिये चुंबक का काम करेगा। इस अर्थ में, यह कहा जा सकता है कि यह व्यक्ति के चरित्र का ही परिणाम है। और यही बात बीमारी के साथ भी है। कुछ लोग बीमारों के बीच तथा उस स्थान पर जहां महामारी फैली हुई है बड़े आराम से घूम-फिर सकते हैं, उन्हें कभी कोई बीमारी ही नहीं होती। और कुछ ऐसे होते हैं जिनके लिये किसी रोगी के साथ एक घंटा बिताना ही काफी होता है, वे चट-से बीमारी की लपेट में आ जाते हैं। यह भी उसीपर निर्भर करता है कि वे अंदर क्या हैं।

क्या बच्चों के साथ भी ऐसा होता है ?

कहा नहीं जा सकता। यह एक नैतिक प्रश्न है, नैतिक दृष्टि से इस समस्या पर विचार नहीं किया जा सकता। यह नहीं कहना चाहिये कि जो बच्चे सदा स्वस्थ रहते हैं, जिनके साथ कुछ भी नहीं होता वे ''अच्छे बच्चे'' हैं और जिनके साथ दुर्घटनाएं होती हैं या जिनपर विपत्तियां आती हैं वे ''बुरे'' हैं। यह बात ठीक नहीं है। कारण, जैसा कि मैं कह रही थी, प्रकृति का तर्क मानवीय तर्क नहीं है और उसकी न्याय-भावना का तर्क भी (यदि उसमें कोई है तो) मानव अर्थों में तर्क नहीं है। जिसे हम बुरा या भला कहते हैं वह नाममात्र को ही है। बल्कि यह कहा जा सकता है, वहां जो कुछ उपस्थित है वह या तो रचनात्मक है या विनाशकारी, प्रगतिशील है या ह्रासकारी। यह सचमुच बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है। और फिर ऐसे लोग भी हैं जो प्रकाशपूर्ण, प्रसन्न, प्रफुल्ल और सदा मुस्कराते रहते हैं और कुछ ऐसे हैं जो उदास, सुस्त, द्रोही और असंतुष्ट रहते हैं, अंधकार में ही निवास करते हैं। ये ही लोग हमेशा अप्रिय स्थितियों में जा गिरते हैं। जो लोग दीप्तियुक्त हैं (आध्यात्मिक दीप्ति भले न हो, यह दीप्ति विवेक-बुद्धि की, संतुलन की, एक आंतरिक विश्वास की और जीने के आनंद की भी हो सकती है), जिन लोगों में जीने का आनंद होता है, वे प्रकृति के साथ सामंजस्य के भाव में रहते हैं और प्रकृति के साथ सामंजस्य रखकर ये साधारणतया दुर्घटनाओं से बच जाते हैं, बीमारियों से भी बचे रहते हैं, उनका जीवन इस संसार में, जैसा कि वह है, यथासंभव सुखकर रूप में विकसित होता रहता है। और अब ?

—श्रीमातृवाणी खंड ६ से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'भारतीय संस्कृति के आधार' पर आधारित :

आध्यात्मिक झुकाव

हमने पिछले लेख में इस बात की चर्चा की थी कि भारतीय मन का संपूर्ण आधार है इसका आध्यात्मिक तथा अंतर्मुखी झुकाव; लेकिन यहां इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिये कि यह आध्यात्मिक झुकाव किसी कठोर मत की भांति नहीं है, न ही इसका अर्थ है अपने-आपको अपने ही छोटे-से तथाकथित आध्यात्मिक घेरे में बंद कर रखना, बल्कि आध्यात्मिक एकता तो एक विशाल तथा नम्य वस्तु है और राजनीतिक तथा बाह्य एकता की भांति वह केंद्रीकरण करने तथा सबको एकरूप बना देने पर आग्रह नहीं करती बल्कि वह तो राष्ट्र की प्रणाली में सर्वत्र सांस लेती है और जीवन की महान् विविधता तथा स्वतंत्रता के लिये सहज प्रस्तुत रहती है। यहां हम प्राचीन भारत में एकता स्थापित करने की समस्या की कठिनाई के रहस्य का थोड़ा-बहुत उल्लेख करते चलें। यह एकता ऐसे केंद्रीभूत एकरूप सामान्य साधन के द्वारा नहीं पायी जा सकती जो स्वतंत्र विभिन्नता, प्रतिष्ठित सामुदायिक स्वाधीनताओं का समर्थन करनेवाली सभी वस्तुओं को कुचलकर रख दे और जब कभी इस दिशा में प्रयास किये गये तो वे अंततोगत्वा हमेशा असफल ही रहे—भले प्रतीयमान सफलता के लंबे काल से वह गुजरे। और हम यहांतक कह सकते हैं कि भारत के भविष्य के रक्षकों ने बुद्धिमत्तापूर्वक उसे असफल होने के लिये विवश किया ताकि कहीं उसकी अंतस्थ आत्मा नष्ट न हो जाये और उसकी अंतरात्मा अस्थायी सुरक्षा के इंजन के बदले अपने जीवन के गभीर स्रोतों का सौदा न कर बैठे। भारत के प्राचीन मन को अपनी आवश्यकता का सहज ज्ञान था, साम्राज्य के विषय में उसका विचार यह था कि एकता स्थापित करनेवाला एक ऐसा शासन होना चाहिये जो प्रत्येक वर्तमान क्षेत्रीय तथा सामाजिक स्वाधीनता का सम्मान करे तथा किसी भी स्वाधीन राज्य को अनावश्यक रूप से कुचल न दे और भारत का यांत्रिक एकत्व नहीं बल्कि इसके जीवन का समन्वय सिद्ध करे। आगे चलकर ये अवस्थाएं विलीन हो गयीं जिनमें ऐसा समाधान सुरक्षित रूप से विकसित होकर अपने सच्चे साधन, रूप तथा आधार को पा लेता और इसके स्थान पर एक ही प्रशासकीय साम्राज्य को स्थापित करने का प्रयास किया गया। यह प्रयास तात्कालिक तथा बाह्य आवश्यकता के दबाव से संचालित हुआ और अपनी महानता तथा भव्यता के होते हुए भी पूर्ण सफलता नहीं पा सका। वह सफल हो भी न सकता था क्योंकि उसने ऐसी दिशा का अनुसरण किया जो अंततः भारतीय आत्मा की वास्तविक प्रवृत्ति के साथ संगत न थी। हम देख ही चुके हैं कि भारतीय राजनीतिक-सामाजिक प्रणाली का मूलभूत सिद्धांत था ग्राम के, नगर और राजधानी के, जाति, कुल, धार्मिक समाज इत्यादि के स्वायत्त शासनों का समन्वय। राष्ट्र या राज्य इन स्वायत्त शासनों को एक सूत्र में बांधकर स्वतंत्र तथा जीवंत प्रणाली में ढालने का एक साधन था। सबसे बड़ी समस्या यह थी कि फिर से इन राज्यों, जातियों और राष्ट्रों में एकता लाकर, लेकिन इनके स्वायत्त-शासन का सम्मान करते हुए, इन्हें एक अधिक विशाल, स्वतंत्र तथा जीवंत प्रणाली में कैसे ढाला जाये। इसके लिये एक ऐसी प्रणाली को खोज निकालना आवश्यक था जो लोगों में शांति तथा एकता को बनाये रखे, बाहरी आक्रमणों के विरुद्ध सुरक्षा की निश्चित व्यवस्था करे और अपनी एकता तथा विविधता में, अपने सामुदायिक तथा क्षेत्रीय इकाइयों के सक्रिय जीवन में, भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति की अंतरात्मा तथा शरीर में सच्चे धर्म की मुक्त क्रीड़ा तथा विकास को संसिद्ध करे।

भारत का प्राचीनतर मन समस्या को इसी रूप में देखता था। बाद के युग के प्रशासनिक साम्राज्यों ने इसे केवल आंशिक रूप में ही स्वीकार किया लेकिन उसकी वृत्ति, जैसी कि केंद्रीकरण करनेवाली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृत्ति हमेशा ही रहती है, यह थी कि अधीनस्थ स्वायत्त शासनों की शक्ति को, भले सक्रिय रूप में नष्ट न भी किया जाये फिर भी बहुत धीरे-धीरे तथा अवचेतन रूप में उसे क्षीण तथा जर्जर कर दिया जाये। परिणाम यह हुआ कि जब कभी केंद्रीय शासन कमजोर पड़ा, क्षेत्रीय स्वायत्त-शासन के दृढ़ सिद्धांत ने—जो भारत के जीवन के लिये आवश्यक था—सुस्थापित कृत्रिम एकता को हानि पहुंचाकर फिर से अपने-आपको स्थापित कर लिया, लेकिन उसने इस बात का प्रयास नहीं किया—जैसा कि उसे करना चाहिये था—कि संपूर्ण जीवन सुसामंजस्य रूप में बलवान् हो जाये और अधिक स्वतंत्रतापूर्वक, फिर भी संयुक्त होकर कार्य करे। साम्राज्यिक राज्य भी मुक्त विधान-सभाओं की शक्ति क्षीण करने की ओर प्रवृत्त रहा और इसका परिणाम यह हुआ कि सामुदायिक इकाइयां संयुक्त बल के तत्त्व होने के बदले अलग और विभाजक तत्त्व बन गयीं। ग्राम-समुदाय ने अपनी शक्ति को कुछ-कुछ सुरक्षित रखा लेकिन सर्वोच्च शासन के साथ उसका कोई जीवंत संबंध नहीं रहा और वह विशालतर राष्ट्रीय भावना को खोकर किसी भी ऐसे स्वदेशी या विदेशी शासन को स्वीकार करने की ओर प्रवृत्त होने लगा जो उसके आत्म-निर्भर संकीर्ण जीवन का सम्मान करता हो। धार्मिक समाज भी इसी भावना के रंग में रंग गये। जातियां भी अपने मूल रूप से हटने लगीं, देश की आध्यात्मिक तथा आर्थिक प्रगति में सहायक न रहकर, समस्त जीवन-समन्वय के साधन न रहकर पृथक् करनेवाली शक्तियां बन गयीं। यह बात सच नहीं है कि प्राचीन भारत में जाति-भेद लोगों के संयुक्त जीवन में बाधक थे, या बाद में राजनीतिक कलह या फूट पैदा करनेवाली सक्रिय शक्ति थे—ऐसे तो वे बाद में, अपनी चरम अवनति के समय हो गये।

अब अगले लेख में हम जाति-प्रथा की चर्चा करेंगे।

—वंदना

सांध्य वार्ताएं :

मनुष्य तथा अन्यान्य लोक

१-६-१९२६

शिष्य—अखबारवाले मनमानी छापते रहते हैं। क्या वे किसीके घर में हुई बात-चीत को छाप सकते हैं?

श्रीअरविंद—अगर तुम आधुनिक अखबारों से शिष्टाचार की आशा करो तो इस गणतंत्र युग में तुम्हें निराश होना पड़ेगा! यह आधुनिक गणतंत्र के आशीर्वादों में से एक है। अगर तुम अमरीका में होते और किसी अखबार को मुलाकात न भी देते तो भी वे कुछ आविष्कार कर लेते! समाचार पत्र एक सार्वजनिक संस्था है। पहले वह कुछ प्रतिष्ठित होता था लेकिन आज के अखबार तो मानव-जीवन की व्यर्थता के अच्छे मापक हैं।

शिष्य—एक अमरीकन अखबार में बड़ौदा की राजकुमारी का इंग्लैड के युवराज के साथ ब्याह रचा गया था, फोटो वगैरह भी छपे थे!

श्रीअरविंद—वे सामान्य मानस के सच्चे आईने हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिष्य—वे मानव-जाति का चल-चित्र हैं।

दूसरा शिष्य—लेकिन पहले ऐसा न था।

श्रीअरविंद—पहले सामान्य मन न था और जो था वह व्यवस्थित न था। सभी आधुनिक चीजों का यही हाल है। समाचार पत्र, नाटक, रेडियो। वे सभी चीजों को भीड़ के स्तरतक खींच लाते हैं।

शिष्य—लेकिन जापान और यूरोप में रेडियो और टेलीफोन बहुत सफल रहे हैं। हम चार-छह घंटेतक अच्छे-से-अच्छा संगीत सुन सकते हैं।

श्रीअरविंद—लेकिन अमरीका में सिनेमा अपराधों की सहायता करता है। हां, वे उसका शिक्षा के लिये उपयोग करना चाहते हैं। वे अच्छा संगीत प्रसारित कर सकते हैं परंतु क्या लोग उसे समझते और सराहते हैं?

शिष्य—रेडियो ग्रामोफोन से तो अच्छा है।

श्रीअरविंद—ग्रामोफोन तो संगीत के हत्यारे थे लेकिन दुर्भाग्यवश जिन चीजों के लिये सार्वजनिक समर्थन की जरूरत होती है उन सबका यही हाल है, उदाहरण के लिये नाटक, सिनेमा आदि; वे तभी सफल हो सकते हैं अगर जन-साधारण की रुचि के अनुसार हों। भौतिक स्तर पर प्राण का प्रभाव प्राणिक कामनाओं को बढ़ाता है।

शिष्य—तो अच्छे लोग वहां चले जाते हैं?

श्रीअरविंद—अगर वे अपनी सुनवाई चाहें तो उन्हें समझौता करना पड़ता है; लेकिन समझौते में अच्छे-से-अच्छा बुरे के साथ घुल-मिल जाता है। यहां मैं नैतिक दृष्टि से बुरे की बात नहीं कर रहा। मेरा मतलब है कलाहीन। यह वही पुराना प्रश्न है कि जनसाधारण को किसी उच्चतर चीज की ओर ऊपर खींचा जाये। लेकिन जैसा कि हमेशा होता है जनसाधारण ऊपर उठने की जगह हर चीज को अपने स्तरतक खींच लाता है।

उदाहरण के लिये कविता को ले लो। आज जितनी कविता लिखी जाती है उतनी पहले कभी नहीं लिखी गयी। एक प्रकार की चमकवाली कृतियां ज्यादा प्रचलित हैं। शायद पाठकों की संख्या भी अधिक है। लेकिन अगर तुम कविता को सब मिलाकर देखो तो तुम्हें लगेगा कि वह नीचे गिर रही है। हर चीज जो जन-साधारण यानी भीड़ पर आश्रित है, उसे समर्थन पाने के लिये नीचे उतरना ही पड़ता है।

शिष्य—क्या चीजें बिगड़ रही हैं या पहले से अच्छी हो रही हैं?

श्रीअरविंद—मुझे लगता है कि विशेष रूप से युद्ध के बाद यूरोप की अवस्था लगभग वैसी ही है जैसी रोम के साम्राज्य के विघटन के बाद हुई थी। सारे संसार को फिर बर्बरता में धंसा देने की वही प्रवृत्ति है। (पहले महायुद्ध की बात है।)

शिष्य—तो क्या कोई संभावना नहीं है?

श्रीअरविंद—संभावना हमेशा रहती है। रोम के साम्राज्य के साथ भी संभावना थी लेकिन वह चरितार्थ न हो पायी।

शिष्य—क्या यह कहा जा सकता है कि अब अधिक संभावना है?

श्रीअरविंद—संघर्ष और भी घोर हो गया है।

(यहां विषय बदल गया)

शिष्य—मनुष्य भौतिक लोक के प्राणी हैं लेकिन उनमें प्राणिक, मानसिक और चैत्य भाग भी होते हैं। क्या प्राणमय लोक में भी मानसिक और चैत्य भाग होते हैं?

श्रीअरविंद—प्राणिक और भौतिक लोक अलग-अलग हैं। भौतिक लोक में सत्ता के विभिन्न वर्गों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा विकास होता है हमारा स्तर विकासात्मक है। प्राणिक स्तर पर कोई विकास नहीं होता। यह प्ररूपी जीवों का लोक है। वहां चेतना एक स्तर से दूसरे स्तरतक विकसित नहीं होती।

पशु की चेतना प्राण के द्वारा काराग्रस्त होती है और जब वह तैयार हो जाये तो चेतना मानसिक में बदल पाती है और पशु पुनर्जन्म में मनुष्य बन जाता है। हमारी कुछ बिल्लियां मानव जन्म के लिये तैयार हैं। मनुष्य में वह संक्रमण हो चुका है, वह सीमा को पार कर चुका है।

लेकिन साधारण आदमी के बारे में मुश्किल से ही कहा जा सकता है कि उसमें अंतरात्मा या चैत्य पुरुष है। अंतरात्मा होती तो है पर बहुत ज्यादा दबी हुई और बहुत पीछे।

शिष्य—क्या असुरों में भी मनुष्य की तरह विकास की संभावना है?

श्रीअरविंद—नहीं।

शिष्य—क्या असुरों में विकास नहीं होता?

श्रीअरविंद—चेतना के विकास के अर्थों में नहीं।

शिष्य—लेकिन आपने कहा है कि असुर भी रूपांतरित और परिवर्तित हो सकता है :

श्रीअरविंद—हां, वे अपनी क्रियाविधि को बदलकर किसी उच्चतर चीज की ओर खुल सकते हैं।

शिष्य—क्या उनके परिवर्तन से आपका यही मतलब था? क्या वे विकास में सहायता कर सकते है?

श्रीअरविंद—हां, वे अपनी प्राणिक प्रकृति से अच्छी किसी चीज को व्यक्त कर सकते और भगवान् के यंत्र बन सकते हैं; लेकिन सामान्यतः वे नहीं बदलते।

शिष्य—अगर असुर बदलें नहीं तो उनका क्या होता है?

श्रीअरविंद—अगर असुर न बदलें तो उनका विनाश हो सकता है, लेकिन अगर तुम पूछो कि कल्प के अंत में उनका क्या होगा तो जबाब देना कठिन है। अगर वे बदलें तो किसी उच्चतर चीज की ओर खुल सकते और उसे अभिव्यक्त कर सकते हैं।

शिष्य—कहा जाता है कि कुछ असुरों ने साधना की थी। यह किस प्रकार की साधना थी? आपने कहा है कि वे बहुत बुद्धिमान् होते हैं।

श्रीअरविंद—मैंने यह कभी नहीं कहा कि उनमें सच्चे विचार और महान् आदर्श होते हैं या वे महान् मानसिक सत्ताएं हैं। मैंने कहा यह था कि वे अपना प्रयोजन सिद्ध करने में बहुत चालाक होते हैं। वे परिणाम लाना जानते हैं।

शिष्य—विकास में उनका क्या स्थान है? क्या यह उनके बिना भी चल सकता है?

श्रीअरविंद—पुराना विचार है कि देव और असुर मानव-विकास पर अधिकार करने के लिये संघर्ष में लगे रहते हैं और असुर जगत् की महान् जटिलता के लिये उत्तरदायी हैं, लेकिन मेरे ख्याल से वे अनिवार्य नहीं हैं। असुर अपने-आपको विद्रोह, दुःख, संघर्ष और कठिनाइयों द्वारा चरितार्थ करते हैं; लेकिन जगत् किसी और तरह से भी विकसित हो सकता था, फूल की तरह भीतर से बाहर को खिल सकता था; लेकिन आसुरी तरीके की शक्तियां जगत् में घुस पड़ीं और उन्होंने शक्तियों की वैश्व लीला को विकृत कर डाला। यह सत्य प्रायः सभी धर्म मानते हैं। सर्प, अशुभ, लोभ देनेवाली प्रकृति—हौवा का पुरुष या आदम को धोखा देना, पुरुष की रजामंदी और आदम का पतन; ये सब वही हैं।

भारत में इसी सत्य को और तरह से कहा जाता है। देवों और असुरों में मानव-विकास-गति पर अधिकार पाने के लिये देवों और असुरों का संघर्ष यही है।

शिष्य—तब फिर पौराणिक भाव के अनुसार भगवान् की वैर भाव के साथ पूजा का क्या मतलब है?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रीअरविंद—रावण और हिरण्यकशिपु पुरुष थे जो असुर बन गये और उन्होंने भगवान् के विरोध का मार्ग चुना, सचमुच यह पतन है और बतलाता है कि मनुष्य का विकास यह नहीं है कि वह असुर बन जाये। मतलब यह कि मानव-विकास का मार्ग यह नहीं है कि वह पशु से प्राणिक सत्ता और फिर असुर बन जाये। आसुरी जीवन मनुष्य के लिये पतन ही है। अगर तुम आसुरी प्रकृति में बदल जाओ तो विकास का अवसर खो बैठते हो।

शिष्य—हम अपने-आपको आसुरी प्रभाव और आक्रमण से कैसे बचा सकते हैं ?

श्रीअरविंद—शुद्धि और निष्कपटता तथा सचाई के द्वारा तुम असुरों से सुरक्षित रह सकते हो। वे तुमपर आघात कर सकते हैं, तुम्हें धोखा दे सकते हैं, तुम्हारे मन पर कोहरा ला सकते हैं। देरी करवा सकते हैं और तुमसे भूलें करवा सकते हैं लेकिन अगर तुम्हारे पास श्वेत प्रकाश है—शुद्धि और सचाई का प्रकाश—तो वे तुम्हें नुकसान नहीं पहुंचा सकते, कोई निश्चित पतन न होगा। तुम चलते चलोगे।

(पुराणीकृत श्रीअरविंद की 'ईवनिंग टॉक्स' से)

'कुछ माताजी के बारे में' :

विरोधी शक्तियां तथा श्रद्धा

विरोधी शक्तियों का, जो अगोचर होते हुए भी जीवंत और स्पष्टतया अनुभवनीय हैं, मुकाबला कैसे करना चाहिये ?

बहुत कुछ तुम्हारी चेतना के विकास की अवस्था पर निर्भर है। आरंभ में यदि तुम्हारे पास विशेष गुप्त ज्ञान और शक्ति न हों तो तुम्हारे लिये सबसे अच्छी बात यही है कि तुम जहांतक संभव हो शांत और स्थिर रहो। यदि आक्रमण विरोधी सुझावों का रूप ले तो उसे शांति के साथ ठीक उसी तरह दूर फेंकने की कोशिश करो जैसे किसी भौतिक पदार्थ को फेंका जाता है। तुम जितने अधिक शांत रहोगे उतने ही अधिक शक्तिशाली बनोगे। सभी आध्यात्मिक शक्तियों का सुदृढ़ आधार है समचित्तता। किसी चीज को अपना संतुलन न बिगाड़ने दो, तब तुम हर प्रकार के आक्रमण का प्रतिरोध कर सकोगे। इसके अतिरिक्त, यदि तुम्हारे पास यथेष्ट विवेक-शक्ति हो और तुम विरोधी सुझावों को पास आते ही देख और पकड़ सको तो उन्हें निकाल बाहर करना और भी सहज हो जाता है, किंतु कभी-कभी ये अलक्षित रूप से घुस आते हैं और तब इनसे युद्ध करना अधिक कठिन होता है। जब ऐसा हो तो तुम्हें स्थिर होकर बैठना चाहिये और शांति तथा गभीर आंतरिक स्थिरता का आवाहन करना चाहिये। अपने-आपको दृढ़ बनाये रखो, श्रद्धा तथा विश्वास के साथ भगवान् को पुकारो। यदि तुम्हारी अभीप्सा शुद्ध और स्थिर है तो तुम अवश्य सहायता प्राप्त करोगे।

विरोधी शक्तियों के आक्रमण अपरिहार्य हैं। तुम्हें इनको अपने मार्ग में परीक्षा के रूप में लेना और इन अग्नि-परीक्षाओं में से साहस के साथ गुजरना चाहिये। यह संघर्ष कठिन हो सकता है किंतु जब तुम इसे पार करके बाहर निकलोगे तो देखोगे कि तुमने कुछ प्राप्त किया है, तुम एक कदम आगे बढ़े हो। विरोधी शक्तियों के होने की भी एक आवश्यकता है। ये तुम्हारे निश्चय को अधिक दृढ़ और तुम्हारी अभीप्सा को अधिक स्पष्ट बनाती हैं।

फिर भी, यह सत्य है कि इनका अस्तित्व इसीलिये है कि तुमने इनके अस्तित्व के लिये कारण दे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखा है। जबतक तुममें कोई भी चीज ऐसी हो जो इन्हें पुकार का उत्तर देती हो तबतक इनका हस्तक्षेप करना सर्वथा उचित है। यदि तुम्हारा कोई भी भाग इन्हें प्रत्युत्तर न दे, यदि तुम्हारी प्रकृति के किसी भी अंश पर इनका वश न हो तो ये शक्तियां लौट जायेंगी और तुम्हें छोड़ देंगी। परंतु कुछ भी क्यों न हो, ये तुम्हारी आध्यात्मिक प्रगति को रोक या अटका नहीं सकतीं।

विरोधी शक्तियों से युद्ध में तुम्हारी पराजय एक ही कारण से हो सकती है और वह है भगवान् की सहायता में सच्चे विश्वास का न होना। अभीप्सा की सच्चाई आवश्यक साहाय्य को सदा ले ही आती है। शांत आवाहन, यह विश्वास कि सिद्धि की ओर आरोहण में तुम कभी अकेले नहीं रहते और यह श्रद्धा कि जब कभी किसी सहायता की आवश्यकता हो तो वह सदा उपस्थित होती है—तुम्हें सहज और निरापद रूप से पार लगा देंगे।

ये विरोधी शक्तियां साधारणतया बाहर से आती हैं या अंदर से?

यदि तुम समझते या अनुभव करते हो कि ये अंदर से आती हैं तो संभवतः तुमने अपने-आपको उनके लिये खोल दिया है और वे तुम्हारे अंदर अलक्षित रूप से आकर जम गयी हैं। वस्तुओं का सच्चा स्वभाव सामंजस्य का होता है, किंतु कुछ जगत् ऐसे हैं जहां इस सामंजस्य में विकार पैदा होता है जिसके फलस्वरूप विकृति और विरोध की सृष्टि हो जाती है। विकार पैदा करनेवाले इन जगतों के साथ यदि तुम्हारा बहुत अधिक मेल हो तो हो सकता है कि वहां की सत्ताओं के साथ तुम मित्रता स्थापित कर लो और उनकी पुकार पर पूरा सहयोग हो। यह होता तो है, किंतु यह कोई अच्छी अवस्था नहीं है। चेतना तुरंत अंधी हो जाती है और तुम सत्य-असत्य में विवेक करने में असमर्थ हो जाते हो तथा यह कहने योग्य भी नहीं रह जाते कि कौन-सी चीज मिथ्या है और कौन-सी नहीं।

बहरहाल, बुद्धिमानी इसीमें है कि जब कोई आक्रमण हो तो यही समझा जाये कि यह बाहर से आया है और कहा जाये : "यह मेरा स्वरूप नहीं है और मैं इससे किसी प्रकार का संपर्क नहीं रखूंगा।" समस्त निम्नतर आवेगों और इच्छाओं तथा मन के समस्त संदेहों और शंकाओं के साथ भी तुम्हें इसी तरह व्यवहार करना होगा। यदि तुम अपने-आपको इनके साथ तदाकार कर लो तो इनके साथ तुम्हारा युद्ध और भी विकट हो जाता है, कारण उस समय तुम यह अनुभव करने लगते हो कि तुम अपने ही स्वभाव को पराजित करने के अति दुष्कर कार्य में लगे हो। परंतु जैसे ही तुम यह कह सको : "नहीं, यह मेरा स्वरूप नहीं है, इससे मैं किसी प्रकार का संबंध नहीं रखूंगा," वैसे ही इनको हराकर भगा देना अधिक सहज हो जायेगा।

आंतर और बाह्य के बीच रेखा कहां खींची जा सकती है?

यह रेखा अत्यंत लचीली होती है, तुम चाहो तो बिल्कुल समीप हो सकती है और चाहो तो दूर हो सकती है। तुम हर एक बात को अपने ऊपर लेकर उसे अपनी वास्तविक आत्मा का एक अंग और अंश मान सकते हो और चाहो तो उसे एक केश या नाखून के टुकड़े की तरह जरा भी प्रभावित हुए बिना दूर फेंक सकते हो।

ऐसे धर्म भी हुए हैं जिनके अनुयायी अपने केश या नाखून के एक टुकड़े को भी अपने से अलग नहीं करते थे, उन्हें भय था कि कहीं अपने व्यक्तित्व के किसी भाग को न गंवा दें। जो अपनी चेतना को जगत् के जितना विशाल बनाकर फैलाने में समर्थ होते हैं वे जगत् बन जाते हैं, किंतु जो अपने क्षुद्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीरों और सीमित अनुभवों में ही बंद रहते हैं वे उन सीमाओं पर जाकर रुक जाते हैं; उनके लिये शरीर और सीमित अनुभव ही सारा व्यक्तित्व बनकर रह जाते हैं।

क्या केवल श्रद्धा सब कुछ सृजन कर सकती है, सब कुछ जीत सकती है ?

हां, किंतु यह श्रद्धा सर्वांगपूर्ण और निरपेक्ष होनी चाहिये। यह ठीक प्रकार की होनी चाहिये, केवल मानसिक विचार या संकल्प की शक्ति-भर नहीं, उससे बढ़कर और गहरी होनी चाहिये। मन के द्वारा प्रयुक्त संकल्प विरोधी प्रतिक्रियाओं को उभारता और प्रतिरोध उत्पन्न करता है। तुमने एमिल कूए की चिकित्सा-पद्धति के बारे में सुना होगा। वे इस शक्ति के किसी रहस्य को जानते थे और उन्होंने इसका प्रयोग बहुत कुछ सफलतापूर्वक किया था। परंतु वे इसे कल्पना कहते थे और उनकी पद्धति ने श्रद्धा को बहुत अधिक मानसिक रूप दे दिया था। मानसिक श्रद्धा पर्याप्त नहीं है, इस श्रद्धा को प्राण की श्रद्धा द्वारा और भौतिक श्रद्धा, अर्थात्, शरीर की श्रद्धा द्वारा भी पूर्ण और शक्तिशालिनी बनाना चाहिये। यदि तुम अपने अंदर, अपनी समस्त सत्ता में इस प्रकार की एक सर्वांग संपूर्ण शक्ति की सृष्टि कर सको तो कोई चीज इस शक्ति का प्रतिरोध नहीं कर सकेगी। परंतु तुम्हें अपने अत्यंत अचेतन भागोंतक पहुंचना होगा, अपने शरीर के एक-एक अणु में इस श्रद्धा को स्थापित करना होगा। उदाहरणार्थ, आजकल वैज्ञानिकों में भी इस ज्ञान का प्रारंभ हो चुका है कि 'मृत्यु' आवश्यक नहीं है। परंतु सारी मानवजाति 'मृत्यु' में दृढ़तापूर्वक विश्वास करती है; कहा जा सकता है कि यह मनुष्यों में सर्वसाधारण रूप से बैठी हुई एक धारणा है जो दीर्घ काल से अपरिवर्तनशील अनुभव पर स्थापित है। यदि इस विश्वास को पहले तो सचेतन मन से और फिर प्राण-प्रकृति और अवचेतन भौतिक स्तरों से निकाल बाहर किया जाये तो मृत्यु अपरिहार्य नहीं रह जायेगी।

परंतु मृत्यु की यह धारणा केवल मानव-मन में ही तो नहीं है। पशुजाति इसे मनुष्य के पहले से जानती थी।

इस पृथ्वी पर समस्त जीवन के साथ मृत्यु एक तथ्य के रूप में लगायी गयी है, किंतु प्रकृति ने इसे जिस मूल अर्थ में रखा था, मनुष्य इसे उससे भिन्न अर्थ में समझते हैं। मनुष्य और मनुष्य-तल के नजदीकवाले पशुओं की चेतना में मृत्यु की आवश्यकता का एक विशिष्ट रूप और एक विशिष्ट अर्थ हो गया है। निम्नतर प्रकृति में जो अवचेतन ज्ञान है, जो इस अर्थ को आश्रय दिये हुए है, वह है फिर से नया होने की, परिवर्तन और रूपांतर की आवश्यकता का अनुभव।

पृथ्वी पर जड़-तत्त्व की अवस्थाओं ने ही मृत्यु को अनिवार्य बनाया। जड़-तत्त्व के विकास का सारा अर्थ ही है पहले की अचेतन अवस्था से उत्तरोत्तर बढ़ती हुई चेतना में परिणत होना। और परिणत होने की इस प्रक्रिया में, जब यह सब यथार्थ में क्रियान्वित होने लगा तो आकारों का विनाश आवश्यक हो गया। कारण, संगठित व्यष्टिगत चेतना को स्थायी सहारा देने के लिये स्थिर रूप की आवश्यकता हुई। और आकार की इस स्थिरता ने ही मृत्यु को अपरिहार्य बना दिया। क्योंकि जड़-तत्त्व को आकार धारण करने थे, क्योंकि आकार धारण किये बिना जीवन-शक्तियों अथवा चेतना की शक्तियों का व्यष्टिकरण तथा पिंड-रूप असंभव था और इनके बिना पार्थिव भूमिका पर संगठित अस्तित्व के लिये प्रारंभिक अवस्थाओं का अभाव होता। परंतु आकार में बंधी पिंड-रूप रचना का यह स्वभाव है कि वह तुरंत कठोर, अनम्य पाषाणवत् बन जाने की ओर प्रवृत्त होती है। व्यक्तिगत आकार सब ओर से बांध रखनेवाले सांचे के रूप में स्थिर और कायम रहना चाहता है, वह शक्तियों की गतियों का अनुसरण नहीं कर सकता, विश्व-लीला की गतिशीलता में जो परिवर्तन होते रहते हैं उनके साथ सामंजस्य रखकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह अपने को परिवर्तित नहीं कर सकता, प्रकृति की मांगों को वह लगातार पूरा नहीं कर सकता और वह उसके साथ-साथ नहीं चल सकता, वह प्रवाह के बाहर हो जाता है। आकार और उसपर दबाव डालनेवाली शक्ति के बीच जो उत्तरोत्तर बढ़ती हुई असमानता और असामंजस्य है जब वह एक विशिष्ट सीमातक पहुंच जाता है तो आकार को पूर्ण रूप से नष्ट कर देना अनिवार्य हो जाता है। तब एक नये आकार की सृष्टि करनी पड़ती है, एक नवीन सामंजस्य और समानता को संभावित करना पड़ता है। मृत्यु का सच्चा अर्थ यही है और प्रकृति में इसका यही उपयोग है। परंतु आकार यदि अधिक फुर्तीला और नमनशील बन सके और शरीर के अणुओं को बदलती हुई चेतना के अनुसार जाग्रत् किया जा सके तो ऐसे उग्र-विनाश की आवश्यकता नहीं होगी, मृत्यु अपरिहार्य नहीं रह जायेगी।

आसम : एक घोड़े की आत्म-कथा

मेरी पहली हिनहिनाहट सुनते ही मालिक के साईस ने कहा था : "हुजूर, यह बच्चा बड़ा होनहार होगा। यह जिसके पास रहेगा उसकी किस्मत खुल जायेगी।"

मुझे अब भी वह दृश्य याद है। मेरी मातृभूमि तुम्हारे हिंदुस्तान की तरह हरी-भरी और लुभावनी नहीं है पर उसका अपना ही सौंदर्य है और मेरी दृष्टि में तो वह तुम्हारी शस्य-श्यामला भूमि से भी अधिक सुंदर है। वहां सूर्य की रश्मियों में चमकती हुई बालू हीरे और चांदी की तरह चमकती है। दृष्टि अबाध गति से जहांतक जाना चाहे जा सकती है। वहां क्षितिज की अनंत रेखा मनुष्य में अदम्य साहस भर देती है। सारा देश ही ऐसा है कि वहां आदमी सच्चा आदमी बन सकता है। वहां का जीवन हमेशा साहसपूर्ण और रोमांचक होता है। ऊपर नील गगन और नीचे असीम धरती। उसपर छोटा-सा मनुष्य न जाने कौन-से नये साहस के लिये घोड़ा दबाए घूमता रहता है। अस्तु, मेरी उस सुंदर वीरप्रसू मातृभूमि में ही ऐसे प्राणवान् हवा में उड़नेवाले घोड़े पैदा हो सकते हैं। उन घोड़ों में भी मेरी मां बहुत ऊंचे खानदान की थीं। हम घोड़ों के बच्चे तुम मनुष्यों की तरह भाग्यवान् नहीं होते। हम अपनी मां के पास कुछ महीने ही रह पाते हैं।

मेरी मां ने मुझे बहुत कुछ सिखाया था। वह कहा करती थी : "बेटा, अच्छे मालिक अश्वदेव की कृपा से ही मिला करते हैं पर बुरा मालिक भी मिल जाये तो घबराना मत। घोड़ा-भगवान् तेरी सहायता करेंगे, उन्हें कभी मत भूलना।"

एक दिन मैंने मां से पूछा : "मां, घोड़ा-भगवान् कौन हैं और कहां रहते हैं ?"

मां ने सिर झुकाकर नमस्कार किया और बोली : "यह ऊपर नीला आकाश दीखता है न, घोड़ा-भगवान् उसीके ऊपर रहते हैं, उनका रंग चांदनी में चमकती हुई रेत से भी ज्यादा सफेद होता है। तू कभी-कभी आकाश में काले-काले बवंडर देखता है न, और उनमें से एक चमकती रेखा दिखाई देती है ? वह चमक हमारे अश्वदेव के शरीर की होती है और वह काला बवंडर उनके दौड़ने से जो मिट्टी उड़ती है उससे पैदा होता है। वे कभी-कभी वर्षा के दिनों में जोर से हिनहिनाते हैं। तूने उनकी आवाज तो सुनी ही है ? वे हमेशा वर्षा के बाद पैदा होनेवाली हरी-हरी दूब ही खाया करते हैं। चाहे कितना भी क्यों न दौड़ें कभी थकने का नाम भी नहीं लेते। वे हम सब घोड़ों से बहुत प्यार करते हैं। बेटा, उन्हें कभी न भूलना। हम मनुष्य थोड़े ही हैं कि चैन से जीवन बिता सकें। हमें तो मालिक के लिये जी-तोड़ परिश्रम करना पड़ता है और अगर कहीं बुरा मालिक मिल गया तो बुढ़ापे में भूखों मरना पड़ता है। लेकिन बेटा, वह भी क्या घोड़ा हुआ जो कष्टों से डर जाये ? हम भगवान् के प्यारे हैं तभी हमारे ऊपर इतनी कठिनाइयां आती हैं।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं अपनी मां की ऐसी सीखें पाता हुआ बड़ा हुआ।

एक दिन मां ने कहा : "बेटा, अब तू बहुत बड़ा हो गया है, मालिक अब तुझे कहीं और भेज देंगे। कल ही मैंने साईस के साथ नये अरब मालिक को देखा था। मैंने सुना है, उसके यहां घोड़ों को अच्छी तरह रखा जाता है। मैं आशा करती हूं कि तुझे वहां कष्ट न होगा, पर तू भी याद रख, तुझे मालिक का नाम उज्ज्वल करना होगा। ऐसा न हो कि मालिक के पास तेरी शिकायत आये।"

वह मुझे बार-बार प्यार करती रही, उससे बिछुड़ने के विचार से ही मैं रोने लगा। वह भी रोती जाती थी और मुझे ढाढ़स बंधाती जाती थी। सारी रात वह मुझे नये मकान और नये मालिक के बारे में समझाती रही, वहां कितने नये-नये दोस्त मिलेंगे। उनके साथ दौड़ने की प्रतियोगिता में कैसा आनंद आयेगा। नये मालिक को पीठ पर रखकर दौड़ने में भी एक मजा होता है। उसने इन सब बातों का वर्णन इस तरह किया कि सवेरा होते-होते मैं जाने के लिये उत्सुक हो उठा।

सबेरा होने पर मालिक एक नये आदमी को लिये हमारी ओर आये। दोनों हंस-हंसकर बातें कर रहे थे।

मां ने कहा : "यह तो हमारे मालिक का पक्का दोस्त है, वह बड़ा अच्छा आदमी होगा क्योंकि घोड़ों से बुरा व्यवहार करनेवालों से हमारे मालिक नाराज रहते हैं।"

वह आदमी मेरे पास आया। मेरा सारा शरीर सिहर उठा, पर मां ने हिम्मत बंधाई। मैंने बड़े ध्यान से उस आदमी की ओर देखा। मैंने अपने सामने एक विशाल काया देखी। दो चमकती हुई आंखें मुझे ध्यान से देख रही थीं। उन गहरी आंखों में मैंने अपने रेगिस्तान के जैसी विशालता देखी। उसकी नाक तोते की-सी थी, उसके दांत सफेद रेत की तरह चमक रहे थे और उसके ओठ टेसू के फूलों जैसे थे।

अपने हंसते हुए मालिक मुझे बहुत ही अच्छे लगे। उन्होंने अपने साईस को बुलाया, फिर नजदीक आकर मेरी पीठ पर हाथ फेरा। मैं खुशी से उछल-उछल कर नाचने लगा। मेरे दोनों मालिक मेरी हरकतें देखकर जोर-जोर से हंसने लगे। मां दूर से ही मुझे खुश होते देखकर हंस रही थी। मैं उस रात इस हरे-भरे घर, मां की प्रेममयी गोद और अपने छोटे-छोटे साथियों से बिछुड़ने के ख्याल से बहुत दुःखी रहा। मैंने रोकने की बहुत कोशिश की पर आंखों से धारा बही चली जा रही थी। अचानक पीछे से जोर का निःश्वास सुनाई दिया। मैंने मुड़कर देखा तो मां थी, वह बोली :

"बेटा, तू बड़ा होकर जान जायेगा कि हमारे जीवन में आना-जाना तो लगा ही रहता है। मिलना और बिछुड़ना हम भाग्य में लिखवा कर लाये हैं। तू सोच मत कर, सब ठीक हो जायेगा।"

मैं हिचकियां ले-ले कर रोने लगा। मां ने प्यार से मेरे सारे शरीर को चाटा। मुझे कुछ शांति मिली। इसी तरह रात बीत गयी और हमें पता तक न चला। सबेरे-ही-सबेरे हमारे साईस ने हरी-हरी घास दी और तोबड़ा भर चने खिलाए। वह बार-बार बाग का चक्कर लगाता और फिर मेरे पास आकर मेरी पीठ थपथपाने लगता।

वह कहता : "बेटा, अपना नाम सार्थक करना, तेरे नाम का अर्थ है प्रार्थनाओं के उत्तर में मिला हुआ। देखें, नये मालिक तुमसे कितने खुश रहते हैं!"

मैं सिर लटकाए सब कुछ सुनता रहा। इतने में मां फिर से आयी और बोली : "बेटा, दुःखी नहीं हुआ करते, वहां बहुत-से नये दोस्त तेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे, वहां आमोद-प्रमोद की एक नयी दुनिया होगी।"

मैं देख रहा था कि उसका गला भर आया था और उसकी आंखों से सावन-भादों की झड़ी लगी थी। उसने आखिरी बार मुझे प्यार दिया और मैं नये साईस के साथ अपनी छोटी-सी दुनिया को छोड़कर पहली बार बाहर निकला। कुछ ही दूर चलकर मैं अपना विषाद भूल गया। मैं आश्चर्य से आंखें फाड़-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फाड़ कर चारों ओर देख रहा था। यह पृथ्वी कितनी विशाल है ! यहां कितने घोड़े, ऊंट और साईस बसते हैं ! और अश्वदेव का नीलाकाश तो इन सबसे बड़ा है।

नये मालिक के यहां मैं बहुत अच्छी तरह रहने लगा। वहां मेरा एक पक्का दोस्त बन गया, उसका नाम था रख्श। हम दोनों साथ ही रहते, साथ ही खाते-पीते और दौड़ते और साथ ही सो जाते। हमारे साईस को भी हमारी दोस्ती का पता था। वह अगर गलती से हमें अलग कर देता तो हम उसका जीवन दूभर कर देते थे, उसका एक भी हुकुम न मानते, वह सवारी करने आता तो हम पिछले पैरों पर खड़े हो जाते और उसे पास न फटकने देते। इसलिये वह भी हमारा खास ख्याल रखता था और हमें एक ही साथ बांधा करता था। दिन बीतते गये।

एक दिन हमें एक नये प्रकार के अस्तबल में बंद कर दिया। ऐसा अस्तबल तो हमने कभी न देखा था और न उसके बारे में कुछ सुना था। हम उसमें बंद किये गये और बड़े-बड़े लोहे के दरवाजे हमारे ऊपर पहरा देने लगे। अरे, यह क्या ! यह लोहे का अस्तबल तो दौड़ने लगा और दौड़ भी कैसी ! हममें से तेज घोड़ा भी इस अस्तबल की बराबरी नहीं कर सकता, वह बीच-बीच में कू-कू करता जाता फिर और दौड़ता जाता था। उसकी घरघराहट से हम दोनों घबरा गये और हमने उछल-कूद शुरू कर दी।

साईस हमारे साथ था, उसने प्यार से हमें शांत किया लेकिन हमारा सिर चकरा रहा था। अरे, यहां तो चारों तरफ से पेड़-पौधे दौड़ते हुए दीख रहे थे। आस-पास के मकान, दूर की पहाड़ियां—सभी तो दौड़ रहे थे। साईस मालिक के बेटे को एक जादू की चटाई की कहानी सुनाया करता था, शायद यह वही उड़नखटोला हो। काफी देर दौड़ने के बाद हमारा अस्तबल एक जोर की आवाज करके रुक गया। साईस ने दरवाजे खोले और हमें बाहर निकाला। आहा, कितने मालिक और कितने साईस थे वहां ! सब-के-सब हमें पुचकारने के लिये लपके, पर हमारे साईस ने सबको भगा दिया और हम एक नये अस्तबल में पहुंचाये गये।

हमारा नया अस्तबल बहुत ही शानदार था। तीन लड़के हमेशा हमारी सेवा में तैनात रहते थे। राजा-महाराजाओं की तरह तेल-फुलेल लगाकर हमें स्नान कराया जाता और खूब मालिश की जाती। हमारा भोजन तो शायद सीधा अश्वदेव की अपनी पाकशाला से ही आता होगा। सवेरे-ही-सवेरे हमें गोल-गोल सुंदर रास्तों पर दौड़ना पड़ता था। अपने साथियों से दौड़ने की होड़ लगाने में बड़ा मजा आता था। रख्श मेरे साथ ही रहता था पर कौन जानता था कि इस सुख के पीछे गहन दुःख दुबका बैठा है।

एक दिन बड़े घोड़ों में हलचल मची हुई थी। हम लोग भी लुक-छिप कर उनकी बातचीत सुनने लगे।

एक कह रहा था : "अहा, कल है।"

दूसरे ने कहा : "हां, कल ही तो है—अभीतक तो अमर ही हम सबको छोड़कर आगे निकल जाया करता है, पर कल मैं उसे हराकर छोड़ूंगा। कल कितनी भीड़ होगी, सबसे लंबी दौड़ और सबसे अच्छे घोड़े, सारा शहर ही टूट पड़ेगा। ये आदमी भी अजीब प्राणी होते हैं, इनकी हिनहिनाहट भी कैसी विचित्र होती है ! कौन जाने शायद उनकी हिनहिनाहट का भी कोई अर्थ होता हो। कल देखना कैसी चिल्ल-पों मचायेंगे, कान पड़ी आवाज न सुनाई देगी।"

कोई और बोल पड़ा : "और ये लोग न जाने हमारे नाम ले-ले कर क्यों शोर मचाते हैं।"

"वाह, तुम्हें उनकी बोली पसंद नहीं है क्या ?" तीसरे ने कहा। "मुझे तो उनकी आवाज सुनते ही जोश आने लगता है मानों वे अपना सारा जोश मेरे अंदर भर देते हों।"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक और ने कहा : "हां, हां, जानते हैं आदमी को देखते ही तेरा चेहरा खिल उठता है।"

ये सब बातें सुनकर हमारे आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा और हम दूसरे दिन के लिये उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगे। अगले दिन उन बड़े घोड़ों को सबेरे की दौड़ में नहीं लाया गया। सबेरे से ही तरह-तरह के आदमी उन्हें देखने के लिये आने लगे। हमारे अस्तबल में चारों ओर आदमी-ही-आदमी भर गये। हमारे देश में तो इतने ऊंट भी न थे जितने यहां आदमी हैं। उन्होंने आसमान सिर पर उठा रखा था। इतना शोर तो हजारों घोड़ों के इकट्ठे होने पर भी नहीं हो सकता।

हम छोटे-छोटे घोड़े अस्तबल में से झांक-झांककर यह देख रहे थे। थोड़ी देर में सब घोड़े बाहर निकाले गये। न जाने इन मनुष्यों को हम लोगों के नाम कैसे मालूम हो गये। सबको नाम ले-ले कर बुलाया जा रहा था। थोड़ी देर के लिये एकदम शांति छा गयी, एक गोली की आवाज सुनाई दी और सब घोड़ों ने सरपट दौड़ना शुरू कर दिया। हमारे पैरों में भी खुजली होने लगी। एक ओर घोड़ों की टाप सुनाई दे रही थी और दूसरी ओर एक अजीब-सी चिल्ल-पों मची हुई थी। घोड़ों के नाम जोर-जोर से पुकारे जा रहे थे और मनुष्य बहुत उत्तेजित हो-होकर बेतहाशा हिनहिना रहे थे।

मैंने सोचा, मां घोड़ों के नरक की बात किया करती थी, यह स्थान कहीं वही नरक न हो। यह हमारा पहला अनुभव था।

कुछ दिनों के बाद हमारी बारी आयी। बड़ा मजेदार दिन था। एक-दूसरे के आगे निकलने का प्रयास, आदमियों की उत्साहवर्धक आवाजें—यह सब मिलकर एक अद्भुत वातावरण बन रहा था। मैं और रख्श अलग-अलग टोलियों में थे। वह अपनी टोली में पहला आया और मैं अपनी में। पहली दौड़ के बाद साईस के व्यवहार से हमें घुड़ दौड़ का पता लग जाया करता था। उन दिनों हमपर एक नशा-सा छा जाता था और हम अपने-आपको आदमी का मालिक समझने लगते थे, पर जीवन सदा सीधे रास्ते पर नहीं चला करता।

एक दिन हमें बाधा-दौड़ में भाग लेना था। यह और भी ज्यादा मजेदार होती थी। सवार के हर इशारे को समझ सकने के लिये सदा सतर्क रहना पड़ता है। कभी ऊंची-ऊंची बाड़ों को लांघना पड़ता है और कभी खाई पार करनी पड़ती है। कभी खुले मैदान में पूरी शक्ति लगाकर दौड़ना पड़ता है और फिर अचानक एक के बाद एक कई बांसों पर से कूदना पड़ता है। जरा-सी चूक हो जाये तो हड्डी-पसली एक हो जाती है और जीवन से हाथ धोना पड़ता है। आज रख्श भी मेरे दल में था। मैं उसे तथा अन्य साथियों को पीछे छोड़ जाने के लिये जी-तोड़ कोशिश कर रहा था। मैं रख्श से आगे बढ़ गया, उसी समय रख्श का भयानक चीत्कार सुनाई दिया। मैं अपने नशे में था, उस ओर ध्यान न दिया, बहुत हो-हल्ला हुआ। मैंने सोचा, यह तो साधारण कार्यक्रम है। मैं बहुत थक गया था। साईस मुझे अस्तबलतक पहुंचा कर बाहर गया। अचानक मैंने रख्श को देखा। वह बूढ़े घोड़ों की तरह लंगड़ाता हुआ मुंह लटकाए हुए चला आ रहा था। मेरी इच्छा हुई दौड़कर उसके पास जाऊं और उसके गले पर अपना सिर रखकर उसकी पीड़ा हर लूं, पर न जाने क्यों मेरे पैरों ने जवाब दे दिया।

लेकिन यह क्या ? उसे अस्तबल में लाने की जगह एक ओर पेड़ों के पीछे ले जाया जा रहा था। उसके आगे-पीछे कई आदमी चल रहे थे। उनकी गतिविधि में कुछ अनिष्ट चीज छिपी हुई मालूम होती थी। मैं भी धीरे-धीरे उनके पीछे हो लिया। मुझे किसीने नहीं देखा। रख्श को पेड़ों के नीचे बांध दिया गया और उसके सामने हरी-हरी घास डाल दी गयी। घोड़े बीमारी की दशा में कुछ नहीं खाया करते। रख्श बहुत ही अस्वस्थ मालूम हो रहा था। उसकी आंखों में दुःख और भीति का ठोस रूप दिखायी दे रहा था। उफ ! क्या दर्दनाक दृश्य था !

कुछ देर में एक आदमी एक काली-सी चीज लेकर आया और उससे थोड़ी दूर खड़ा हो गया। एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जोर का धमाका हुआ, कुछ धुंआ-सा दिखायी पड़ा। मेरा प्यारा रख्श हवा में उछला और फिर जमीन पर आ रहा। उसकी आंखें फटी हुई थीं, मानों कह रही हों :

"हा, यह विश्वासघात ! मानव, मैंने तुम्हें अपना समझा था और तुम . . .।"

मेरे दिमाग में आग की हजारों लपटें उठने लगीं। क्या यही है मानव का सद्व्यवहार ? मैं पागलों की तरह भाग खड़ा हुआ। मेरा साईस इसी ओर आ रहा था। उसने मुझे पकड़ लिया। बहुत देर के बाद जब मैं होश में आया तो मैं वहां जाने के लिये उतावला हो उठा जहां मेरा साथी गिरा था। रख्श का खाली स्थान देखकर मेरी आंखें भर-भर आती थीं। साईस ने मुझे बाहर न जाने दिया। बहुत कोशिश करने पर भी घास का एक पत्ता तक मेरे मुंह में न जाता था। मैं बीमार हो गया।

यह आदमी भी क्या विचित्र जानवर है ! मेरे लिये डाक्टर बुलाये गये। मेरी सेवा में दिन-रात एक हो जाते थे। इतना प्रेम और इतनी क्रूरता आदमी ही कर सकता है; उसको समझ सकना हम लोगों की घोड़ा-बुद्धि से परे की चीज है।

कहते हैं, समय दुःख के घावों को भरने के लिये अच्छा मरहम है। मैं आहिस्ता-अहिस्ता दुःख भूल गया और फिर से शराबी की तरह दौड़ने के नशे में आकर अपने-आपको भी भूल गया। एक दिन कूदते समय मैंने अपने आगे रख्श को देखा। मेरी आंखें फटी रह गयी। क्या यह सच हो सकता है ? देखते-देखते वह हवा में गायब हो गया। मैंने बूढ़े घोड़ों से सुना था कि मृत्यु से पहले हमें अपने प्रियजनों के भूत दिखाई देते हैं। तो क्या मेरी भी आखिरी घड़ी आन पहुंची और रख्श उसकी सूचना लाया है ?

मैं यह कहना तो भूल ही गया कि इन दिनों मैं सबसे अच्छा घोड़ा कहलाता था। न जाने क्यों, मेरी दौड़ के दिन बहुत ज्यादा भीड़ हुआ करती थी और बहुत शोर होता था। ऐसा लगता था मानों लोग मुझसे बहुत प्यार करते थे। उस दिन सब से लंबी दौड़ थी। न जाने कितनी बाधाएं पार करनी थीं। मैं इस जमीन पर इतनी बार दौड़ चुका था कि एक-एक चीज का नक्शा मेरे दिमाग पर अंकित था। मैं आंखें मूंदकर भी इस जगह की बाड़ों, खाइयों और अन्य बाधाओं को पार कर सकता था।

गोली चली और सब दौड़ पड़े। मैं धीरे-धीरे सबसे आगे निकल गया। मैं तीर की तरह दौड़ा चला जा रहा था कि अचानक मेरे पांव में बिजली दौड़ गयी। मुझे लगा मानों आसमान फट पड़ा। मैं थोड़ी देर के लिये बिल्कुल बेहोश हो गया। आंखें खुलीं तो देखा मेरा सवार मेरे पास खड़ा दर्द-भरी आंखों से मुझे देख रहा था। उसकी आंखों में करुणा थी और था प्यार। उसने मुझे पुचकारा, मेरे शरीर पर हाथ फेरा और फिर मुझे उठाने की कोशिश करने लगा। मैंने अपनी पूरी ताकत लगाई पर उठ न सका; जिस घास के तिनकों को मैं रोज चर जाता हूं, मेरे पांव उनसे भी बलहीन हो गये थे।

बड़ी कोशिशों के बाद मैं खड़ा हुआ पर मेरे पैर में इतने जोर से दर्द हुआ कि मैं गिर पड़ा। मैं लंगड़ा हो चुका था। पुरानी स्मृतियां जाग उठीं। रख्श, मेरा प्यारा रख्श, इसी तरह से गिरा था और फिर उस काली चीज का शिकार हुआ था। मैं थर-थर कांप रहा था। हे अश्वदेव, क्या मेरी भी यही गति होगी ? हे घोड़ा-भगवान् ! क्या मेरी सहायता न करोगे ?

सचमुच मुझे उसी झुरमुट की ओर ले जाया जा रहा था। मैंने दूसरी ओर भागना चाहा पर मेरा दुर्बल शरीर कर ही क्या सकता था ? मुझे उसी तरह खड़ा किया गया और एक आदमी वह काली चीज लेकर खड़ा हो गया। मेरी आंखें विवशता और घबराहट से सफेद हो गयीं। मैंने एक बार, अंतिम बार सिर उठाकर ऊपर देखा। मैंने अश्वदेव को आवाज दी और कहा :

"क्या इस समय भी मेरी सहायता न कर सकोगे, भगवान् ? मां कहती थी तुम बड़े दयालु हो, तो फिर आज कहां है वह दया ?"

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेरे शरीर से लू निकल रही थी। अचानक आकाश में एक सुंदर, भव्य और चमकदार घोड़ा दिखायी दिया। उसने मेरी गर्दन को प्यार से चूमा और दाहिनी ओर देखने का आदेश देकर अदृश्य हो गया। मेरा रोम-रोम अश्व-भगवान् की करुणा पाकर पुलकित हो उठा। मैं अपना दुःख भूल गया और मैंने दाहिनी ओर नजर डाली।

वहां एक सुंदर कुमार अपनी काली-काली चमकती आंखों से मेरी ओर देख रहा था। उसके ओंठ दांतों तले दबे हुए थे। मेरी और उसकी आंखें चार हुई। उसके सारे शरीर में सिहरन दौड़ गयी। उसने तेजी से काली चीज लिये आदमी से कुछ कहा। काली चीज झट नीची हो गयी।

कुमार—मुझे बाद में मालूम हुआ कि उसका नाम विजय था—मेरे पास आया और बड़े प्रेम से मुझे थपथपाने लगा। उसके अंदर से प्रेम की लहरों ने आकर मुझे आवेष्टित कर लिया। उसने मेरे प्राण बचा लिये और मुझे अपने साथ ले गया।

हम अरब देश के वासी साहस और खतरे पर लट्टू होते हैं। मैं अश्वदेव को कितना-कितना धन्यवाद दूं कि उसने मुझे ऐसा ही मालिक दिया जो साहस और खतरे के प्रति अरबों के जैसा प्रेम रखता है। मालिक मुझे लिये जंगल-जंगल की खाक छानते रहते हैं। बहुत बार हम दोनों हरिण या शेर का पीछा करते हैं। मालिक को इस प्रकार के निर्दोष आमोद का बहुत शौक है। वे जानवरों को मारते नहीं, उनका पीछा करने में ही मजा लेते हैं। और उनके साथ कबड्डी भी खेलते हैं। कभी-कभी हम ऊंची-ऊंची पहाड़ियों पर चढ़ते हैं और वहांपर विचरण करनेवाले बादलों से बातें करते हैं। कभी घने जंगलों में आंधी के साथ दौड़ने की प्रतियोगिता करते हैं।

इस प्रकार हम दोनों प्रकृति के साथ एक होकर उसका आनंद लेते हैं। इसका रसास्वादन करने के लिये प्राणों में साहसिक कार्यों के लिये एक अद्‌भुत तड़प होनी चाहिये। इस तरह मारे-मारे फिरते हुए हम दोनों ही भूख और प्यास को भूल जाते हैं। हम किसी अदृश्य सूक्ष्म भावना से ओत-प्रोत होकर वायु के पंखों पर उड़ते रहते हैं। मेरा जन्म किसी शुभ घड़ी में हुआ होगा। मेरे पैर में जरा-सी खराबी है तो, पर उससे क्या आता-जाता है ? मेरे मालिक मुझसे कितना प्यार करते हैं। मैंने देख लिया, आदमियों में भी हम घोड़ों की तरह अच्छे और बुरे, सब तरह के लोग होते हैं। भगवान् अश्वदेव को लाख-लाख धन्यवाद है कि मुझे विजय के जैसा प्यारा मालिक दिया। मैं आसानी से उसके लिये जान की बाजी लगा सकता हूं।

अभी उस दिन की बात है। हम जंगल में खो गये। चारों ओर अंधेरा छा गया। कहीं दूर शेर की दहाड़ सुनाई दे रही थी और गीदड़ तो चारों ओर मारे-मारे फिर रहे थे। कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी। मालिक को न जाने क्या हो गया, वे अजीब तरह से जमीन पर उतरे और उतरते ही लेट गये। उनकी सांस और दिनों से भिन्न थी।

अश्विनीकुमार तो हमारे ही इष्टदेव हैं, मैंने उन्हें बुलाना शुरू किया। इसके अतिरिक्त मैं कर ही क्या सकता था ? जंगली जानवरों ने मृत शरीर समझकर मेरे मालिक पर झटपना चाहा पर मैं ऐसा हिनहिनाया और टापें लगाईं कि किसी को पास फटकने का साहसतक न हुआ। मैंने मालिक को अपने चारों पैरों के बीच कर लिया। थोड़ी देर में एक रोशनी दिखाई दी। मैंने बड़ी सावधानी से मालिक को कमरबंद से पकड़कर उठाया और रोशनी की तरफ चल दिया।

मालिक के घरवाले और नौकर-चाकर उन्हें बहुत देर होती देखकर उन्हें ढूंढ़ते हुए यहांतक आ पहुंचे थे। मैंने मालिक को जमीन पर रख दिया। लोगों ने हमें चारों ओर से घेर लिया। प्रायः सभीने मुझे मानों प्रेमगंगा में डुबो दिया। उस दिन से मेरे रहने-खाने की व्यवस्था का और भी ज्यादा ध्यान रखा जाने लगा। अब मैं सारे परिवार की आंखों का तारा हूं।

अच्छा, अब विदा। मुझे जाना चाहिये, मालिक आते होंगे। —अनुबेन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवान् के रूप

अगर तुम लय या मोक्ष को पाना चाहो तो तुम निष्क्रिय ब्रह्म में लीन हो जाते हो। तुम वैयक्तिक भगवान् में निवास कर सकते हो पर उनमें लीन नहीं हो सकते। रही बात परम पुरुष की तो वे समस्त विश्व-सत्ता को अपने अंदर धारण करते हैं वह उन्हींकी चेतना में गति करती है। परम पुरुष के अंदर प्रवेश करके तुम प्रकृति की अधीनता से ऊपर उठ जाते हो परंतु विश्व-सत्ता की समस्त चेतना से गायब नहीं होते।

*

भगवान् का वैयक्तिक साक्षात्कार कभी-कभी आकार के साथ हो सकता है और कभी आकार के बिना। आकार के बिना जीवित-जाग्रत् भागवत सत्ता की उपस्थिति हर चीज में अनुभव होती है। आकार के साथ वह उस रूप में आती है जिसकी पूजा की जाती है। भगवान् भक्त या जिज्ञासु के आगे अपने-आपको हमेशा किसी रूप में अभिव्यक्त कर सकते हैं। तुम उन्हें उस रूप में देख सकते हो जिसकी तुम पूजा करते हो या जिसे खोजते हो, या भागवत सत्ता के किसी ऐसे रूप में जो पूजा का पात्र हो। वह कैसे अभिव्यक्त होते हैं, यह बहुत-सी चीजों पर निर्भर है और इसके इतने विभिन्न प्रकार हैं कि उन्हें एक नियम में बांधना असंभव है।

*

जब तुम्हारे अंदर आनंद आता है तो तुम्हारे अंदर भगवान् आते हैं, वैसे ही जैसे जब तुम्हारे अंदर शांति प्रवाहित होती है तो तुम्हारे अंदर भगवान् की ही चढ़ाई होती है या जब तुम्हारे अंदर प्रकाश की बाढ़ आती है तो स्वयं भगवान् की बाढ़ तुम्हारे चारों ओर होती है। निश्चय ही भगवान् इस सबसे बहुत अधिक हैं, इसके अतिरिक्त और बहुत-सी चीजें हैं और उन सब चीजों के अंदर एक उपस्थिति, एक सत्ता, एक दिव्य पुरुष होता है क्योंकि भगवान् ही कृष्ण हैं, शिव हैं, और परम जननी हैं। लेकिन आनंद के द्वारा तुम आनंदमय कृष्ण को देख सकते हो क्योंकि आनंद कृष्ण का सूक्ष्म शरीर और सत्ता है, शांति के द्वारा तुम शांतिमय शिव के दर्शन करते हो। प्रकाश में, मुक्तिदाता ज्ञान, प्रेम, पूर्ति करती हुई और ऊपर उठाती हुई शक्ति में तुम दिव्य जननी को पा सकते हो।

—श्रीअरविंद

————

आओ, हम अपने-आपको पूरी तरह और सचाई के साथ भगवान् को दे दें, तब हम उनके संरक्षण का रस पायेंगे।

—श्रीमां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्य हृदयं शुद्धम् . . .

कश्चिद् ब्राह्मणः आसीत्। प्रतिदिनं सुप्रभाते गङ्गातटं गत्वा, स्नानादिकं कृत्वा शुद्धमनसा प्रभुं स्मरति, तेन सह गीतापाठं च करोति स्म। तेन विधिवत् शिक्षा नैव प्राप्ता तस्मात् गीतायाः शब्दानां शुद्धम् उच्चारणं कर्तुमसमर्थः आसीत् वराकः, वस्तुतः सः शुद्धम्, अशुद्धं इति नैव अजानात्। सः तु तन्मयः अभवत् सर्वदा प्रभुस्मरणे गीतापाठे च। अथ कदाचित् विश्रुतः भक्तः गौराङ्गदेवः ततः निर्गतः। ब्राह्मणस्य अशुद्धम् उच्चारणं श्रुत्वा ईषत् खिन्नः जातः, ब्राह्मणं वीक्ष्य किमपि कथयितुम् उद्यतः अभवत् किन्तु भक्तिभावे तथा तल्लीनं तं वीक्ष्य तूष्णीमेव अग्रे असरत्। आगामिदिने पुनरपि तस्मादेव मार्गात् अगच्छत् गौराङ्गदेवः, भूयोऽपि ईषत् विरम्य अग्रे असरत्। प्रतिदिनस्य एषा चर्या जाता . . . प्रतिप्रभातं सः चिन्तयति स्म यत् अद्य अहं तस्मै ब्राह्मणदेवाय निवेदयिष्यामि एव यत् तस्य गीतापाठः अशुद्धः, अशुद्धपाठेन नास्ति कोऽपि लाभः, पुण्यं न लप्स्यते वराकः इति। किन्तु अवसरम् एव न प्राप्नोति स्म। अन्ततः एकस्मिन् दिने कृतनिश्चयः सः ब्राह्मणम् उपागतः, तस्य समीपे बहुकालमतिष्ठत् किन्तु ब्राह्मणं पूर्ववदेव स्वभजने निरतं वीक्ष्य तस्य हस्तं धृत्वा अपृच्छत्—''बन्धो ! त्वं प्रभुस्मरणे गीतापाठे च एतावदानन्दं प्राप्नोषि, तस्य कारणं किम् ? किन्तु जानासि यत् . . .''

वाक्यस्य मध्ये एव ब्राह्मणेन उक्तम्—प्रभोः ! असीमितं मे आनन्दं भगवद्भजने गीतापाठे च यतो हि पाठकाले अर्जुनस्य रथे स्थित्वा उपदिशन्तं चतुर्भुजं भगवन्तं श्रीकृष्णं साक्षात् पश्यामि।''

ब्राह्मणस्य वचनं श्रुत्वा तु रोमाञ्चितः जातः गौराङ्गमहाप्रभुः; तत्क्षणं ब्राह्मणम् आलिङ्ग्य अगदत्—''प्रभोः, श्रीकृष्णस्य गीतायाः सारः वस्तुतः त्वया एव अवबुद्धः। त्वं खलु महान्। अद्य बोधामि यत् यस्य हृदयं शुद्धं तस्य भाषा शुद्धा न वा इति न पश्यति सः परमेश्वरः।''

—वन्दना

पुस्तक-परिचय

Glossary and Index of Proper Names in Sri Aurobindo's works—प्र० श्रीअरविंदाश्रम; मू० ३०० रु.।

श्रीअरविंद का साहित्य एक अथाह सागर है। कम ही विषय ऐसे होंगे जिनके बारे में श्रीअरविंद ने कुछ नहीं कहा है। उनकी पुस्तकों के शताब्दी-संस्करण के तीस बड़े-बड़े खंड हैं। एशिया, यूरोप, अमरीका के साहित्य, इतिहास, समाज शास्त्रादि अनेकानेक विषयों पर श्रीअरविंद ने अत्यंत प्रामाणिक रूप से लिखा है। इन पुस्तकों में हजारों नाम ऐसे हैं जिनसे साधारण आदमी परिचित नहीं होता। इस कोश की हजारों प्रविष्टियों में उन सबका संक्षिप्त परिचय दिया गया है। केवल श्रीअरविंद के साहित्य के लिये ही नहीं, सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विषयों की जानकारी प्राप्त करने के लिये भी यह पुस्तक बहुत उपयोगी है। हम इसके संपादक को इस प्रेम-भरे श्रम के लिये बधाई देते हैं।

काश ! ऐसी पुस्तकें हिंदी में भी छप पातीं। लेकिन हिंदी में ऐसी पुस्तकें छापे कौन और उससे भी बढ़कर खरीदे कौन ?

भारतीय साहित्य के निर्माता—स्वामी दयानंद सरस्वती—ले० विष्णु प्रभाकर; प्रकाशक साहित्य अकादमी; मूल्य ५ रु.।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी दयानंद भारत का नव निर्माण करनेवाले महापुरुषों में से थे। उन्होंने रूढ़ियां तोड़कर वैदिक धर्म का बिगुल बजाया। स्वामी सत्यानंद, पं. लेखराम, देवेंद्र नाथ मुखोपाध्याय आदि ने इनके जीवन और भारत को इनके दिये उपहारों पर अच्छा प्रकाश डाला है। श्रीअरविंद ने इनका आध्यात्मिक मूल्यांकन करके इनका सच्चा मूल्य दिखलाया है।

प्रस्तुत पुस्तक में श्री विष्णु प्रभाकर ने स्वामी जी की हिंदी (जिसे वे आर्य भाषा कहना ज्यादा पसंद करते थे) की देन पर प्रकाश डाला है। इस विषय पर विष्णु जी ने अनूठा काम किया है और स्वामी जी का एक नया रूप दिखलाया है जिससे आर्य-समाजियों से इतर भी प्रभावित हुए बिना न रहेंगे।

सस्ता साहित्य-मंडल, कनाट सर्कस, नई दिल्ली—११०००१ के प्रकाशन

अथाह की थाह—मूल्य २० रु.।

भारत की सप्त-सरिताएं अलग-अलग होते हुए भी एक हैं। हमारी भाषाओं की शब्दावलियां एक-दूसरे से बहुत मिलती हैं, इतना ही नहीं; मुहावरों, कहावतों और पहेलियों में भी साम्य है। इसी तरह साहित्य की धाराएं भी एक ही सागर की ओर उन्मुख होती हैं। सस्ता साहित्य-मंडल हमें इन भाषाओं के साहित्य की बानगी दिखाकर भारतीय एकता का परिचय दे रहा है। इसमें एक नया प्रयास है। 'अथाह की थाह' हमें कोंकण का परिचय देता है। वहां भी अन्य स्थानों की तरह भारतीय नारी का जीवन यंत्रणा और वेदना से भरपूर है, पर वहां भी संत और मनीषी उसे उठाने और उसकी सहायता करने के लिये तैयार मिलते हैं।

बेताल पच्चीसी—मू० ५ रु.।

भारत की अत्यंत प्रसिद्ध कहानियों में से हैं बेताल पच्चीसी की कहानियां। इन्हें यशपाल जी ने सरल सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया है।

नसीहत का फल—मू० ६ रु.
मारीशस की शकुंतला—मू० ८ रु.
भाग्य की बलिहारी—मू० ८ रु.
हमारी लोक-कथाएं—मू० ६ रु.।

किसी भी देश और भाषा की संस्कृति में वहां की लोक-कथाओं का महत्त्वपूर्ण अनुदान होता है। इनसे हमें देश की प्राचीन, अर्वाचीन और मध्यकालीन स्थितियों का अच्छा चित्रण मिल जाता है। इनकी भाषा सरल और सुगम है। मोटा टाइप, कागज अच्छा और सचित्र आवरण इन पुस्तकों में सोने पर सुहागे का काम करते हैं।

खलील जिब्रान के रत्न :—

तूफान—४रु.; आंसू और मुस्कान—६ रु.; धरती के देवता—४ रु.; लोक यात्रा—४ रु.; शैतान—३ रु.।

खलील जिब्रान दुनिया के बड़े लेखकों में गिने जाते हैं। इनके जीवन की तरह लेखन में भी पूर्व और पश्चिम का अच्छा सम्मिश्रण है। सरल कहानियों के रूप में इन्होंने सब तरह की जीवनोपयोगी चीजें लिखी हैं। इन पुस्तकों का परिचय देने के लिये खलील जिब्रान का नाम ही काफी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्फुट वचन

मैं सोच रहा था कि कितनी जातियों में सौंदर्य की भावना मज्जागत है। हमारे पास जो कुछ बच रहा है उससे मालूम होता है कि एक समय था जब हमारे देश में सौंदर्य का प्रखर बोध था। उदाहरण के लिये कविता या लकड़ी की नक्काशी। मुझे लगता है कि अब यह जा रहा है। यूनान और प्राचीन रोम में सौंदर्यबोध था। जापानी विलक्षण लोग हैं। गरीब से गरीब लोगों में भी सौंदर्यबोध है। अगर वे कुछ भद्दी चीजें बनाते हैं तो केवल विदेशों को निर्यात करने के लिये। लेकिन मुझे लगता है कि व्यापक गंवारूपन के कारण जापानी भी इस बोध को खोते जा रहे हैं। जर्मनी में हिटलर ने सभी सुन्दर चीजों को कुचलकर अस्तित्वहीन कर दिया होगा, जर्मन संगीत, दर्शन आदि। जहां स्वाधीनता न हो वहां कोई चीज कैसे विकसित हो सकती है। मैं आशा करता हूं कि मसोलिनी ने कुछ कला का बोध बाकी रखा है।

—श्रीअरविन्द (सान्ध्य-वार्ताओं से)

मनुष्य की महानता इसमें नहीं है कि वह क्या है बल्कि इसमें है कि वह किसे संभव बनाता है। उसकी महिमा यह है कि वह एक जीवित जाग्रत् परिश्रम का बंद स्थान और गुप्त कारखाना है जिसमें दिव्य कारीगर अतिमानवता को तैयार कर रहा है।

लेकिन उसे एक और भी महान् महानता में प्रवेश प्राप्त है। निम्नतर सृष्टि से भिन्न उसे आंशिक रूप से भागवत परिवर्तन का सचेतन शिल्पी होने दिया गया है। उसकी मुक्त स्वीकृति, उसकी समर्पित इच्छा और उसके सहयोग की जरूरत है ताकि उसके शरीर में वह महिमा उतर सके जो उसका स्थान लेगी। उसकी अभीप्सा अतिमानसिक स्रष्टा को धरती की पुकार है।

अगर धरती पुकारे और परम पुरुष उत्तर दे तो उस विशाल और महिमामय रूपांतर का मुहूर्त अब भी हो सकता है।

—श्रीअरविन्द

You have no right to dispense with morality unless you submit yourself to a law that is higher and much more rigorous than any moral law.

THE MOTHER

space donated by

Kooverji Devshi & Co. Pvt. Ltd.

FIREX LEADS TO SAFETY
SAFETY LEADS TO PROSPERITY

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

For us there here is only one thing that counts. We aspire for the Divine, live for the Divine, act for the Divine.

THE MOTHER

INLAND CARRIERS
(BOMBAY)

Head Office:
Takhatmal Estate
AMRAVATI – 444 601

Phone: 2228 and 2236 Gram: INACARS

Booking Offices:

i) 112, Sarang Street, BOMBAY – 400 003 (Phone: 327710)
ii) 312, Nana Peth, Laxmi Road, PUNE – 441 002 (Phone: 28027)
iii) Inside Panchkuwa, Bhistiwad, AHMEDABAD – 1 (Phone: 384081)
iv) Tin-Nal Chowk, Gandhi Chowk, NAGPUR – 444 002 (Phone: 42643)
v) 15-8-292, Ghoshamahal Road, HYDERABAD (Phone: 41685)
vi) Opp. Old Magistrate's Court, Gheekanta, BARODA (Phone: 51919)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तपेदिक के विरुद्ध अभियान

1. यदि आपको लगातार दो हफ्तों से भी अधिक समय से खांसी है या थूक में खून आता है, तो हो सकता है, आपको फेफड़ों की तपेदिक हो।

2. अपने नजदीकी प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र, औषधालय या तपेदिक केन्द्र पर स्वयं की, विशेष कर अपने थूक की, जांच कराएं।

3. तपेदिक का इलाज किया जा सकता है, बशर्ते डाक्टर द्वारा बताई गई दवाइयां नियमित रूप से निर्धारित अवधि तक ली जाएं।

4. बचाव हमेशा इलाज से बेहतर है। इसलिए अपने बच्चे को बी.सी.जी. का टीका लगवाएं।

केन्द्रीय स्वास्थ्य शिक्षा ब्यूरो (स्वास्थ्य सेवा महानिदेशालय)
स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय,
कोटला रोड, नई दिल्ली- 110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

davp 89/1023

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"Work done in the right spirit is meditation."

With Best Wishes from:

MRS. KOYAL DEORAH CHARITABLE TRUST,

28, VARSHA, 69/B, NEPEANSEA ROAD,

BOMBAY - 400 006

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चिंता भगवान् की कृपा पर विश्वास का अभाव है। यह अचूक चिह्न है कि समर्पण पूर्णतया संपूर्ण नहीं है।

—श्रीमां

एस. एन. सण्डरसन एण्ड कम्पनी

१ देशबन्धु गुप्त रोड

नयी दिल्ली-११००५५

With the Best Compliments of:

SHARAT DEORAH

Indian Transport Agency

Leading Bank approved Transport House
since 1949; Fleet Owners

H.O.: **24 Ganesh Chandra Avenue, Calcutta – 700 013**
PHONES: 26-1953/26-5003 TELEX: 021-7889 DORA IN

branches:
Bombay, Gauhati, Dibrugarh, Digboi, Tinsukia, Sibsagar, Jorhat, Shillong, Nowgong, etc.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Assam Tea Warehousing Corporation
Indian Tea Storage Agency

The most tried & trusted warehouse of
Tea Trade at Gauhati and Calcutta

3-B, Lal Bazar Street
R.N.M. House, 4th Floor
CALCUTTA : 700 001.

Phone: 28-1287 & 28-1290 Gram: INTEASTORE
Tlx No.: 21-7889 DORA IN

Nothing but a radical change of consciousness can save humanity from the terrible plight into which it is plunged.
THE MOTHER

With the Compliments of:
Sri Mahalaxmi Oil Mills
RANIGANJ, Burdwan (W. Bengal)

M/S New Horizon Agencies
BITUMEN & P.O.L. PRODUCTS
TRANSPORT CONTRACTOR
H.O. RANIGANJ – 713 347 (W. Bengal)

With Best Compliments of:

deorah Seva Nidhi
(Charitable Trust Dedicated to Service)

25 Ballyganj Park
Rajnigandha 13 E
CALCUTTA 700 019

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी भी बाधा पर एकाग्रचित्त न हो, वह उसमें अधिक बल भर देती है।

—श्रीमां

इण्डियन आयल के निम्नलिखित डीलर्स आपकी सेवा में

कुमार आयल्स
केरोसिन व मोबिल आयल डीलर्स
राम तीर्थ मार्ग, सहारनपुर—२४७००१
फोन ४०६५

कुमार आयल्स
केरोसिन व मोबिल आयल डीलर्स
देवबन्द
पी पी फोन ३७७

बन्सल एण्ड कम्पनी
पैट्रोल पम्प, उत्तर काशी
फोन ४५

हेड आफिस:

बन्सल निकेतन
लक्ष्मण झूला मार्ग
ऋषिकेश
फोन १२५

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Registered with the Registrar of Newspapers for India
No. R. N. 8837/65

Regd. No. M/8127

Statement about ownership and other particulars about the Monthly PURODHA to be published in the first issue every year after the last day of February.

FORM IV
(See Rule 8)

1. Place of Publication:	Sri Aurobindo Society Pondicherry - 605 002
2. Periodicity of its publication:	Monthly
3. Printer's Name: Nationality: Address:	Amiyo Ranjan Ganguli Indian Sri Aurobindo Ashram Press, Pondicherry - 605 002
4. Publisher's Name: Nationality: Address:	Aniruddha Sarkar Indian Sri Aurobindo Ashram Pondicherry - 605 002
5. Editor's Name: Nationality: Address:	Ravindra, Vandana Indian Sri Aurobindo Ashram Pondicherry - 605 002
6. Names and addresses of individuals who own the newspaper and partners or shareholders holding more than one per cent of the total capital:	Sri Aurobindo Society Pondicherry - 605 002

I, Aniruddha Sarkar, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

(Sd/-) Aniruddha Sarkar
Signature of Publisher

Date: March 1990

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri